

चिज्ञापनम् ।

पूर्वं वाराणस्या शिलाक्षरमुद्रिता अपि द्वादश मयूरा नितान्तमशुद्धाः प्रायः सर्वत्र गलितर्णपद्मयुक्तच्युतसंदर्भाश्चासन् । अधुना च तादृशा अपि न केतृजनसुलभाः । अतस्तान्सम्यक्परिशोध्य मुद्रापयितुमस्ति नः संकल्पः । तत्रैव प्रथमः संस्कारमयूर इदानीं प्रकाश्यते । अयं च 'भोर' भूपालास्थानपण्डितैः शेंडेउपार्यैर्नरहरिशास्त्रिभिः प्राचीनलिखितपुस्तकसाहाय्येन शोधितोऽपि बहुषु स्थलेषु पुनः शोधनापेक्ष एवासीत् । अतोऽस्मन्मुद्रणालयस्थैः वाकेउपाहैर्महादेवशास्त्रिभिर्मुद्रणावसरे लिखितपुस्तकान्तरालाभात्रिभन्धान्तरदर्शनादिना तात्पर्यावधारणादिपुरःसरं पुनः परिशोधितुमारब्धः । कार्यमशाद् वैराजक्षेत्र(वाडै)गतास्तान् चतुर्थपञ्चमसंपुटशोधनावसरे परं क्रियतो दृष्ट्वाऽन्तेमासिप्रणयेन बलादिव नियोजितास्तत्क्षेत्रमण्टनभूता भेदवेदार्थप्रचनपटीयांसः श्रौतस्मार्तत्रिव्याख्यानन्यासाधारणनैपुण्यभाजो रानडेवंशमुक्तामणयः 'श्रीराळशास्त्रांतात्या' इतिविश्रुतनामधेयाः साहायकाचरणेनान्वगृह्णन् । किंचास्य लिखितपुस्तकान्तरमन्तरेण संशोधनं न केवलमत्यन्तशुद्धावर्हं किंत्वशक्यमिव भत्वा पुण्यपत्तनस्थान् श्रीयुत 'विश्वनाथराज दातार' इत्येतानस्मदर्थं पुस्तकदानमभ्यर्थयांचक्रु । तैश्च स्वपितृचरणानां पूर्वमीमांसायां धर्मशास्त्रे चासाधारणपाण्डित्यजुषां स्वर्गसिना गङ्गाधरशास्त्रिणां पुस्तकसंग्रहात् संस्कारमयूरपुस्तकदानेन ज्यमनुगृहीताः । तदेव पुस्तकमत्र च. संहया निर्दिष्टम् । एतत् विक्रमसंवत् १८११ वत्सरे कायस्थेन लिखितमशुद्धिप्रचुरमपि शुद्धपाठरूपनायां बहुतरमुपयुक्तम् । तदेवं महान्तमायासमुग्रीकृत्य शोधितस्यास्य दर्शनेन नन्दिष्यन्ति विद्वांस इत्याशास्ते-

संस्कारमयूखस्थविषयानुक्रमिका ।

| विषयः | पृ. | विषयः | पृ. |
|-------------------------------|-----|------------------------------|-----|
| मह्युत्तराचरणम् | १ | वज्रयन्त्रिध्यादि | ११ |
| नियन्धोपयोगी विचारः | १ | वारफलम् | १३ |
| धर्मप्रमाणानि | १ | नक्षत्रफलम् | ११ |
| स्मृतिप्रवर्तकाः | २ | वेद्यफलम् | ११ |
| संहिताः | १ | योगफलम् | ११ |
| संहितालक्षणम् | ३ | स्थानफलम् | १४ |
| महापुराणानि | १ | वधविशेषे फलभेदः | ११ |
| उपपुराणानि | १ | रजोविन्दुफलम् | ११ |
| धर्मलक्षणम् | ४ | कुयोगशान्तिः | ११ |
| देशाः | १ | रजस्वस्थानियमाः | ११ |
| विनायकपूजनस्वस्ति- वाचनादि | ५ | रजस्वलाशुद्धिः | १५ |
| विनायकपूजनम् | ११ | प्रथमतो विशेषः | १५ |
| स्वस्तिवाचनम् | ११ | गर्भाधानम् | १५ |
| मातृकापूजनम् | ६ | श्रीगमनकालः | ११ |
| नान्दीभादम् | ११ | शुक्लादिप्राप्ति फलम् | १६ |
| नान्दीभादे देवताः | ११ | पक्षाणि | ११ |
| विभक्तिविचारः | ९ | अगमने शेषः | ११ |
| पिण्डदाने विशेषः | ११ | निषिद्धकालः | ११ |
| जीवत्पितृर्नान्दीभादविचारः | १० | बहुपरिग्रहततो विशेषः | ११ |
| संस्कारोद्देशः | १० | अवृत्तावपि गमनम् | ११ |
| चत्वारिंशत्संस्काराः | ११ | गर्भिणीगमने | १० |
| संस्कारस्य द्वैविध्यम् | ११ | शुर्विणीपतिपमाः | ११ |
| पञ्चविंशतिसंस्काराः | ११ | शुर्विणीनियमाः | १६ |
| षोडश संस्काराः | ११ | दोहदम्प्यावश्यकम् | १९ |
| श्रीशूयोरमन्त्रकसंस्काराः | १२ | पुंसचनम् | १९ |
| रजोदर्शनविचारः | १२ | तत्कालः | ११ |
| प्रशस्ताप्रवृत्तकालः | ११ | पुंसवने कर्तव्यविशेषः | २० |
| पथफलम् | १३ | अनवल्लोभनम् | २० |
| | | तत्कालः | ११ |

| विषयः | पृ. | विषयः | पृ. |
|-----------------------------------|-----|------------------------------|-----|
| अनवद्योभने कर्तव्यविशेषः ... | २० | निषिद्धकाण्डः ... | २९ |
| समन्तोन्नयनम् | २० | तत्र विशेषकर्तव्यम् ... | ३० |
| तत्काण्डः ... | " | जातकमांदिनां छापे ... | " |
| समन्तस्य श्रीसंस्कारस्वम् ... | २१ | मातारि गर्भिण्याम् ... | " |
| मृत्तिकागृहम् ... | " | मातारि रजस्वत्याणाम् ... | ३१ |
| जातकर्म | २२ | विचारम्: | ३१ |
| पुत्रजनने कर्तव्यम् ... | " | तत्र काण्डः ... | " |
| कर्तुंस्तत्काण्डिकी शुद्धिः ... | " | अनुपनीतधर्मः ... | " |
| अत्र उपपन्नं मधुपुत्रप्राशनम् ... | २३ | वाजदिलक्षणम् ... | ३२ |
| श्वतो दशदिनपूर्य्यम् ... | " | उपनयनम् | ३२ |
| नामकरणम् | २४ | तत्र काण्डः ... | " |
| तत्काण्डः ... | " | जन्ममासलक्षणम् ... | " |
| ब्राह्मणादीनां नाम ... | २५ | तद्विशेषः ... | ३३ |
| श्रीणां विशेषः ... | " | अनुकल्पः ... | " |
| मासनामानि ... | " | अनुपनयने मास्यता ... | " |
| मलमाते विशेषः ... | " | अनध्यायप्रतिप्रसवः ... | ३४ |
| उक्तकालातिक्रमे ... | २६ | उपरामे विशेषः ... | ३५ |
| कर्णवेधः | २६ | उपनेपोपनेत्रपित्तप्रापधितान् | " |
| तत्काण्डः ... | " | पण्डितुपनयनम् ... | " |
| फर्णवेधे लघी ... | " | उपनेत्रकमा ... | ३६ |
| निष्क्रमणम् | २७ | परिधानोत्पिपनिर्गमः ... | " |
| तत्र काण्डः ... | " | अद्वैतलक्षणम् ... | " |
| निष्क्रमणे कर्तव्यं ... | " | वस्त्रेषु विशेषः ... | " |
| उपवेशनम् | २७ | मेखलाव्यवस्था ... | ३७ |
| तत्र काण्डः ... | " | अनुकल्पः ... | " |
| तत्र मन्त्राः ... | " | दण्डाः ... | " |
| वज्रप्राशनम् | २८ | उपवीतम् ... | ३८ |
| तत्र काण्डः ... | " | धारणे विशेषः ... | " |
| तत्र कर्तव्यम् ... | " | उपवीत्यादिलक्षणम् ... | ३९ |
| तत्र फाट्याधिक्यम् ... | " | पुनरुपनयने विशेषः ... | " |
| जीविकापरीक्षा ... | " | पुनरुपनयननिमित्तानि ... | ४० |
| चूडाकर्म | २९ | ब्रह्मचारिभर्माः ... | " |
| तत्र काण्डः ... | " | गुरुतेवाफलाय ... | ४१ |

| विषयः | पृ. |
|-------------------------------------|-----|
| गुहनिन्दाफलम्... | ४२ |
| निरयमाः | " |
| अप्रिकायम् | ४३ |
| समिरादरण्यम् | " |
| समित्पारिमाणम् | " |
| अप्रिकायांकरणे प्राप्तिताम् | ४४ |
| अभिगदनम् | " |
| गुवांदीनां उद्योगम् | " |
| प्रत्यभिवादनम् | ४६ |
| प्राज्ञपत्य क्षत्रियादीनामभिप्रायने | |
| प्राप्तचित्तम् | ४६ |
| माल्यतानिमित्तानि | ४८ |
| मार्गापसरणे विशेषः | " |
| अध्ययनधर्माः | ४९ |
| पवित्रम् | ५० |
| शत्रुसन्निपाद्यपाननिषेधः | " |
| शुभ्रपाकम् | " |
| विधानाद्यदेतवः | ५१ |
| गुरुधर्माः | " |
| शदान्त्यापाननपेयः | ५२ |
| विद्यादानफलम् | ५३ |
| अनध्ययाः | " |
| प्रदीपः | " |
| अन्वेष्टनध्ययाः | ५४ |
| नैमित्तिकानध्ययाः | ५५ |
| तत्कालिकानध्ययाः | " |
| अहोरात्रानध्ययाः | ५७ |
| पक्षिपवनध्ययाः | ५८ |
| त्रिदिनानध्ययाः | " |
| विमासानध्ययाः | ५९ |
| षण्मासानध्ययाः | " |
| अनध्ययापवादः | " |
| मित्राप्रकारः | ६० |

| विषयः | पृ. |
|---------------------------|-----|
| तत्र विशेषः | ६१ |
| गुरुवे निवेदनम् | " |
| ब्रह्मचर्याविधिः | ६२ |
| ब्रह्मचारिद्वैविध्यम् | " |
| ब्रह्मचर्यफलम् | ६३ |
| वेदनतानि | " |
| मत्तलोपप्राप्तमित्तम् | " |
| आश्रमविकल्पसमुच्चयौ | ६४ |
| गार्हस्थ्यस्तुतिः | ६५ |
| समावर्तनम् | ६५ |
| गुरुश्रुतिः | " |
| छातनधर्माः | ६६ |
| व्यावरणभेदाः | ७४ |
| विद्यासूत्रकरणम् | ७४ |
| कन्यालक्षणानि | " |
| वर्णरूपम् | " |
| वत्समा वंशः | ७५ |
| अथमा वंशः | " |
| नारदोक्तकन्यालक्षणानि | ७६ |
| सापिण्यम् | " |
| गोत्रप्रवरनिर्णयः | ८३ |
| भृगुणा निर्णयः | ८५ |
| आह्निसो निर्णयः | ८७ |
| विशामिवाः | ८९ |
| अत्रयाः | ९० |
| पण्डितः | ९१ |
| कश्यपाः | ९२ |
| अगस्त्यः | ९३ |
| द्रामिण्यापणाः | " |
| गोत्रप्रवरनिर्णयस्तोत्राः | ९५ |
| वर्युणाः | ९७ |
| विवाहक्रमः | ९८ |
| विवाहभेदाः | ९९ |

| विषयः | पृ. | विषयः | पृ. |
|----------------------------------|-----|----------------------------------|-----|
| विवाहव्यवस्था | १०० | अग्निद्वयसंसर्गः | ११६ |
| कन्याविक्रयिणो निन्दा | " | सार्पप्रातर्होमः | ११७ |
| विवाहे कन्यारजोदर्शने कर्तव्यम् | " | होमकालः | " |
| विवाहे उदगयनादिकालः ... | " | होमधर्माः | ११८ |
| ज्येष्ठविचारः | १०१ | प्रोषितपतिधर्माः | ११९ |
| विवाहकालः | १०२ | विषयधर्माः | " |
| नमिकादिलक्षणानि | " | सप्तपाकसंस्थाआधानादीनि ... | १२० |
| विवाहे दोषाः | " | वर्णजातिविवेकः | १२० |
| कन्यादानकालम् | " | अनुलोमजाः | " |
| सार्धकृतिकन्यादाने विशेषः ... | १०३ | प्रतिषेधाः | १२१ |
| कन्यादानकालम् | " | जातपुत्रकर्मः | " |
| कन्यावयोविशेषेण फलविशेषः | " | वर्णधर्माः | १२२ |
| स्वयंवरणम् | " | ब्राह्मणस्यापत्कल्पः | " |
| दत्तकन्यापहादे दण्डादि ... | १०४ | ब्राह्मणस्य वाणिज्ये विशेषः ... | १२३ |
| शुल्कदातुर्द्वयान्तरगमनादिवृ | | राशे निदेशः | १२४ |
| क्तव्यम् | १०५ | क्षत्रियधर्माः | १२५ |
| कन्यादोषाः | १०६ | वैश्यधर्माः | १२५ |
| अभिषेदननिमित्तानि | " | कृष्यां विधेयानि | " |
| विवाहोपनयनादी निषेधाः ... | १०७ | खलपक्षः | १२६ |
| अनुकल्पः | " | धान्यभागः | " |
| विवाहाद्यपदगमनारी प्रायश्चित्तम् | १०९ | शूद्रधर्माः | १२६ |
| आशीचनिर्णयः | " | तस्य पुत्र्यादिश्ववणे जपे होमे च | |
| रजोदोषे | ११३ | अधिकारः | १२७ |
| वैविधियानम् | " | शूद्रस्य पञ्चगव्यासनम् ... | १२८ |
| कन्यादानार्थं राशानि ज्ञानम् | " | शूद्रस्य पञ्चमहायज्ञाः | " |
| मधुपर्कः | ११४ | शूद्रस्य ज्ञानेऽधिकारः | १२९ |
| वधूप्रवेशः | " | शूद्रस्य आदे नामगोत्रादि ... | १३० |
| मण्डपोद्गासनकालः | " | आश्रमधर्माः | १३१ |
| तृतीयापराधपर्यायविधानिषेधः | ११९ | तत्र पृथग्यधर्माः | " |
| अनन्त्योऽस्य विवाहनिषेधः ... | " | तृतीयाधमः | " |
| गृध्रिदोषः | १२६ | संन्यासः | १३३ |
| पण्योऽप्येवनिर्णयः | " | अस्य चातुर्विध्यम् | " |
| शुश्रूषादेऽपि | " | यतिनामानि | १३४ |

| विषयः | पृ. | विषयः | पृ. |
|----------------------------------|-----|----------------------|-----|
| यतिधर्माः | १३५ | सौप्यन्तीकर्म | १३५ |
| यतिपात्राणि | " | जातकर्म | " |
| गयादितीर्थे दण्डप्रदर्शनम् ... | १३६ | नैमित्तिकम् | १४० |
| यतिमरणे | " | नामकरणम् | १४१ |
| उपसंहारः | " | निष्क्रमणम् | " |
| कातीयसुत्रानुसारिप्रयोगाः | | अन्नप्राशनम् | " |
| प्रयोगपरिभाषा | १३६ | चूडाकरणम् | १४२ |
| सर्वत्रोपश्रुतः स्थायीपाकप्रयोगः | " | उपनयनम् | १४३ |
| पुंसवनम् | १३८ | समावर्तनम् | १४५ |
| सीमन्तोन्नयनम् | १३८ | विवाहप्रयोगः | १४७ |

समाप्तेयमनुक्रमणिका ।

इत्यस्य वाक्यशेषे श्रूयते—‘यद्वै किञ्च मनुरवदत्तद्वेपजम्’ इति ।

स्मृतिप्रवर्तकां उक्ता याज्ञवल्क्येन—

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोद्विराः ।

यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनवृहस्पती ॥

पराशरव्यासशङ्खलिखिता दक्षगौतमौ ।

शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रवर्तकाः ॥ इति ।

अन्येऽप्युक्ताः पैठीनसिना—

तेषां मन्वद्विरोव्यासगौतमात्र्युशनोयमाः ।

वसिष्ठदक्षसंवर्तशातातपपराशराः ॥

विष्ण्वापस्तम्बहारीताः शङ्खः कात्यायनो गुरुः ।

प्रचेता नारदो योगी बौधायनपितामहौ ॥

सुमन्तुकाश्यपौ बभ्रुः पैठिनो व्याघ्र एव च ।

सत्यव्रतो भरद्वाजो गार्ग्यः कात्यायनस्तथा ॥

जाबालिर्जमदग्निश्च लौगाक्षिर्ब्रह्मसंभवः ।

इति धर्मप्रणेतारः पट्त्रिंशदृष्यः स्मृताः ॥

पट्त्रिंशदिति न परिसंख्या । तेन विश्वामित्रादीनामपि धर्मप्रणेतृत्वं सिद्धम् । एवमायुर्वेदादीनामपि स्मृतित्वम् । तत्र केचन दृष्टमूलाः केचन श्रुतिमूला अर्थाः । एवं पुराणादीनामपि । अस्माभिस्तु प्रामाणिकानां वरा-
हमिहिरादीनां वचांसि प्रमाणत्वेनोपन्यस्यन्ते ।

संहिता उक्ता हैमाद्रौ भविष्यत्पुराणे—

भार्गवी नारदीया च धार्दस्पत्याद्विरस्यपि ।

स्वार्थभुवस्य शास्त्रस्य चतस्रः संहिता मताः ॥

यत्तु सूतसंहितायाम्—

आद्या सनत्कुमारोक्ता द्वितीया सूतसंहिता ।

तृतीया शांकरी विष्वाध्वतुर्यी वैष्णवी मता ।

तत्परा संहिता प्राक्षी सौर्यन्त्या संहिता तथा ॥

इति संहिता उक्तास्ताः स्कान्दान्तर्गता न स्वतन्त्राः ।

अन्येऽपि संहिताकर्तारः कश्यपेन गणिताः—

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः ।

कश्यपो नारदो गणो मरीचिर्भनुरद्विराः ॥

रोमशः पौलशिश्रैव च्यवनो यवनो भृगुः ।
शौनकोऽष्टादशैवैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः ॥ इति ।

संहितालक्षणं च—

आदौ शास्त्रोपनयनं खेदचारोऽब्दलक्षणम् ।
तिथिवासरनक्षत्रगोरातिर्व्यर्थलक्षणम् ॥
मुहूर्तोपग्रहः सूर्यसंक्रातिर्गोचरक्रमः ।
चन्द्रतारावलं चैव क्रियाः षोडशकर्मणाम् ॥
नृपाभिपेचनं देवप्रतिष्ठा सञ्चालक्षणम् ।
अग्न्याधानं मेघगर्भनिखिलोत्पातलक्षणम् ।
तच्छान्तिर्मित्रकाध्यायस्तृतीयस्कन्धसंभवः ॥

तृतीयस्कन्धः संहिता, संभवो रचना ।

महापुराणान्युक्तानि वैष्णवे—

ब्राह्मं पार्थ वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।
तथाऽन्यं नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् ॥
आग्नेयमष्टमं चैव भविष्यं नवमं तथा ।
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् ॥
वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम् ।
चतुर्दशं वामनं च कौर्म पञ्चदशं स्मृतम् ॥
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम् ।
अष्टादश पुराणानि कीर्तितानि भया तव ॥ इति ।

उपपुराणानि कौर्म—

अन्यान्यपि पुराणानि मुनिभिः कथितानि तु ।
आर्षं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परम् ॥
नृतीर्यं नान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम् ।
दुर्वीरसोक्तमाश्चर्यं नारदोक्तमतः परम् ॥
कापिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितम् ।
ब्रह्माण्डं बारुणं चैव कालिकाह्वयमेव च ॥
माहेश्वरं तथा सान्धं सौरं सर्वोयसंचयम् ।
पराशरोक्तं ग्रथमं तथा भागवताह्वयम् ।
इदमष्टादशं प्रोक्तं पुराणं कौर्ममुत्तमम् ॥

महापुराणमध्ये गणितानामप्युपपुराणेषु गणनायां न कोऽपि विरोधः ।
एकस्यैवोभयसंज्ञाकरणे विरोधाभावात् । इत्युपपुराणानि ।

धर्मलक्षणं जैमिनिराह—चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः । विधिश्चोदनाशब्देनो-
च्यते । तत्प्रमाणक इत्यर्थः । धर्माधर्मयोरुपादानपरित्यागावुक्तौ स्कान्दे—

धर्माद्राज्यं धनं सौख्यमधर्मादुःखसंभवः ।

तस्माद्धर्मं सुखार्थाय कुर्यात्पापं विसर्जयेत् ॥

“ धर्मेण पापमपनुदति ” इति च श्रुतिः । धर्मश्च द्विविधः । श्रौतः
स्मार्तश्च । श्रौतोऽग्निहोत्रज्योतिष्टोमादिः । स्मार्तोऽष्टकादिः । अस्मिन्
ग्रन्थे स्मार्तधर्मः [अधि?] क्रियते ।

अथ देशा विष्णुपुराणे—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।

वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥

अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम ।

कदाचिद्भते जन्तुमानुष्यं पुण्यसंचयात् ॥

मनुः—आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।

तथोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥

तयोर्हिमवद्विन्ध्ययोः । विष्णुर्विशेषमाह—

चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन्देशे न विद्यते ।

तं म्लेच्छदेशं जानीयादार्यावर्तमतः परम् ॥

मनुः—कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ।

स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्ततः परः ॥

तथा—सरस्वतीदृपद्वत्योर्देवनद्योर्दन्तरम् ।

तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥

तथा—हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यः प्राग्विनशनादपि ।

प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥

विनशनं सरस्वत्याः । तथा—

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसैनिकाः ।

एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ॥

एतान्द्विजातयो देशान्संश्रयेयुः प्रयत्नतः ।

शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवसेद्दृत्तिकर्षितः ॥

एष धर्मस्य वै योनिः समासात्कथितः विज्ज ।
सर्वेषापहरः पुण्यसाधनं सर्वकर्मणाम् ॥ '

अनन्तरं शैलपूजः । मत्स्या विराट्देशः । पञ्चालः कान्यकुब्ज-
देशः । शूरसेनिका मथुरादेशः । व्यासः—

सर्वे शिलोचयाः पुण्याः सागराः सरितस्तथा ।
अरण्यानि च पुण्यानि विशेषैर्भूमिषु तथा ॥

तथा-आर्यावर्तसमुत्पन्नो द्विजो वा यदि वाऽद्विजः ।

कर्मदां सिन्धुपारं च करतोयां न लब्धयेत् ॥

आर्यावर्तमतिक्रम्य विना तीर्थक्रियां द्विजः ।

आज्ञां चैव तथा पित्रोरैन्दवेन विधुष्यति ॥ इति ।

इति निबन्धोपयोगी विचारः ।

विनायकपूजनस्वस्तिवाचनादि ।

अथ संस्कारोपयोगि विनायकपूजनस्वस्तिवाचनाद्युच्यते ।

विनायक- गृहपरिशिष्टे—'आदौ विनायकः पूज्यः अन्ते तु कुलदेवताः ॥

पूजन् ॥ ततः—अथ स्वस्तिवाचनमृद्धिपूर्तेषु । ऋद्धिर्विवाहान्ता अप-

त्यसंस्काराः, प्रतिष्ठोत्थापने पूर्ते, तत्कर्मणश्चाद्यन्तयोः कुर्यादिति । श्रौतकः—

स्वस्तिवा- पुण्याहवाचनविधिं वक्ष्यामोऽपि यथाविधि ।

चमद । प्रयोगः कर्मणां चादावन्ते चोदयसिद्धये ॥ इति ।

व्यासः—संपूज्य गन्धमास्त्याद्यैर्ग्राहणान्त्वस्ति वाचयेत् ।

धर्मकर्मणि मादृत्ये संप्रामेऽद्भुतदर्शने ।

तत्र प्रधानप्रयोगान्तर्गतमिति केचित् । प्रयोगत्रयिर्भूतमिति तु बहवः ।

सत्राद्ये प्रधानसंकल्पं कृत्वा तत्कार्यम् । द्वितीये तु तत्कृत्वा प्रधानसंकल्प

इति प्रयोगरत्ने भट्टचरणाः ।

कर्मप्रदीपे—कर्मोद्दिपु च सर्वत्र मातरः खगलाधिपाः ।

पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ॥

प्रतिमासु च शुद्धासु लिखित्वा वा पटादिषु ।

अपि वाऽक्षतपुच्छेषु नैवेद्यैश्च पृथग्वैधैः ॥

कुड्यलम्बा वसोर्धाराः सासारं घृतेन तु ।

कारयेत्तच्च धारा वा नास्तितीचा न चोच्छ्रिताः ॥

आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः ।

पङ्कथः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत् ॥ इति ।

मातरो गौर्यादयः षोडश । वसोर्ध्वारादेवताः 'ब्राह्मी माहेश्वरी' इत्याद्याः
सप्त स्मृत्यन्तरप्रसिद्धा ज्ञेयाः । पङ्कथ इति कार्तीयच्छन्दोगपरम् । अन्येषां
नवदैवत्यम् ।

महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च ।

नवदैवतमत्रेष्टं शेषं पादपौरुषं विदुः ॥

इति हेमाद्रौ वचनादिति तातचरणाः । मम तु प्रतिभाति—

महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च ।

ज्ञेयं द्वादशदैवत्यं तीर्थे प्रोष्ठपदासु च ॥

इति द्वादशदैवत्यविधानात्पक्षत्रयमपि यथासंप्रदायं व्यवतिष्ठते इति ।

आभ्युदयिकापरपर्यायनान्दीश्राद्धनिमित्तान्याह लौगाक्षिः—

नान्दीश्राद्धम् । नामान्नचौल्लगोदानसीमोपनयपुंस्त्वे ।

स्नानाधानविवाहेषु नान्दीश्राद्धं विधीयते ।

वृद्धगार्ग्यः—

अग्न्याधानाभिषेकादिष्विष्टापूर्ते स्त्रिया ऋतौ ।

वृद्धिश्राद्धं प्रकुर्वीत आश्रमग्रहणे तथा ॥ इति ।

जाबालिः—'यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासु मेखलाबन्धमोक्षयोः ॥

पुत्रजन्मवृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ॥

विष्णुपुराणेऽपि— कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशे नववेश्मनः ।

नामकर्मणि धालानां चूडाकर्मणिके तथा ॥

सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने ।

नान्दीमुखं पितृगणमर्चयेत्प्रयतो गृही ॥

तथा—जातस्य जातकर्मादिक्रियाकाण्डमशेषतः ।

पुत्रस्य कुर्वीत पिता श्राद्धं चाऽभ्युदयात्मकम् ॥

जातकर्मादिक्रियाकाण्डमपत्यसंस्काराः । पुत्रस्येति पुंस्त्वमविवक्षितमनु-
वाद्यविशेषणत्वान् । तेन कन्याया अपि संस्काराङ्गमाभ्युदयिकं समन्त्रकमेव
भवति । मन्त्रवाचे मानाभावान् । यत्तु पुंजातकर्मादिसंस्कारानुक्त्वा याज्ञ-
वल्क्यवचः—'तूर्णामेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः' । इति
उत्पन्नानाङ्गमन्त्रवाधपरम् । यदि हि 'अप्सवभूयेन चरन्ति' इति तृती-
यान्तेनेन साङ्गभावनामुक्त्वा तस्यां तूर्णान्त्वं विधीयेत तदा स्याद(ङ्गा)ङ्गभूतम-

न्रवाचः । इह तु “यज्ञार्थं वै काम्या इष्ट्यस्ता उपांशु कर्तव्याः”
इत्यत्रेष्टीनामिव क्रियाणां प्रथमान्तपदोपात्तत्वात्प्रधान एव तूष्णीन्त्यविवि-
र्त्ताऽङ्गेऽपीति वृद्धिश्चाहं समञ्जसमेव भवतीति श्राद्धमयूखे तातचरणाः ।

यत्तु—‘नानिष्टा तु पितृन् श्राद्धे कर्म नैदिकमारभेत’ तद्यत्र प्राति-
स्विकवाक्ये नान्दीश्राद्धमुक्तं तत्रैवोपसंहियते । यद्वा वाक्यान्तरप्राप्तकर्मा-
ङ्गत्वे एतत्पूर्वकालतामात्रमेव बोधयति न कर्माङ्गतामपि । अतो न संध्याव-
न्वावाचतिप्रसङ्गः । पक्षद्वयेऽपि—

नाष्टकासु भयेच्छ्राद्धं न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते ।

न सोप्यन्तीजातकर्मप्रोपितागतकर्मसु ॥

इति कर्मप्रदीपवचोऽनुवादकमेव न निषेधकं प्राप्त्यभावात् । सोप्यन्ती-
कर्म सुखप्रसवार्थम् । प्रोपितागते च पुत्रे पितुः कर्म छन्दोगपरिशिष्टे
प्रसिद्धम् । अत एव—

नैमित्तिकमयो कस्ये श्राद्धमभ्युदयात्मकम् ।

पुत्रजन्मनि तत्कार्यं जातकर्मसमं नरैः ॥

इति मार्कण्डेयपुराणवचने नैमित्तिक-जातकर्मसम-पदाभ्यां पुत्रजन्मनि-
मित्तकमेव श्राद्धं न तु जातकर्माङ्गमित्युक्तं संगच्छते ।

यत्तु हेमाद्रौ—‘वृद्धिश्चाहं तु कर्तव्यं जातकर्माधिकेषु वै’ इति । तत्रापि
जातकर्म आदौ चेपामित्यतद्वृणसंविधानवहुर्नृणां हिणा नामकर्मादीनामेव ग्रहणं
न जातकर्मण इति । एवं च जातकर्मातिरिक्तसंस्कारेषु नान्दीश्राद्धस्याङ्गत्वे
सिद्धे यदैकसंस्कार्यस्यानेकसंस्कारेष्वेककर्तृकेषु एकस्मिन्काले युगपदुप-
स्थितेषु देशकालकर्त्रेक्यादगृह्यमाणरूपतन्नन्यास्यादेव मातृपूजनाभ्युदयिकयोः
सङ्गदुष्टान्ते प्राप्ते—

गणशः क्रियमाणेषु मातृभ्यः पूजनं सकृत् ।

सकृदेव भयेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ॥

इति श्राद्धवचनमनुवादकमेव न सकृत्त्वविधिपरम् । अन्ये तु—‘अनेनैव
न्यायेनानेकसंस्कार्याणां सजातीयविजातीयानेकसंस्कारेष्वपि सकृदेव तन्’
इत्याहुः । तत्र । संस्कारजन्यचरमापूर्वाणामनेकसंस्कार्यानिष्ठत्वेन तदङ्गाभ्युद-
यिकश्राद्धजन्याङ्गापूर्वाणामपि तन्निष्ठत्वस्यावश्यकत्वात् । न च तत्संभव-
ति ‘एकस्या सामग्र्यैकमेव कार्यं जन्यते’ इति नियमस्य योगसिद्धय-
धिकरणे स्थापितत्वाच्च सकृदनुष्ठितेनाभ्युदयिकेनानेकापूर्वोत्पत्तिरिति अने-
कसंस्कार्येषु पृथगेव वृद्धिश्चाहमिति तातचरणाः ।

ननु सत्रादिष्वनेक्यजमानगतान्यनेकान्यपूर्वाण्येकस्मात्सत्रप्रयोगादुत्पद्यन्त इत्युक्तनियमे व्यभिचारात्प्रकृतेऽपि तथास्त्विति चेन्न । तत्रापि स्वस्वात्मघटितसामग्रीभेदात् ।

एवं प्रधानावृत्त्या प्राप्ताया नान्दीश्राद्धावृत्तेरपवादः कर्मप्रदीपे—

असकृद्यानि कर्माणि क्रियेरन्वर्त्मकारिणा ।

प्रतिप्रयोगं नैताः स्युर्मातरः श्राद्धमेव च ॥ इति ।

तान्येव कर्माण्याह—

आधानहोमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च ।

वल्किर्मणि दर्शं च पौर्णमास्यां तथैव च ।

नवयज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्त्येवं मनीषिणः ॥

एकमेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक् पृथक् ॥

असकृत्पुनः पुनः । प्रतिदिनं प्रतिमासं प्रत्यब्दं चेति यावत् । नवयज्ञो नवान्नेष्टिः । पूर्वश्लोकस्थकर्मशब्दस्योत्तरश्लोकपरिगणितेषु कर्मसूपसंहारस्तेनापरिगणितज्योतिष्टोमादिषु भवत्येव प्रतिप्रयोगं वृद्धिश्राद्धमिति तातचरणाः । होमादिनवयज्ञपर्यन्तेषु न पृथक् श्राद्धं किंवाधानादौ कृतमेव श्राद्धमुपकरोतीति केचित् । आभ्युदयिके कालमाह वसिष्ठः—

पूर्वेर्गुर्मातृकं श्राद्धं कर्माहे पैतृकं तथा ।

उत्तरेणुः प्रकुर्वीत मातामहगणस्य तु ॥

अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः ।

पूर्वेर्गुर्वं प्रकुर्वीत पूर्वाह्णे मातृपूर्वकम् ॥ इति ।

मातृपूर्वकमेव श्राद्धत्रयं विवृतमाश्वलायनेन—

माता पितामही चैव संपूज्या प्रपितामही ।

पित्रादयस्त्रयश्चैव मातुःपित्रादयस्त्रयः ।

एते नवार्चनीयाः स्युः पितरोऽभ्युदये द्विजैः ॥ इति ।

यत्तु वृद्धवसिष्ठवचनम्—

नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम् ।

नाम संकीर्तयेद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम् ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे च—

वृद्धमुख्यास्तु पितरो वृद्धिश्राद्धेषु भुञ्जते । इति ।

तदाश्वलायनान्यपरम् । आश्वलायनानां त्वाश्वलायनवचनादानुलोम्येन
तन्मात्रादिपूर्वकमिति भट्टचरणप्रभृतयो यहवः । मात्रादीन्विशिनष्टि विष्णुः—
नान्दीमुखान्पितृनादौ तर्पयेत्पितृदेवताः । इति ।

अत्र पितृशब्दो न जनकपरः किंतु सपिण्डीकरणजन्यपितृभावपरः ।
पितृनिति बहुवचनात् । यत्तु ब्राह्मे—

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रप्तिमहः ।

त्रयो ह्यश्रुमुखा एते पितरः संप्रकीर्तिताः ।

तेभ्यः पूर्वं त्रयो ये तु ते तु नान्दीमुखाः स्मृताः ॥ इति ॥

तन्महालयप्रकरणपठितत्वादिति हेमाद्र्यादयः ।

विभक्त्यादिविषये विशेषः प्रयोगरत्नसंग्रहे—

शुभाय प्रथमान्तेन वृद्धौ सं(सां ?)कल्पमाचरेत् ।

न पष्ठया यदि वा कुर्यान्महादोषोऽभिजायते ॥

अनस्मद्वृद्धशब्दानामरूपाणामगोत्रिणाम् ।

अनाम्नां चातिलाद्यैश्च नान्दीश्राद्धं च सव्यवत् ॥

कारिकायां च—

संवन्धनामरूपाणि वर्जयेदत्र कर्मणि ।

पिण्डदानव्यवस्थोक्त्य भविष्यपुराणे—

पिण्डनिर्यपणं कुर्यान्न वा कुर्यान्नराधिप ।

वृद्धिश्राद्धे महाबाहो कुलधर्मानवेक्ष्य तु ॥ इति ।

पिण्डदानपक्षे विशेषमाह वृद्धवसिष्ठः—

दधिकर्कन्धुसंमिश्रान्पिण्डान्दद्यात्तथाक्रमम् ।

कर्कन्धुर्वदरीफलम् । एकैकस्मै पिण्डद्वयं वा देयम् ।

एकं नाम्नाऽपरं तूष्णीं तथा पिण्डद्वयं बुधः ॥

इति चतुर्विंशतिमतात् । अत्र कर्तव्यवस्थोक्ता कालायनेन ।

स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु ।

पिण्डानोद्वाहनात्तेषां तस्याभावे तु तत्कृमात् ॥

तेषां सुतानामोद्वाहनात्प्रथमविवाहपर्यन्तं पिता स्वपितृभ्यः पिण्डदानो-
पलक्षितं वृद्धिश्राद्धं कुर्यान् । तस्य पितुरभावे तस्य संस्कार्यस्य पितृणां यः
क्रमस्तेन क्रमेण पितृव्यमातुल्यदिर्वैद्यान् स्वपितृभ्य इति हेमाद्रिः । अत्र
पितुरभावो ध्वंस एव । नत्त्वत्यन्ताभावः । तथात्वे प्रतिनिधित्वादेव तदीयेभ्य
एव पित्रादिभ्यो ददात्येवेति वचनवैयर्थ्यं स्यात् । तं पितरमारभ्य संस्कार्यस्य

चारिणीसंयोगः पञ्चानां यज्ञानामनुष्ठानमष्टका पार्वणः श्राद्धं श्रावण्याप्रहा-
यणी चैत्र्याश्वयुजीति सप्त पाकयज्ञसंस्था अन्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ
चातुर्मास्यान्याप्रयणोष्टिर्निरुदपशुबन्धः सौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसंस्था
अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्रोऽभोर्याम इति सप्त
सोमसंस्था इत्येते चत्वारिंशत्संस्काराः' इति । 'यस्यैते चत्वारिंशत्संस्कारा
अष्टावात्सरुणाश्च स ब्राह्मणो ब्रह्मणः सायुज्यमाप्नोति' इति । पार्वणः स्था-
लीपाकः । श्रावणी तत्र क्रियमाणं श्रवणाकर्म । आप्रहायणी तत्र क्रियमाणं
प्रत्यवरोहणम् । चैत्री तत्र क्रियमाणः शूलपाकः । आश्वयुजी तत्र क्रियमा-
णमाश्वयुजीकर्म । अष्टावात्सरुणाः । यथा सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शौच-
मनायासो मङ्गल्यमकार्ष्यमस्पृहा' इति ।

हारीतः—द्विविध एव संस्कारो भवति ब्राह्मो दैवश्च । गर्भाधानादिः स्मार्तों
ब्राह्मः । पाकयज्ञा हविर्यज्ञाश्चेति दैवः । ब्राह्मेण संस्कारेण संस्कृतं ऋषीणां
सलोकतां गच्छति । दैवेनोत्तरेण संस्कृतो देवानां समानतां सलोकतां
गच्छतीति ।

अङ्गिरास्तु पञ्चविंशतिसंस्कारानाह—

पञ्चविंशति-
संस्काराः ।

गर्भाधानं पुंसकनं सीमन्तो वलिरेव च ।
जातकृत्यं नामकर्म निष्कर्मोऽज्ञाशनं परम् ॥
चौलकर्मोपनयनं तद्व्रतानां चतुष्टयम् ।
छानोद्वाहौ चाप्रयणमष्टकाश्च यथाययम् ॥
श्रावण्यामाश्वयुज्यां च मार्गशीर्ष्या च पार्वणम् ।
उत्सर्गश्चाप्युपाकर्म सहायज्ञाश्च नित्यशः ॥
संस्कारा नियता ह्येते ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
पञ्चविंशतिसंस्कारैः संस्कृता ये द्विजातयः ।
ते पवित्राश्च योग्याश्च आह्वादिषु सुयजिताः ॥ इति ।

वलिर्दिण्युवलिः । आश्वलायनस्तु संज्ञाविशेषमप्याह—

नैमित्तिकाः षोडशोक्ताः समुद्राद्वावसानकाः ।
सप्तैवाप्रयणाद्याश्च संस्कारा वार्षिका मताः ॥
मासिकं पार्वणं प्रोक्तमशक्तानां तु वार्षिकम् ।
सहायज्ञाश्च नित्याः स्युः संध्यावक्त्राग्निहोत्रवत् ॥ इति ।

पार्वणं श्राद्धम् । मासिकं मासि मासि कर्तव्यम् । अशक्तानां वार्षिकं वर्षे एकवारं कर्तव्यमिति । संस्कारानुवत्त्वा यमः—

शूद्रोऽप्येवंविधः कार्यो विना मन्त्रेण संस्कृतः । इति ।

होमोऽपि द्विजानामेव ।

गार्भेहोमैर्जातकर्मचूडामौञ्जनिबन्धनैः ।

वैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥

इति मनुवाक्ये द्विजग्रहणादिति धर्मप्रकाशे ।

वीजं शुक्रशोणिते तत्संवन्धि निषिद्धकालमैथुनादिप्रयुक्तं वैजिकम् ।

अशुचिगर्भकोशस्थितिजं गार्भिकम् । तदपगच्छतीति कुल्लुकभट्टः ।

वीजगर्भयोः पापनिमित्तत्वाभावादुभयसंसर्गादशुचित्वमात्रमेतदशुद्ध्यर्थं न पापमिति तु भेदातिथिः ।

विज्ञानेश्वरस्तु 'एवमेतः शर्म याति वीजगर्भसमुद्भवम्' इत्येतद्व्याख्याने—
'गोत्रव्याधिसंक्रान्तिनिमित्तमेतन्न तु पतितोत्पन्नत्वादि' इत्याह । पापनि-
रासार्यत्वाच्च नित्यतापि । याज्ञवल्क्यः—

ब्रह्मक्षत्रियविदः शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः ।

निषेकाद्याः श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः ॥ इति ।

तेषां मन्त्रतः क्रिया इत्युक्तेः शूद्रस्यामन्त्रका इति गम्यते । तत्र तस्याध्य-
यनाभावात्तदङ्गभूतोपनयनवेदग्रन्थादीनां निवृत्तिः । जातकर्माद्याः स्त्रीणा-
मप्यमन्त्रकाः—

तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समेन्द्रकः । इति स्मृतेः ।

अत्र चोपनयनान्तानामावश्यकत्वं न स्नानादीनाम् । तेन 'यमिच्छेत्तु
तमायसेद्ब्रह्मचर्योदेव प्रव्रजेत्' इत्यादि संगच्छते । आश्वलायनेन तु
'उपनिषदि गर्भेलम्भनं पुंसवनमनवलोभनं च' इत्यनवलोभनमप्युक्तम् ।
अन्येऽपि कर्णवेदादयः संस्कारा ज्योतिःशास्त्रोक्तस्तत्र तत्र वक्ष्यन्ते ।

इति संस्कारोदेशः ।

रजोदर्शनविचारः ।

तत्र गर्भाधानहेतुरजोदर्शने प्रशस्ताप्रशस्तकालानाह नारदः—

रजोदर्शने प्रश- कुलीरघृषपापान्त्यनूयुषान्यातुलापटाः ।

एतदशुभम् । राशयः शुभदा स्नेया नारीणां प्रथमार्तिने ॥

कुलीरः कर्पटः । चापो घनुः । अन्त्यो मीनः । नृयुक् मिथुनम् । घटः
कुम्भः । स्मृतिचन्द्रिकायाम्—

पक्षफलम् । शुक्लपक्षे सुशीला स्यात्कृष्णे सा कुलटा भवेत् ।
कृष्णस्य द्वादशी यावन्मध्यमं फलमादिशेत् ॥

तत्रैव—अमारिक्ताष्टमीपष्टीद्वादशीप्रतिपत्स्त्रिपि ।
वर्ज्यतिथ्यादि । परिधस्य च पूर्वार्धे व्यतीपाते च वैधृतौ ।
संध्यासूपप्लवे विद्यामशुभं प्रथमार्तकम् ॥

उपप्लवो ग्रहणम् । तथा—

वारफलम् । रोगो पतिव्रता दुःखी पुत्रिणी भोगभाणिनी ।
पतिव्रता कुशयुक्ता सूर्यवारादिषु क्रमात् ॥

नक्षत्रफलमाह गर्गः—

नक्षत्रफलम् । सुभगा चैव दुःशीला वन्ध्या पुत्रसमन्विता ।
धर्मयुक्ता व्रतग्री च परसंतानमोदिनी ॥
सुपुत्रा चैव दुःपुत्रा पितृवेश्मरता सदा ।
दीना प्रज्ञावती चैव पुत्राढ्या चित्रकारिणी ॥
साण्वी पतिव्रता नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी ।
स्वकर्मनिरता हिंसा पुण्या पौत्रादिसंयुता ॥
नित्यं धनकयासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता ।
मूर्खाऽर्योढ्या गुणवती दक्षर्षदेः क्रमात्फलम् ॥

स्मृति रत्ने—शुभं चैव तु पूर्वार्धे मध्याह्ने मध्यमं फलम् ।

वेगफलम् । अपराह्णे तु वैधव्यं पूर्वरात्रौ शुभं भवेत् ।
मध्यरात्रे तु मध्यं स्यात्पररात्रे शुभान्विता ॥

कश्यपः—मलिना मन्दवारे तु रात्रावपि तथैव च । इति ।
तथा—अमासंक्रान्तिविद्यां च व्यतीपाते च वैधृतौ ।

परिधस्य च पूर्वार्धे पक्षे च गण्डातिगण्डयोः ॥
योगफलम् । व्याघाते नव श्ले तु नाड्यः पञ्चतुर्दर्शने ।
वैधव्यमर्थहानिं च सुक्ताशं महद्भयम् ॥

वैधव्यं शत्रुवृद्धिं च दारिद्र्यं क्षीणजीवनम् ।
वेजोहानिं समायाति सदा पुण्यवती क्रमात् ॥

स्थलविशेषेण फलमाह वसिष्ठः—

ग्रामाद्बुद्धिः परग्रामे चेत्स्यात्सा व्यभिचारिणी ।

स्थानफलम् । पतिव्रता पतिस्थाने सुशीला गृहमध्यके ॥

ग्राममध्ये च वृद्धिश्च विधवा च दिगम्बरा ।

परागारे च दुःशीला आयुष्यं जलसनिधौ ।

धनमध्ये तु कन्या या धनधान्यसमृद्धिदा ॥

परगृह इत्यनेन पित्रादिगृहमपि गृह्यते ।

वस्त्रविशेषेण फलभेदमाह वसिष्ठः—

वस्त्रविशेषे
फलभेदः ।

सुभगा श्वेतवस्त्रा स्याद्दृढवस्त्रा पतिव्रता ।

क्षौमवस्त्रा क्षितीशा स्यान्नववस्त्रा सुखान्विता ॥

दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्याद्रोगिणी रक्तवाससा ।

नीलाम्बरधरा नारी विधवा पुष्पिता यदि ।

मलिनाम्बरतो नारी दरिद्रा स्याद्रजस्वला ॥

द्वारातः—

संमार्जनीकाष्ठतृणामिश्रान्द्वारे दधाना कुलटा तदा स्यात् ।

तत्पुष्पभोगे तपसि स्थिता चेद्दृष्टं रजो भाग्यवती तदा स्यात् ॥ इति ।

इदं फलं प्रथमरजोदर्शनेन एव ।

रजोविन्दुफलमाह वसिष्ठः—

रजोविन्दु-
फलम् ।

वस्त्रे स्युर्विपमा रक्तविन्दवः पुत्रमाप्नुयात् ।

समाश्वेत्कन्यका चेति फलं स्यादयमार्तवे ॥

शान्तिमाह नारदः—

गुणयोगशान्तिः । निन्द्यर्क्षेतिधिवारेषु यदि पुष्पं प्रदृश्यते ।

तत्र शान्तिं प्रकुर्वन्ति धृतदूर्वातिलाक्षतैः ॥ इति ।

शान्तिस्तु शान्तिमयूखे वक्ष्यते । वसिष्ठः—

प्रभूतदोषं यदि दृश्यते तत्पुष्पं ततः शान्तिकर्म कार्यम् ।

पित्रर्जेयेदेव तदैकदाय्यां यावद्रजोदर्शनमन्यपक्षे ॥

दक्षः—आर्तवमिष्टुता नारी नैरुपेक्ष्यते संविशेत् ।

रजस्रव-
निवर्तः ।

न संसर्गं प्रजेत्सर्वैः स्नात्वा पापैः प्रमुच्यते ॥

अच्छनाभ्यक्षने स्नानं प्रवासं दन्तधावनम् ।

न कुर्यात्सार्तया नारी ग्रहाणामीक्षणं तथा ॥

गर्भाधानम् ।

तस्यानां कृन्तनं रज्जुतालपत्रादिवन्धनम् ।

दग्धे शरावे भुञ्जीत पेयं चाञ्जलिम् पिबेत् ॥

वसिष्ठः—‘त्रिरात्रं रजस्वलाऽज्ञानाऽशुचिर्भवति । नाञ्ज्यान्नाभ्यञ्ज्या-
न्नाप्सु स्नायादधः शयीत न दिवा स्वप्यान्नाग्निं स्पृशेत् रज्जुं सृजेत् दन्ता-
न्धावयेत् मांसमश्नीयात्’ इति ।

चतुर्थदिने च स्नानादिना शुद्धा । तथा च स्मृत्यर्थसारे—‘ब्राह्मणी रज-
स्वला चतुर्थेऽहि पष्टिमृत्तिकाभिः शौचं कृत्वा क्षत्रियादिकी पादपादन्मून-
मृत्तिकाभिर्विधवा द्विगुणाभिः शौचं कृत्वा मलं प्रक्षाल्य सचैलं सङ्गृहे
स्नायात्’ इति । अतः सूर्योदयात्पूर्वं स्नानाचरणं दुराचार एव ।

॥ इति रजस्वलानियमाः ॥

प्रथमर्तौ तु विशेषः स्मृतिचन्द्रिकायां स्मृत्यन्तरे—

प्रथमर्तौ तु पुष्पिण्याः पतिपुत्रवतीस्त्रियः ।

अक्षतैरासनं कुर्यात्तस्मिन्नामुष्वेक्षयेत् ॥

हरिद्रागन्धपुष्पादीन्दद्यात्ताम्बूलं वज्रम् ।

आशिपो वाचयेयुस्ताः पतिपुत्रवती भव ॥

दीपैर्नीराजनं कुर्यात्सदीपे वासयेद्द्रुहे ।

लवणापूपमुद्रादि दद्यात्ताभ्यः स्वशक्तिः ॥ इति ।

गर्भाधानम् ।

अथ गर्भाधानम् । तत्र ऋतौ कार्यम् । तदाह याज्ञवल्क्यः—

पोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तस्मिन्पुष्पासु संविशेत् ।

ब्रह्मचार्येव पर्वाण्वाद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत् ॥

निशामहर्णं दिक्सन्निपेयार्थम् । तथा च श्रुतिः—‘‘प्राणं वा एते प्रस्क-
न्दन्ति ये दिवा तस्या संयुज्यन्ते ब्रह्मवर्चसमेव तद्यद्रात्रौ संयुज्यन्ते’’ इति ।

शङ्खलिखतावपि—‘नार्तवेऽपि दिवा व्रजेत्’ इति । आद्याश्चतस्र इति
चतुर्थदिने रजसोऽनिवृत्तौ ज्ञेयम् । रजोनिवृत्तौ तु देवलः—तस्मात्त्रिरात्रं
वारान्ते पुष्पितान्परिवर्जयेत् ॥ इति ।

हिरण्यकेशिसूत्रमपि—‘चतुर्थ्यां स्नातां प्रयत्नवस्त्रामलंकृतां ब्राह्मणसं-
भाषामाचम्योपहृत्यते’ इति । ब्राह्मणसंभाषां प्रशस्तब्राह्मणेन कृतसंभाष-
णाम् । आपस्तम्बः—

हानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेऽहनि शस्यते ।

गम्या निवृत्ते रजसि नानिवृत्ते कथंचन ॥ इति ।

युग्मासु फलमाह मनुः—

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु । इति ।

एकस्यां सकृदेव गच्छेत् । यथोक्तम्—

एवं गच्छन् स्त्रियं क्षामां मघां मूलं च वर्जयेत् ।

सुस्थ इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्ष्म्यं जनयेत्पुमान् ॥ इति ।

सुस्थे एकादशादिस्थानस्थिते । क्षामता चास्त्रिगन्धभोजनादिना कार्यो रजःक्षयार्थम् । यथोक्तम्—

पुमान्पुंसोऽधिके शुके स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः । इति ।

तत्र युग्मासु शोणित्ताधिक्ये पुरुषाकृतिः स्त्री अयुग्मासु शुक्राधिक्ये स्त्र्याकारः पुमानिति ज्ञेयम् । शुक्रशोणितयोरुपादानकारणत्वात् । ब्रह्म-
चार्येवेति यत्र ब्रह्मचर्यं विहितं श्राद्धभोजनादौ तत्र गमने न दोषः ।

पर्वाणि विष्णुपुराणे—

पर्वाणि । चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्या च पूर्णिमा ।

पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च ॥

ऋतावगमने दोषमाह पराशरः—

भगवते दोषः । ऋतुस्नातां तु यो भार्या सन्निधौ नोपगच्छति ।

घोरस्यां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥ इति ।

कचित्संस्थः सन्निति पाठः । अथ गमने निषिद्धकालाः । मनुः—

गमने निषिद्धं अमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ।

ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥ इति ।

ज्योतिःशास्त्रे—

पित्र्यं पौष्णं नैर्ऋतं चैव विष्ण्यं त्यक्त्वा नारीं सुप्रसन्नः प्रसन्नाम् ।

पुष्टः क्षामां पुत्रकामोऽभिगच्छन्सहस्रं पुत्रप्राप्नोति पित्र्यम् ॥

योगपत्रे देवलः—

युगपद्वत्तो योगपत्रे तु तीर्थानां विप्रादिक्रमशो व्रजेत् ।

विधेः । रक्षणार्थमपुत्रां वा ग्रहणक्रमतोऽपि वा ॥ इति ।

तीर्थं रजः । विशेषमाह याज्ञवल्क्यः—

यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन् । इति ।

शुर्विणीपतिपयाः ।

यथाकामी ऋतुं विनापि स्त्रीकामनायां स्त्रियमभिरमयेत् । एवं च ।

ऋतुं नोपैति यो भार्यामनृतौ यश्च गच्छति ।

तुल्यमाहुस्तयोः पापमयोतौ यश्च सिञ्चति ॥ इति ।

बौधायनीयेऽनृतुगमननिषेधः स स्त्रिया अकामनायां द्येयः ।

गर्भिणीगमनमप्यनुजानात्यत्रिः—

गर्भिणी गमते । पश्मासात्कामयेन्मर्त्यो गर्भिणीं स्त्रियमेव हि ।

आदन्तजननादूर्ध्वमेवं घर्मो न हीयते ॥ इति ।

बालके जाते तस्य दन्तजननादूर्ध्वं गच्छेदित्यर्थः । स्त्रीणामप्यगमने द्येय इति हेमाद्रौ—

ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारं नोपाच्छति ।

तां ग्राममध्ये विल्याप्य भ्रूणघ्नीं तु विवासयेत् ॥ इति ।

अत्र-ऋतुकालाभिज्ञानी स्यादावपुत्रोऽभिजायते ॥

इति पूर्वपुराणवाक्येनैव पुत्रोत्पादनेन शास्त्रार्थस्य कृतत्वादानृप्ये च जाते न पुत्रान्तरोत्पादनमावश्यकमिति केचित् । तत्र । यद्यप्यानृप्यं जातं तथापि एकपुत्रनिन्दापूर्वकं बहुपुत्रप्राप्तिस्त्यमुक्तं भारते—

अपत्यं तु ममैकैकं कुले महति भारत ।

अपुत्रतैकपुत्रत्वमित्याहुर्धर्मवादिनः ॥

चक्षुरेकं च पुत्रश्च अस्ति नैव च भारत ।

चक्षुर्नाशे ततोर्नाशः पुत्रनाशे कुलक्षयः ॥ इति ।

तथा 'ऋतुस्नातां तु यो भार्याम्' इत्यस्य एकपुत्रानन्तरमृतौ जाते प्रत्यविधानात् । तथार्थवादोऽपि—

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।

यजेत वाश्वमेवेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ इति ।

अतो बहुपुत्रोत्पत्तिरप्रतिषेधात्प्राशस्त्याच्च कर्तव्या ।

आश्वलायनः—

शुर्विणीप-
तिपयाः । वपनं मैथुनं तीर्थं वर्जयेद्गुर्विणीपतिः ।

आहं च सप्तमान्मासादूर्ध्वं चान्यथ वेदवित् ॥

आहं आह्वयमोजनमिति केचित् । अत्र प्रमाणं सूत्रम् । अन्यत्काल-
विधानव्याख्योक्तम् । सप्तमान्मासादिति सर्वत्र ज्ञेयम् ।

क्षौरं श्वातुगमनं नस्तकुन्तनं च आहं च वास्तुकरणं त्वतिदूरयानम् ।

उद्वाहमम्बुविजले गमनं तथैवमायुःक्षयं भवति गर्भिणिकापतीनाम् ॥ क-
चिच्चु 'उद्वाहमौपनयनं जलधेश्च गाहम्' इति पाठः । ज्योतिपरत्ने गालवः—

दहनं वपनं चैव चौलं वै गिरिरोहणम् ।

नाव आरोहणं चैव वर्जयेद्गुर्विणीपतिः ॥

प्रव्यक्तगर्भापतिरब्धियानं मृतस्य वाहं क्षुरकर्म सङ्गम् ।

तस्यां ॥ यत्नेन गयादितीर्थं यागादिकं वास्तुविधिं न कुर्यात् ॥

आयुःक्षयं तत्साधनम् ।

अथ गुर्विणीनियमाः । पञ्चपुराणे दिर्तिं प्रति काश्यपः—

नावस्करेपूपविशेन्मुसलोलूखलादिषु ।

जलं च नावगाहेत शून्यागारं च वर्जयेत् ॥

विलिखेन्न नलैर्भूमिं नाङ्गारेण न भस्मना ।

न श्यालुः सदा तिष्ठेद्वायामं च विवर्जयेत् ॥

न तुपाङ्गारभस्मास्थिकपालेषु च संविशेत् ।

वर्जयेत्कलहं लोचैर्गात्रभङ्गं तथैव च ॥

न शयीतोत्तरशिरा नचैवाधःशिराः कश्चित् ।

न वल्लहीना नोद्विग्ना न चार्द्रचरणा सती ॥

मात्स्ये—संध्यायां हि न भोक्तव्यं गर्भिण्या वरवर्णिनि ।

न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा ॥

न श्यालुः सदा तिष्ठेत्त्वद्वाद्यायां विवर्जयेत् ।

सर्वौपधीभिः कोष्णेन वारिणा स्नानमाचरेत् ॥

कृतरक्षा सुभूषा च वास्तुपूजनतत्परा ।

दानशीला तृतीयायां पार्वत्या भक्तिमाचरेत् ॥

गर्भिणी कुञ्जराश्वादिशैलहर्म्यादिरोहणम् ।

व्यायामं शीघ्रगमनं शकटारोहणं त्यजेत् ॥

शोकं रक्तविमोक्षं च साध्वसं कुक्कुटासनम् ।

व्यवसायं दिवा स्वापं रात्रौ जागरणं त्यजेत् ॥

अतिक्षारं ॥ नाभीयादत्यम्लमतिभूरि च ।

अत्युष्णमतिशीतं च गुर्वाक्षारं परित्यजेत् ॥

यस्तु तस्या भवेत्सुत्रः स्थिरायुर्द्विसंयुतः ।

अन्यथा गर्भपतनं सा प्राप्नोति न संशयः ॥ इति ।

गुर्विणी-
नियमाः ।

यात्राविषये दृहस्पतिः—

चतुर्थे मासि षष्ठे वाऽप्यष्टमे गर्भिणी यदा ।

यात्रां नित्यं विवर्णां स्यादापाठे तु विशेषतः ॥

चतुर्थ्यात्प्राप्तमादारभ्येत्यर्थः । इदं च समर्थासमर्थद्वीपरम् । अत्यस-
मर्थायास्तु चतुर्थमासादारभ्यैव यात्रा वर्ज्येत्यर्थः । आपाठे तु सर्वमासेषु ।

दोहदम्प्यवश्यं प्रदेयमित्याह याज्ञवल्क्यः—

दोहदस्याऽप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् ।

वैरूप्यं मरणं वापि तस्मात्कार्यं प्रियं स्त्रियाः ॥

प्रयोगपारिजाते संग्रहे—

गर्भिणीचाञ्छितं ब्रव्यं तस्यै दद्याद्ययोदितम् ।

सूते चिरायुषं पुत्रमन्यथा दोषमर्हति ॥

इति गर्भधानम् ।

पुंसवनम् ।

अथ पुंसवनम् । याज्ञवल्क्यः—

काळः । गर्भधानमृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात्परा । इति ।

गर्भचलनकालः शारीरके—‘तस्माच्चतुर्थे मासि चट्पतादावभिप्रायं
करोति’ इति । पारस्करः—

‘मासे द्वितीये तृतीये वा यदहः पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात्’
इति । पुंनक्षत्राणि तु [वासरे]—

हस्तो मूलः अश्लेषः पुनर्वसुर्मृगशिरास्तथा पुष्यः ।

पुंसंश्लेषे कार्येष्वेतानि शुभानि विष्ण्यानि ॥

नारदीये—रोहिणीभाद्रपदाद्वयमुत्तमम् । वासिष्ठे च स्वात्पनुराधाश्चिन्त्यः ।

विशेषमाह जातूकर्ण्यः—

द्वितीये वा तृतीये वा मासि पुंसवनं भवेत् ।

व्यक्ते गर्भेऽथवा कार्यं सीमन्तेन सहाऽथ वा ॥ इति ।

व्यक्ते अन्येनानुक्तेऽपि ज्ञातुं शक्ये । अत्र सति संभवे शुक्रास्तमलमा-
सादिवर्ज्यमसंभवे तत्रापि कार्यमावश्यकत्वात् । इदं च चन्द्रताराबले
कार्यम् । पुंसवनं प्रकृत्य—

चतुर्थे मासि पष्ठे वाऽप्यष्टमे वा तदीधरे ।

बलोपपन्ने दम्पत्योश्चन्द्रताराबलान्विते ॥

इति नारादवचनात् । इदं च पुमान्सूयतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या कर्मनाम-
धेयम् । तच्च कर्म यवसहितमापद्रययुक्तद्विप्राशनम् । अत्र कांश्चित्काला-
न्निषेधति बृहस्पतिः—

कुलीरं मिथुनं कन्यां हित्वा शेषाः शुभावहाः । इति ।

इति पुंसवनम् ।

अनवलोभनम् ।

अथानवलोभनम् । वैजवापगृह्ये—‘अथ पुंसवनानवलोभने करोति मासि
कालः । द्वितीये वा तृतीये वा’ इति । इदं च पुंसवनदिन एव तदुत्तरं
कार्यम् । पुंसवनमुक्त्वा ‘अथास्थै मण्डलागारच्छायायामजीतामोपर्षी नस्तः
करोति’ इत्याश्वलायनगृह्ये क्रमाभ्यानात् । इदमपि न अवलुप्यते गर्भोऽनेनेति
व्युत्पत्त्या गर्भाविनाशफलकं यन्नस्यरूपं कर्म तस्य नामधेयम् । भकारश्लो-
न्दसः । तथा च मन्त्रलिङ्गमाह—“पौत्रमर्घं मा नियाम्” इति । पुत्रसं-
बन्धि अर्घं पार्षं मा नियां मा प्राप्नुयामिति । एवं च नाशकारणपापा-
भावाद्गर्भानाश इति । एते च कर्मणी गर्भसंस्कारत्वात्पतिगर्भमावर्तेते इति
नारायणः । तन्मते—

सकृत्सुसंस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता ।

इति देवलयाफ्यं सीमन्तोन्नयनविषयमेवेति प्रतीतिः । विज्ञानेश्वरस्तु
पुंसवनस्यापि सकृदनुष्ठानमिच्छति । तत्र युक्तिश्चिन्त्या । इत्यनवलोभनम् ।

सीमन्तोन्नयनम् ।

अथ सीमन्तोन्नयनम् । आपस्तम्बः—‘सीमन्तोन्नयनं प्रथमे गर्भे चतुर्थे
वत्सः । मासि’ इति । साङ्ख्यपायनगृह्येऽपि—‘सप्तमे मासि
प्रथमे गर्भे सीमन्तोन्नयनम्’ इति । याज्ञवल्क्यः—‘पष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः’
इति । आश्वलायनः—‘आपूर्यमाणपक्षे यदा पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः
स्यात्’ इति । आपूर्यमाणपक्षः शुक्लपक्षः । पुंनक्षत्राण्युक्तानि । इदं च

१ तदीधरे—चतुर्थपञ्चाष्टममसिधरे । उक्तं च वशिष्ठेन—‘सितावनेयमारपूज्यसूर्यचन्द्रार्कश्री-
भ्योदसनेन्दुसूर्याः । मासपिपाः स्युः क्रमशो ददेते निषीदिते नाशयति स्वमासि’ इति ।
२ प्रथमगर्भ इति पाठः क. ।

सकृदेव कार्यम् । प्रथमे गर्भे इति सांख्ययनापस्तम्बोक्तेः । स्त्रीसंस्कार-
त्वाच्च 'सकृत्सुसंस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता ।' इति वचनप्रवृत्तेः ।

यत्तु स्मृतिचन्द्रिकायां विष्णुः—

सीमन्तोन्नयनं कर्म तत्स्त्रीसंस्कार इत्येते ।

केचिद्गर्भस्य संस्काराद्गर्भं गर्भं प्रयुज्यते ॥ इति ।

तत्र केचिद्वृद्धा(चिदित्युक्तत्वा ?)दनादरः स्पष्टः । हारीतस्तु स्पष्टमेवाह—

सकृत्संस्कृतसंस्काराः सीमन्तेन द्विजस्त्रियः ।

यं यं गर्भं प्रसूयन्ते स सर्वः संस्कृतो भवेत् ॥ इति ।

इवं च वैवश्रोविते शुभमुहूर्ते कार्यम् । यथाह गर्गः—

सीमन्तोन्नयनं कार्यं शुभांशे शुभलप्रके ।

कुलीरमृगफन्याश्च बर्ज्याः शेषाश्च शोभनाः ॥ इति ।

अत्रापि शुक्रास्तादिव्यतिरिक्तकालस्य न तत्र कार्यमन्यथाऽस्तादावर्षाति
नियतकालत्वात् । सीमन्ते च भोक्तुर्दोषमाह धर्मप्रकाशे धौम्यः—

ब्रह्मौदने च सोमे च सीमन्तोन्नयनेऽथ वा ।

जीवश्राद्धे नवश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ इति ।

ब्रह्मौदनमाधानाद्भूतं, जातश्राद्धं पुत्रे जाते वृद्धिश्राद्धम् ।

अजातसीमन्तायाः प्रसूतौ सत्यव्रत आह—

स्त्री यदाऽकृतसीमन्ता प्रसूयेत कदाचन ।

गृहीतपुत्रा विधिस्तपुनः संस्कारमर्हति ॥

पुनः पादपूरणार्थम् । यः संस्कारोऽतिक्रान्तः स कर्तव्य इत्यर्थः ।

इति सीमन्तोन्नयनम् ।

सूक्तिकागृहमाह वसिष्ठः—

ऐन्त्रे तु विक्रमस्थानसाम्रेये सूक्तिकागृम् ।

शक्तिगृहम् । याम्यार्या शयनस्थानं वायव्यां पृथुमन्दिरम् ।

कौयेर्या ॥ धनस्थानमैशान्यां देवतालयः ॥ इति ।

पद्मपुराणे पारस्वनः—

प्रविशेत्सूक्तिकागारं कृत्तरक्षं समन्ततः ।

प्राग्द्वारमुत्तरद्वारमथवा सुदृढं शुभम् ॥

देवानां ग्राहणानां च गद्यां कृत्वा च पूजनम् ।

एरण्डमूलचूर्णेन सघृतेन तथैव ताम् ।

मुखप्रसवनार्थाय पश्चात्कायेऽनुलेपयेत् ॥ इति ।

जातकर्म ।

अथ जातकर्म । तत्र पितुः पुत्रे जाते स्नानमाह संवर्तः—

पुत्रजनेन कर्तव्यम् । जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते । इति ।

इदं च शीताग्निः कार्यम् । तदाह जावालिः—

कुर्यान्नैमित्तिकं स्नानं शीताग्निः काम्यमेव च । इति ।

इदं च रात्रावपि कार्यमित्याह—

रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः ।

नैमित्तिके च कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु ॥ इति ।

ग्रहणोद्वाहसंक्रान्तियात्रार्तिप्रसवेषु च ।

दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि न दुष्यति ॥ इति ।

संवर्तः—भाता शुभ्येदशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः ।

जैमिनिः—यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् ।

छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं च विधीयते ॥ इति ।

अस्मान्नालच्छेदोत्तरमेवाशौचप्रवृत्तिरिति भाति । प्राञ्चस्तु 'यावन्न छिद्यते नालं तावच्छिशुमृतौ पूर्णं सूतकं नाप्नोति । नालच्छेदोत्तरं तु शिशु-मृतौ संपूर्णं प्राप्नोति' इति व्याचरव्युः । एवं च ज्ञायते तेषां जन्मोत्तरमेवा-शौचप्रवृत्तिरिति । युक्तं चेदम् । आशौचं जननोत्तरमेव प्रवर्तते । जात-कर्मवृद्धिश्चाददानादौ तु तात्कालिकी शुद्धिर्वचनेन बोध्यते । 'कर्तुं स्ना-त्कालिकी शुद्धिः' इतिवत् । एवं च स्नानोत्तरं संध्यादिकं न भवत्येवेति विष् । दानार्थं दिनमनुष्ठातमादिपुराणे—

देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम् ।

आयान्ति तस्मात्तदहः पुण्यं पूज्यं च सर्वतः ।

तत्र दद्यात्सुवर्णं तु भूमिं गां तुरगं रथम् ॥ इति ।

पुत्रमुखापलोकनस्य फलमाह वसिष्ठः—

जातमात्रकुमारस्य मुखमस्यावलोकयेत् ।

पिता ऋणाद्विमुच्येत पुत्रस्य मुखदर्शनात् ॥ इति ।

आशौचान्तरेऽपि पुत्रे जाते तात्कालिकी शुद्धिमाह प्रजापतिः—

सूतके तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् ।

कर्तुं स्नात्कालिकीशुद्धिः—॥ इति ।

जातकर्मणि प्रधान(कृत्य)माहाऽऽश्वलायनः—‘कुमारं जातं पुराऽन्यैरा-
लम्भात्सर्पिर्मधुनी हिरण्यनिकर्षं हिरण्येन प्राशयेत्’ इति । कात्यायनसूत्रे तु
विशेषः—‘अनामिकया सुवर्णान्तर्हितया मधुघृते प्राशयति घृतं च’ इति ।
तत्कालमाह गार्गः—

जातमात्रकुमारस्य जातकर्म विधीयते ।

स्तनप्राशनतः पूर्वं नाभिकर्तनतोऽपि वा ॥ इति ।

पूर्वमित्यर्थः ।

मनुः—प्राङ्नाभिकर्तनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ।

मन्त्रकप्राशयेदस्य हिरण्यं मधुसर्पिणा ॥ इति ।

वर्धनं छेदः । अत्र पुंस्त्वमविवक्षितमनुवाद्यविशेषणत्वादिति केचित् । मेधा-
तिथिस्तु विवक्षितमेव पुंस्त्वं तेन नपुंसकस्य न भवति स्त्रिया वाक्यान्त-
रप्राप्तत्वादमन्त्रकं भवत्येवेत्याह ।

अत्र च वृद्धिभ्राद्धमात्रेण कार्यमित्याह प्रचेताः—

स्त्री इदं श्वपचश्चैव जातकर्मणि चाप्यथ ।

जामभ्राद्धं सदा कुर्याद्विभिना पार्षणेन तु ।

हेमाद्रिस्तु हेन्रैवाऽऽह—

पुत्रजन्मनि कुर्यात् भ्राद्धं हेन्रैव बुद्धिमान् ।

न पकेन न चामेन कल्याणान्यमिकामयन् ॥

इतिसंक्षेपः । अत्र नैमित्तिकक्रान्त्यभेदेनाऽऽमहेमव्यवस्था द्रष्टव्या । यदा
तु पुत्रजन्म मूलादिनक्षत्रेषु तथा मुखावलोकनजातकर्णादि शान्तिं विना न
कुर्यात् । एवं संक्रान्तिविष्टादावपि । शान्तिस्तु शान्तिमयूखे वक्ष्यते ।
पुरुषापराधेन काले जातकर्मानुष्ठाने कालान्तरमाह वैजवापः—

जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म यथाविधि ।

देवादतीतकाले चेदतीते सूतके भवेत् ॥ इति ।

अस्य फलमादाश्वलायनः—

गर्भास्त्युपानद्वेष्टाणामस्त्युत्तरैः शिष्टां पितृ ।

प्राशयेन्मधुना सार्वं सार्वं हैमरसं शुभम् ॥ इति ।

स्त्रीणामप्येतदमन्त्रकं कार्यम् । इति जातकर्म ।

दशदिनमध्ये विशेषमाह व्यासः—

यत्नो दश- सूतिकावासनिलया जन्मदा नाम देवताः ।

दिनकृत्यम् । तासां यागानिमित्तं तु शुद्धिर्जन्मनि कीर्तिता ॥

१ शान्तिस्तु तातचरणकृत्यशान्तिमयूखतो ज्ञेयेति पाठः द. ।

प्रथमे दिवसे पष्ठे दशमे चैव सर्वदा ।
त्रिष्वाशौचं न कुर्वीत सूतके पुत्रजन्मनि ॥ इति ।
दद्यात्तु प्रथमे हेम पष्ठे वा सप्तमेऽपि वा ।
वल्लिदानं तु दशमे स्वर्णदानं प्रशस्यते ॥ इति ।

अत्राशौचाभायो दानादिविषय एव न संध्यादिविषये ।
मार्कण्डेयोऽपि—रक्षणीया तथा पट्टी निशा तत्र विशेषतः ।
रात्रौ जागरणं काय जन्मदानां तथा वलिः ॥
पुरुषाः शस्त्रहस्ताश्च नृत्यगीतैश्च योषितः ।
रात्रौ जागरणं कुर्युर्दशम्यां चैव सूतके ॥
नारदोऽपि—जननात्सप्तमे चान्दि मृत्युरायाति घातकः ।
दिने दिने च रक्षेयं कर्तव्यायुर्विवृद्धये ॥
इति प्रथमादिदिनकृत्यम् ।

नामकरणम् ।

आश्वलायनगृह्ये जातकर्मोत्तरं कालान्तरमनुक्त्वा—‘नाम चास्मै दशुर्घो-
पवदाद्यन्तरन्तस्थमभिनिष्ठानान्तं द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा द्व्यक्षरं प्रतिष्ठा-
कामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामो युग्मानि त्वेव पुंसामयुग्मानि स्त्रीणामभि-
वादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्यातामोपनयनात्’ इतिनामकरण-
मुक्तम् । तेन ज्ञायते—जातकर्मोत्तरमेव कालः ।

अस्यार्थः—वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः जिह्वामूलीयोपमानीयौ शपसाश्चे-
त्यघोषा अन्ये घोषवन्तः । यरलवा अन्तस्थाः । अभिनिष्ठानो विसर्ज-
नीयः । अक्षराणि स्वराः । पुनर्युग्मानीतिप्रहणं षडक्षरादिप्रहणार्थम् ।
अभिवादनीयमवकट्टचक्रप्रमाणेन नाक्षत्रम् ।

मनुः—नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वापि कारयेत् ।

पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥ इति ।

दशम्यामतीतायामिति व्याख्यातारः । णिजविश्रितः । ‘अहन्येकादशे
नाम’ इति याज्ञवल्क्येऽपि । कालान्तरं भविष्यत्पुराणे—

नामधेयं दशम्यां तु केचिदिच्छन्ति पार्थिव ।

द्वादश्यामपरे रात्र्यां मासे पूर्णे तथा परे ।

अष्टादशेऽहनि तथा वदन्त्यन्ये मनीषिणः ॥ इति ।

गृह्यपरिशिष्टे—‘जननादशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे नामकर-

णम् ' इति । व्युत्प्रेक्ष्यते । विशेषमाह पञ्चजलिः—'घोषवदाद्यन्तरन्तस्थ-
मवृद्धं त्रिपुरुषानूकम् ' इति । 'नामकरणे योऽधिकारी पिता तस्य ये त्रयः
पुरुषास्ताननुकायत्यभिभक्ते इति त्रिपुरुषानूकम् "अन्येषामपि—" इति दीर्घः'
इति प्रदीपकारः । प्रयोगपरिभाषाते कपिलसंहितायाम्—

एकादशेऽहि विधिवन्नाम कुर्यात्कुलोचितम् ।

देवतानां विशेषेण पित्रोर्वा नाम शस्यते ॥

नैव कार्यं नृपादीनां नाम जीवनहेतुतः ।

पूर्वः परस्य वर्णस्य हीनस्यापि न धारयेत् ॥ इति ।

कर्तुः पित्रोरित्यर्थः । इदं च दक्षिणात्यशिष्टा आचरन्ति । मनुः—

मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् ।

वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥ इति ।

र्वापु विशेषमाह गोभिलः—'अयुद्धान्तं स्त्रीणाम् ' इति । दान्तं यशोदा
शर्मदेत्यादिकम् । केचित्तु यन्नाम तदाशब्दान्तं वर्णयन्ति । तथा च पार्वतीदा

नामकरणे गङ्गादेत्येवं प्रयोज्यं तथा च तेषां मते यशोदेत्यादिषु यशोदाया
स्त्रीणां विशेषः ॥ इति प्रयुज्येत । इदं च व्याख्यानं न कापि निबन्धेषु दृष्टम् ।
अतः पूर्वोक्तमेव ज्ञाय इति । शङ्खलिखिताभ्यां नामोक्त्वा माससं-
यद्धमपि नाम कार्यमिति केचिदित्युक्तम् ।

तत्र मासनामानि वसिष्ठ आह—

मासना-
नामि । चैत्रादिमासनामानि वैकुण्ठोऽथ जनावनः ।
उपेन्द्रो यक्षपुरुषो वासुदेवस्त्रिविक्रमः ॥

योगेशः पुण्डरीकाक्षः कृष्णोऽनन्तोऽच्युतस्तथा ।

चक्रवारीति चैतानि क्रमादाहुर्मनीषिणः ॥ इति ।

अत्र केचिन्मासानां मार्गदर्शीषोऽहम् इति सामान्यलिङ्गान्मार्गदर्शित्वमार-
मलमासे भ्य मासनामानि कल्पयन्ति । तद्वासिष्ठे चैत्रग्रहणेन विशेषा-
विशेषः । मिथानाहुषेयम् । 'मलमासे जन्म चेदुत्तरमासनाम—

पष्टमा तु दिवसैर्मासः कथितो वादरायणैः ।

पूर्वमर्धं परित्यज्य कर्तव्या चोत्तरे क्रिया ॥

इत्युत्तरमासशेषत्वेनाभिधानात् । विष्टिग्रहीतापातादौ न कर्तव्यमित्याह
गार्गः—

व्यतीपाते च संक्रान्तौ ग्रहणे वैधृतावपि ।

श्राद्धं विना शुभं कर्म श्रावकाद्येऽपि नाचरेत् ॥ इति ।

अतः शुभे मुहूर्ते पूर्वोक्तान्यतमकाले कार्यं शुक्रास्तादीनां तु नैव विचारः । विशेषमाह कश्यपः—

उक्तकाले प्रकर्तव्या द्विजानामखिलाः क्रियाः ।

अतोऽन्येषु तु कालेषु कर्तव्याश्चोत्तरायणे ॥

सुरेज्येऽप्यसुरेज्ये वा नास्त्यो न च वार्द्धके ।

शुभलघ्ने शुभांशे च शुभेऽहि शुभवासरे ॥

चन्द्रतारावलोपेते नैबनादपवर्जिते ।

नाम मङ्गलघोषेण रहस्यं दक्षिणश्रुतौ ॥

बृहस्पतिः—पूर्वाहः श्रेष्ठ इत्युक्तो मध्याह्नो मध्यमः स्मृतः ।

अपराह्णं च रात्रिं च वर्जयेन्नामकर्मणि ॥ इति ।

इदं च पितुरन्येनापि संनिहितेन कार्यम् । इति नामकरणम् ।

कर्णवेधः ।

कर्णवेधमाह बृहस्पतिः—

जन्मतो दशमे चाहि द्वादशे वाऽथ षोडशे ।

सप्तमे मासि वा कुर्याद्दशमे मासि वा पुनः ॥ इति ।

गर्गः—भासे षष्ठे सप्तमे वाप्यष्टमे मासि वत्सरे ।

कार्तिके पूर्णमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेऽपि वा ।

कर्णवेधं प्रशंसन्ति शुक्लपक्षे शुभ दिने ॥ इति ।

कार्तिकादिकं पूर्वकालापेक्षया भिन्नम् । पूर्णमास इति स्वतन्त्रः कालः । न विशेषणविशेष्यभावः । कार्तिके पौष्मासे वेति वा पाठः । अयमेव युक्तो मासप्रायपाठान् । जन्ममासं निषेधति व्यासः—

यो जन्ममासे क्षुरकर्म यात्रां कर्णस्य वेधं कुरुतेऽतिमोहात् ।

मूढः स रोगी धनपुत्रनाशं प्राप्नोति गूढं वधवन्धनानि ॥

जन्ममासनिषेधस्तु द्वितीयादिवर्णगतो नाद्यवर्णगतस्तस्य विहितत्वेन निषेधानवकाशात् । अन्ये विधिनिषेधा ज्योतिःशास्त्रादवसेयाः । विशेष उक्तः सुवेधे—

शातकुम्भमयी सूची वेधने तु शुभप्रदा ।

राजती वाऽऽयसी चापि यथाविभवतः शुभा ॥ इति ।

इति कर्णवेधः ।

निष्क्रमणम् ।

निष्क्रमणमाह तुः शङ्खलिखितौ—‘अत ऊर्ध्वं तृतीये मासि निष्क्रम-
णिका’ । याज्ञवल्क्यः—‘चतुर्थे मासि निष्क्रमः’ इति । कर्तव्यमाह शङ्खः—

चतुर्थेमासि कर्तव्यं बालस्याऽऽदित्यदर्शनम् । इति ।

मुहूर्तसंग्रहे—पूर्वपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णोऽप्यन्त्यत्रिकं विना । इति ।

अत्र दिवसानुपादानाद्देवज्ञोदितं तन्मासस्थं शुभं दिनं ग्राह्यम् ।

कारिकायां विशेषः—

आदाय गेहान्निष्क्रम्य गच्छेद्युर्देवतालयम् ।

अभ्यर्च्य देवतां सम्यगाशिषो वाचयेदथ ॥

कृत्वा प्रदक्षिणं गेहमानयन्ति ततः स्वकम् ।

मातृष्वसृगृहं वाऽपि मातुलादेर्गृहं नयेत् ॥

तदाशीर्वादादौः स्थादीर्घायुरमिनन्दितः ।

जयन्तस्य मतेनायं लिखितः दिशुनिष्क्रमः ॥ इति ।

मातुलादिर्बालस्य । इति निष्क्रमणम् ।

उपवेशनम् ।

उपवेशनमुक्तं पञ्चपुराणे—

अष्टमे च तथा मासि भूमौ तमुपवेशयेत् ।

तत्र सर्वे ग्रहाः शस्ता भूमौ राम विशेषतः ॥

वराहं पूजयेद्देवं धृतिवी च तथा द्विजः ।

पूजनं पूर्वकृत्वा शुद्धदेवद्विजन्मनाम् ॥

भूभागमुपलिप्साथ कृत्वा तत्र तु मण्डलम् ।

शङ्खपुण्याहशब्देन भूमौ तमुपवेशयेत् ॥

‘तत्र मन्त्र उक्तस्तत्रैव—

रक्षेनं वसुधे देवि सदा सर्वगतं शिशुम् ।

आयुःप्रमाणं निखिलं निक्षिपस्व हरिप्रिये ॥

अचिरादायुषस्त्वत्र ये केचित्परिपन्थिनः ।

जीवितारोग्यवित्तेषु निर्दहस्वाचिरेण तान् ॥

१ निर्गवसिन्धीतुस्तेशननिर्गवे ‘वसुधे च तथा’ इत्यस्य ‘भूमौऽन्तर विरोक्तः । उक्तानि-
तयं सौम्यं पुण्यं मित्रदेवतम् । ग्राह्यापत्यं च इत्याथ शस्तमाचिन्त्यमिवम् । वराहं पूज-
येदेवमित्यादि दृश्यते वस्तुमीचीनम् । २ शुभे क. पाठः ।

धारिण्यशेषभूतानां मातस्त्वमधिका ह्यसि ।

कुमारं पाहि मातस्त्वं ब्रह्मा तदनुमन्यताम् ॥ इति ।

इत्युपवेशनम् ।

अन्नप्राशनम् ।

अन्नप्राशनमाह यमः—

ततोऽन्नप्राशनं मासि पष्ठे कार्यं यथाविधि ।

अष्टमे वाऽथ कर्तव्यं यदैव मङ्गलं गृहे ॥ इति ।

कुले यदैव मङ्गलं तदैव कार्यमिति कालान्तरम् । लौगाक्षिः—‘पष्ठे मासे-
ऽन्नप्राशनं जातेषु दन्तेषु वा पूर्णे संवत्सरे वा’ इति । अत्रापि दिनविशेषानु-
पादानाद्वैवक्षोदितं शुभं दिनं ग्राह्यम् । कर्तव्यमाह मार्कण्डेयः—

देवतापुरतस्तस्य धात्र्युत्सङ्गतस्य च ॥

अलंकृतस्य दातव्यमन्नं पात्रेऽथ काञ्चने ।

मध्वाज्यकनकोपेतं प्राशयेत्पायसं तु तैम्’ इति ।

आश्वलायनगृह्ये तु विशेषः—‘पष्ठे मास्यन्नप्राशनमाजमन्नाद्यकामस्तै-
स्तिरं ब्रह्मवर्चसकामो धृतौदनं तेजस्कामो मध्वोदनमायुष्कामो दध्यो-

तत्र फलाधि-
क्यम् ।

दनमिन्द्रियकामः क्षीरौदनं पशुकामो दधिमधुघृतमिश्रमन्नं
प्राशयेत्सर्वकामो भवतीति विज्ञायते’ । आजं मांसं ति-

त्तिरसमभिव्याहारात् । तत्र व्यञ्जनस्थानीयत्वान्मांसस्यान्नं ग्राह्यमेव ।

अन्नप्राशने फलाधिक्यमाश्वलायनस्मृतौ—

स्वमलप्राशनाच्छुद्धये प्राशयेच्चायुषेऽपि वा ॥ इति ।

इत्यन्नप्राशनम् ।

तदुत्तरं जीविकापरीक्षोक्ता मार्कण्डेयेन—

जीविका-
परीक्षा ।

देवामृतोऽथ विन्यस्य शिल्पभाण्डानि सर्वशः ।

वस्त्राणि चैव शस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम् ॥

शिल्पस्य लेखनादेर्भाण्डं वस्तु लेखनीमर्पीपात्रादि । शस्त्रं युद्धवस्तु ।

प्रथमं यत्पश्येद्दालस्ततो भाण्डं स्वयं तदा ।

जीविका तस्य वालस्य तेनैव तु भविष्यति ॥ इति ।

इति जीविकापरीक्षा ।

चूडाकर्म ।

चूडाकर्माह मनुः—

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।

प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥

यमः—द्वितीये वा तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् । इति ।

आश्वलायनः—‘तृतीये वर्षे चौलं यथाकुलधर्मं वा’ इति । तथा—‘उदग-
यन आपूर्यमाणपक्षे कृत्याणे नक्षत्रे चौलकर्मापनयनगोदानविवाहाः’ इति ।
कारिकायाम्—‘यथाकुलं च केषांचिदुपनीत्या सहेष्यते । इति ।

आश्वलायनस्मृतौ—

तृतीये वत्सरे चौलं कुर्वीतास्योत्तरायणे ।

शुक्लपक्षे शुभर्क्षे तु कृत्वाऽभ्युदयिकं तथा ।

शुभर्क्षे इति ज्योतिर्विदुषादिष्टे सुदृढं इत्यर्थः—

[प्रयोगपरिभाषा नारदः—

जन्मतस्तु तृतीयेऽब्दे श्रेष्ठमिच्छन्ति पण्डिताः ।

पञ्चमे सम्पन्ने वाऽपि जन्मतो मध्यमं भवेत् ।

अग्रमं गर्भतः स्यात्तु नक्षमैकादशेऽपि वा ॥ इति ।

तत्रैव—आद्येऽब्दे कुर्वते केचित्पञ्चमेऽब्दे द्वितीयेके ।

उपनीत्या सहेवेति विकल्पाः कुलधर्मतः ॥] इति ।

बिवाहचण्डेश्वरः—

मार्गे मासि तथा ज्येष्ठे क्षौरं पण्डितं व्रतम् ।

ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोस्तु यत्नेन पवित्रयेत् ॥

वृत्तशते—

न जन्मभिष्ये न च अन्तर्मासे न जन्मकालीयदिने विद्व्यान् ।

ज्येष्ठे न मासे प्रथमस्य सूतोस्त्वाद्याः सुताया अपि मङ्गलानि ॥

नक्षत्राणि निषेधति व्यासः—

नक्षत्रे तु न कुर्वीत यस्मिन्नातो भवेन्नरः ।

न प्रौष्ठपदयोः कार्यं नैवाऽऽप्ये च भारत ।

तिथिं प्रतिपदं रिक्तां विष्टिं चैव विवर्जयेत् ॥

विहितान्यपि तेनैवोक्तानि—

अश्विनी श्रवणः स्वाती चित्रा पुष्यः पुनर्वसुः ।

धनिष्ठा रेवती ज्येष्ठा मृगशिरा कारयेत् ॥ इति ।

क्षौरमिति शेषः । अन्ये च नक्षत्रयोगकरणविधिनिषेवा ज्योतिःशास्त्राद-
वसेयाः । गोत्रविशेषेण विशेषमाह लौगाक्षिः—‘दक्षिणतः कमुञ्जा वसिष्ठाना-
मुभयतोऽत्रिकश्यपानां मुण्डा मृगवः पञ्चचूडा अङ्गिरसो बालिमेके मङ्ग-
लार्थं शिखिनोऽन्ये यथाकुलधर्मम् । कमुञ्जा चूडा । कचित्कुमुञ्जेति पाठः ।
अन्ये बालिं केशपङ्क्तिं कुर्वन्ति अन्ते समरेखया मुण्डनं कृत्वा सर्व एव
केशाः स्थाप्याः’ इति स्मृतिचन्द्रिकायाम् । आपस्तम्बस्तु विशेषमाह—

तत्र विशेषः ‘केशान्विनीय यथार्प शिखां निदधाति । यथैषां कुलधर्मः स्यात्’
यथार्प यथाप्रवरम् । एते संस्काराः स्त्रीणां मन्त्ररहिताः ।

एतेषां जातकर्मादीनां लोपे प्रायश्चित्तमाह शौनकः—

एतेष्वेकैकलोपेऽपि पादकृच्छ्रं समाचरेत् ।

चूडाया अर्धकृच्छ्रं स्यादापदि त्वेवमीरितम् ।

अनापदि तु सर्वत्र द्विगुणं द्विगुणं चरेत् ॥ इति ।

अतीतानां कालमाह मनुः—

जातकर्मादिसंस्काराः स्वकाले न भवन्ति चेत् ।

चौलादवाक् प्रकुर्वीत प्रायश्चित्तादनन्तरम् ॥

गृहकारिकायां विकल्प उक्तः ।

प्रायश्चित्ते कृते पश्चादतीतमपि कर्म वै ।

कार्यमित्येक आचार्यो नेत्यन्ये तु विपश्चितः ॥ इति ।

शिष्टानां तु करणपक्ष एव संमतः । विशेषान्तरमाह नारदः—

शिशोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् ।

पञ्चमाब्दादथोर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ।

सहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तत्र दोषो न विद्यते ॥ इति ।

[मातरि गर्भिण्यामपि पञ्चमासपर्यन्तं न दोषः । तदाह मदनरत्ने
बृहस्पतिः—

गर्भे मातुः कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म तु ।

पञ्चमासादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥ इति ।

मातरि रजस्वलायां मेधातिथिः—

चौले च व्रतवन्धे च विवाहे यज्ञवर्जनि ।

माता रजस्वला यस्य भवेत्तस्य न शोभनम् ॥

वृद्धस्तुः—विवाहमतचूडासु माता यदि रजस्वला ।

तदा न मद्गलं कार्यं शुद्धे कार्यं शुभं सुभिः ॥ इति ।]

इति चूडाकर्म ।

विद्यारम्भः ।

विद्यारम्भमाह मार्कण्डेयः—

प्राप्तेऽथ पञ्चमे वर्षे विद्यारम्भं नु कारयेत् ।

ततः प्रभृत्यनध्यायान्वर्जनीयान्विर्जयेत् ॥ इति ।

विद्यारम्भश्चाध्याख्यपरिचितिः । यथाह श्रीधरः—

विद्यारम्भः । उदमते भास्वति पञ्चमेऽप्ये प्राप्तेऽध्याख्यस्वीकरणं शिक्षांताम् ।

सरस्वतीं विप्रविनायकं च शुद्धैदनाद्यैरपि पूज्य कुर्यात् ॥

विष्णुभर्तोत्तरे पुष्करः—

प्राप्ते तु पञ्चमे वर्षे अप्सुमे जनार्दने ।

पार्था प्रतिपदं चैव वर्जयित्वा तथाष्टमीम् ॥

रित्तं पञ्चदशी चैव सौरभौमदिने तथा ।

एवं सुनिश्चिते काले विद्यारम्भं नु कारयेत् ।

इति विद्यारम्भः ।

अथानुपनीतवर्माः गौतमः—‘प्रागुपस्यनात्कामचारकाम-
तथनाम् । दादकामभक्षाः’ इति । कामचारोऽङ्गादिदेशममन्तम् । काम-
बादोऽङ्गीलादिभाषणमनृतभाषणं च । कामभक्ष्यो लङ्घनपुष्पिनभक्षणम् ।
कामभक्षादिकं महापातकतिरिक्तविषयम् ।

स्यात्कामचारभक्ष्योऽपि महतः पातक्यदृते ।

इतिपट्त्रिंशन्मतात् । गौतमः—ययोपपादमूत्रपुरीषो भवति न तस्माच्चमन-
कल्पो विद्यते न तस्मोदङ्मुखो दिवा रात्रौ वक्षिणामुखा इत्यादयो नियमाः ।
स एव । अन्यत्रावमार्जनप्रक्षालनप्रोक्षणेभ्यो न तस्य स्पर्शनादशौचम् । इति ।
इदं कृत्वा स्पर्शनं कार्यमित्यर्थः । स्मृतिर्दीपिकायाम्—

शिदोर्भ्युक्ष्णं प्रोक्तं वालस्याऽऽचमनं सुतम् । इति ।

रजस्वलादिसंस्पर्शो स्नानादेव विधीयते । इति ।

तदक्षणानि तत्रैव—

प्राक्चूडाकरणाद्वालः प्रागन्नप्राशनाच्छिशुः ।

कुमारकस्तु विज्ञेयो यावन्मौञ्जी न वध्यते ॥ इति ।

वालं प्रकृत्य गौतमः—‘नत्वेवैनमाग्निहवनवालिहरणयोर्नियुज्यात् इति ।

मनुः—न त्वस्मिन्विद्यते कर्म यावन्मौञ्जी न वध्यते ।

नातिन्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनियनादृते ॥

ब्रह्म वेदः । स्वधानिनयनं प्रेतकर्म । इत्यनुपनीतवर्माः ।

उपनयनम् ।

उपनयनविचारः । उपनयनमुक्तं श्रुतौ—‘अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत’ इति ।

याज्ञवल्क्यः—गर्भाष्टमेऽष्टमे वाऽच्चे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।

राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम् ॥ इति ।

सैके द्वादशे । गर्भेकादशे गर्भद्वादशे इत्यपि बोध्यम् । तथाच मनुः—

गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ।

लोणाक्षिस्तु—‘सप्तमे वर्षे ब्राह्मणस्योपनयनं नवमे राजन्यस्यैकादशे वैश्यस्य’ इत्याह । पैठानसिरपि—‘गर्भपञ्चमे ब्राह्मणमुपनयेत्’ इति । गुणफलमाह मनुः—

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ।

राज्ञो वलार्थिनः पष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ इति ।

आपस्तम्बः—‘सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममष्टम आयुःकामं नवमे तेजस्कामं दशमेऽन्नाद्यकाममेकादश इन्द्रियकामं द्वादशे पशुकामम्’ इति । वर्णविशेषेण क्रतुनियम उक्तः श्रुतौ—‘वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यम्’ इति । कालान्तरमुक्तं ज्योतिःशास्त्रे—

माघादिषु तु मासेषु मौञ्जी पञ्चसु शस्यते ।

ज्येष्ठमासे ज्येष्ठोपनयनं न कार्यम् । तथा च गर्गः—

ज्येष्ठमासे विशेषेण सर्वज्येष्ठस्य चैव हि ।

उपनीतस्य पुत्रस्य जडत्वं मृत्युरेव वा ॥ इति ।

जन्ममासे न कार्यमित्युक्तं संप्रदेहे—

विवाहे चोपनयने जन्ममासं विवर्जयेत् ।

जन्ममासलक्षणमुक्तं गृह्यगोणे—

अरभ्य जन्मदिवसं यावद्विंशतिनं भवेत् ।

क्रमवत्—

स्थानम् ।

जन्ममासः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वधर्मसु ॥

एवं चाष्टम्यादितिथिमारभ्याष्टम्यन्तो ऋन्ममासोऽभिमतः । न तु दर्शान्तः पूर्णिमान्तो वा । विशेषमाह चण्डेश्वरः—

अदिशेषः । माघे द्रविणशीलाख्यः फाल्गुने च दृढव्रतः ।
चैत्रे भवति मेधावी वैशाखे कोविदो भवेत् ।
ज्येष्ठे तु गृहनीतिज्ञ आपाढे क्रतुभाग्भवेत् ।
मार्गशीर्षे भवेद्बृष्टः शेषे दुःखमवाप्नुयात् ॥

आपाढस्तु विष्णुशयनाद्यागोव तदूर्ध्वं तत्र सर्वेषां निषिद्धत्वात् । विशेषमाहुर्वसिष्ठादयः—

आर्द्रादिके स्वातिविरामकाले न भग्नवृन्दे दशके रविश्चेत् ।
विवाहचौलव्रतवन्धनाद्यं सुरप्रतिष्ठादि न कार्यमेव ॥

आपूर्यमाणपक्ष इति शुक्ल आश्वलायनेनोक्तो मुख्यः । अनुकल्पमाह बृहस्पतिः—

भनुकल्पः । शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना । इति ।

अथ गौणकालः । गृह्ये—‘आ षोडशाद्वाह्यणस्यानन्तीतः काल आ द्वाविंशत्क्षत्रियस्या चतुर्विंशद्वैश्यस्यात ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति नै-
नानुपनयेन्नाथ्यापयेत्त याजयेन्नैभिर्व्यवहरेयुः’ इति । अत्र ब्राह्मणां प्रक्रम्य ।

स वित्री पविता यस्य दशनर्षाणि पञ्च च ।

सशिखं वपनं कृत्वा व्रतं कुर्यात्समाहितः ॥ इति ।

यमेत स्पष्टं पञ्चदशपर्योत्तरं प्रायश्चित्ताभिधानावापोऽष्टादशविध्याह सूर्या-
दार्थकः । एवं पञ्चदशपर्योत्तरमेव ब्राह्मणस्तोमादिकं जायते इति । यन्तु—

औपनायनिकः कालः परः षोडशवार्षिकः ।

द्वाविंशतिः परोऽन्यस्य चतुर्विंशतिमः परः ॥

इति व्यासवाक्ये संपूर्णषोडशवर्षग्रहणाद्विरोधमुपन्यस्यति । तत्र धर्म-
प्रकाश एवं व्यवस्थोक्ता । यमवाक्यं जन्मप्रभृति पञ्चदशवर्षातिव्रत्ने प्राय-
श्चित्तविधिपरम् । व्यासवाक्यं त्वाधानप्रभृतियोऽष्टादशवर्षातिव्रत्ने प्रायश्चित्त-
परमिति न द्वयोरपि विरोधः । ईदृशी च सरणिः प्राक् कचिदाश्रितैव ।

यथा—अष्टादशदिनादर्वागशुचित्वं न विद्यते ।

चतुर्दशदिनादर्वागशुचित्वं विधीयते ।

इतिवाक्ययोः पूर्वं रजोदर्शनात्प्रभृत्युत्तरं तु स्नानादारभ्येति ।

१ नोपेति काशीमु. पु. पाठः । २ मास्यमाश्विच प्रक्रम्येति उ पाठः । ३ ‘नविच्छेत्’ इ-
त्यपेक्षते त्रयोदशमासः । अन्यथा विरोधपरिहारकव्यवस्थानवगत्यार्थमवापत्तेः ।

याज्ञवल्क्यः—अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मवहिःकृताः ।

सावित्रीपतिता ब्राह्म्या ब्राह्म्यस्तोमादृते क्रतोः ॥ इति ।

तं विनोपनयनेऽधिकारो नास्तीत्यर्थः । स चानुपनीतेनानाहिताग्निना-
ऽविदुषाप्यवकीर्णपशुवत्कार्यः । यागोपयुक्ताध्ययनमगत्या कर्तव्यम् । ततः
स्मृत्युक्तं प्रायश्चित्तं कृत्वा उपनयनमिति ।

अथ निषिद्धकालो रत्नकोशे—

नष्टे चन्द्रेऽस्तगे शुके निरंशे चैव भास्करे ।

कर्तव्यं नोपनयनमनध्याये गलप्रहे ॥

राशिप्रथमांशः सूर्यो निरंशः । अनध्यायान्विस्तरेणाग्रे वक्ष्यामः ।
गलप्रहास्तत्रैव—

त्रयोदशीचतुष्कं तु सप्तम्यादित्रयं तथा ।

चतुर्थ्येकाकिनी प्रोक्ता अष्टावेते गलप्रहाः ॥ इति ।

वक्ष्यमाणानध्यायप्रतिप्रसवमाह तुर्भरद्वाजवसिष्ठौ—

या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघेऽथ सप्तम्यथ फाल्गुनस्य ।

कृष्णे द्वितीयोपनये प्रशस्ताः प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रमुख्यैः ॥ इति ।

चैत्रवैशाखशुक्लतृतीये मन्वादियुगादी । माघसितसप्तम्यपि मन्वादिः ।

अनध्यायप्र- एतासामनध्यायत्वं वक्ष्यते । टोडरानन्दे कारिकानि-
तिप्रसवः । धन्वे विशेषः—

अनध्यायाथ पूर्वैर्गुरनध्यायात्परेऽहनि ।

घृतारम्भं विसर्गं च विद्यारम्भं न कारयेत् ॥ इति ।

अनध्यायात्परेहनीति द्विर्तायेतरविषयं द्वितीयायाः सुरेश्वरेण प्रति-
पदोक्तत्वादित्यपि व्याख्यातं तत्रैव । ननु नवम्यादित्रयमिति नवम्या अपि
निषेधात्कोऽस्य विषयः । उच्यते । निषेधद्वयवशादोपाधिक्यकल्पना ।
मान्यास्तु यदा नवमी दशदण्डा तदा 'निषेधः कालमात्रकः' इतिवचना-
त्तदुत्तरमुपनयनं प्राप्तमनेन निषिध्यत इत्याहुः ।

पूर्वाह्वादिप्राशस्त्यमाह धर्मप्रकाशे ज्योतिर्भनुः—

सर्वदेशेषु पूर्वाह्ने मुख्यं स्यादुपनायनम् ।

मध्याह्ने मध्यमं प्रोक्तमपराह्ने तु गर्हितम् ॥ इति ।

भरद्वाजः—विनर्तुना वसन्तेन कृष्णपक्षे गलप्रहे ।

अनध्याये चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥ इति ।

पुनरुपनयननिमित्तानि चापि विस्तरेण वक्ष्यामः । विशेषमाह व्यव-
हारचण्डेश्वरः—

केतोरस्तदिनादर्धं सप्ताहानि परित्यजेत् ।

यावत्केतुदयस्तावदशुद्धः समयो भवेत् ॥ इति ।

इदं ब्रह्मपुत्राख्योपकेतुविषयमिति धर्मप्रकाशे ।

गर्गः—चन्द्रसूर्योपरागेषु त्र्यहं प्रागशुभं भवेत् ।

सप्ताहमशुभं पश्चात्स्मृतं ग्रहणशुद्धम् ।

रण्डग्रहेऽङ्गिराः—

सर्वप्रासे तु सप्ताहमर्घप्रासे दिनत्रयम् ।

त्रिद्विधेषु शुक्लो प्रासे दिनमेकं तु वर्जयेत् ॥ इति ।

विवाहचण्डेश्वरः—

ग्रहे रवीन्द्रोरवनिप्रक्रम्ये केतुद्रमोल्कापतनादिदोषे ।

प्रते दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञास्योदशाहानि वदन्ति केचित् ॥

ज्योतिर्निबन्धेऽनुकल्पोऽप्युक्तः—

पञ्चदिनानि वसिष्ठस्त्रिदिनं गर्गस्तु कौशिकस्त्येकम् ।

यवनाचार्यस्य मतं पञ्चमुहूर्तान्द्रूपयति राहुः ॥

एवं सर्वमालोक्य ज्योतिर्विदुपदिष्टे मुहूर्ते उपनयनं कुर्यात् । अत्र च
माणवऋतुर्लृकं गुरुसमीपगमनं प्रबानमिति जरन्मीमांसकाः । नव्यास्तु णि-
जविब्रह्माद्यां मानाभावादाचार्यकर्तृकं माणवकाधिकारिकमुपनयनमेव वि-
धीयत इत्याहुः । युक्तं चेदम् । स्मृत्यर्थसारे तु । आचार्यसमीपनयनमग्निसमी-
पनयनं वा गायत्रीवाचनं वा प्रबानमित्युक्तम् । अथोपनेत्रुपनेययोरधिकार-
संपादनार्थं प्रायश्चित्तमाह नृद्वविष्णुः—

कृच्छ्रत्रयं चोपनेता श्रीनृच्छांश्च यदुश्चरेत् । इति ।

आचार्यस्य विशेषं स एवाह—

उपनेत्रोप- सावित्रीमध्यसेदमिं पवित्राणि च संस्मरन् ।

भेदधिकारआ- सहस्रं द्वादशाख्यं च सावित्रीं प्रजपेद्बुधः ।

यथितम् । स्वाभिकारार्थमेवास्याः प्रदानार्थं हि तत्स्मृतम् ॥ इति ।

पण्डादीनामप्युपनयनमुक्तं ब्रह्माण्डे—

पण्डादुप- ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणः स इति श्रुतिः ।

नयनम् । तस्माच्च पण्डवधिरकुञ्जवामनपङ्कजम् ॥

१ विवाहचण्डेश्वरः इति च पाठः ।

जडगद्गदरोगार्तशुष्काङ्गविकलाङ्गिषु ।
 मत्तोन्मत्तेषु मूकेषु शयनस्थे निरिन्द्रिये ।
 ध्वस्तपुंस्त्वेषु चैतेषु संस्काराः सूर्ययोचितम् ॥
 ययोचितमिति अशक्याद्गृहीतेने [हीना इ?] त्यर्थः ।
 मत्तोन्मत्तौ न संस्कार्याविति केचित्प्रचक्षते ।
 कर्मस्वनधिकाराच्च पातित्यं नास्ति चैतयोः ॥
 तदपत्यं च संस्कार्यमपरे त्वाहुरन्यथा ।
 संस्कारमन्त्रहोमार्दान्करोत्याचार्य एव तु ॥
 उपनेयांश्च विधिवदाचार्यः स्वसमीपतः ।
 आनीयाग्निप्रसमीपं वा सावित्रीं स्पृश्य वा जपेत् ।
 कन्यास्वीकरणादन्यत्सर्वं विप्रेण कारयेत् ॥ इति ।

उपनेतृक्रममाह गर्गः—

पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः ।
 उपायनेऽधिकारी स्यात्पूर्वाभावे परः परः ॥
 तथा—पितैषोपनयेत्पुत्रं तदभावे पितुः पिता ।
 तदभावे पितुर्भ्राता तदभावे तु सोदरः ॥ इति ।
 इति कालादिनिर्णयः ।

अथ परिधानोत्तरीयनिर्णयः । तत्र गृह्यम्—‘अहतेन वाससा संवी-
 परिधानो- तमैणेयेन वाऽजिनेन ब्राह्मणं रौरवेण क्षत्रियमाजेन वैश्यम् ।
 -उत्तरीयनिर्णयः । यदि वासांसि वसीरन् रक्तानि वसीरन्कांपायं ब्राह्मणो
 माञ्जिष्ठं क्षत्रियो हारिद्रं वैश्यः’ इति ।

अहतलक्षणं प्रचेता आह—

अहतक- ईषद्वौतं नवं श्वेतं सदृशं यन्न धारितम् ।
 धनम् । अहतं तद्विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम् ॥ इति ।

पूर्वगृह्यार्थः । तत्र वासः साधारणं यदा त्वजिनं प्रावरणं तदा ब्राह्मणा-
 [दय एणेया]ङ्गीनि । एणी विन्दुस(र)हिता मृगी । ‘एण्या ढब्’ इति
 ढब् । यदि वासांसीत्यत्र वाक्यभेदव्यवहितान्वयौ । वासांसि वसीरन्नित्येकं
 वाक्यम् । यदि रक्तानि वसीरन्स्तदा कापायमित्यादि चाऽन्यत् ।
 मनुविशेषमाह—

वस्त्रेषु कर्णरौरववास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः ।
 निवेजः । वसीरन्नानुपूर्व्येण शणश्चौमाविकानि च ॥ इति ।

कार्णारौरव्वाराननुत्तरीयाणि 'कुष्णरुखस्ताजिनान्युत्तरीयाणि' इति वस्त्रेषु विशेषः । शङ्खवचनात् । वस्त्रेषु विशेषमाह वसिष्ठः— 'शुक्रमहत्तं वासो ब्राह्मणस्य कार्पासं माश्रिष्टं क्षौमं क्षत्रियस्य पोतं कौशेयं वैश्यस्य' इति । इति वस्त्रादिनिर्णयः ।

मेखलाव्यवस्थामाह मनुः—

मेखला-
व्यवस्था । मौञ्जी त्रिवृत्समा ऋक्षणा कार्या विप्रस्य मेखला । क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शणतान्तवी ॥ ज्या कदाचिर्धर्ममयी भवति कदाचित्तृणमयी । तत्र चर्ममयीव्यावृ-
त्यर्थं मौर्वीति मेधातिथिः । ज्यायाश्च स्वरूपनाशप्रसङ्गाद्विद्वत्त्वादिगुणो-
नेति धर्मप्रकाशे तात्पर्यः । शणो तु त्रिवृत्त्वादिगुणोऽस्त्येव । गृह्ये विशेषः—
'तेषां मेखला मौञ्जी ब्राह्मणस्य धनुर्ग्या क्षत्रियस्याऽऽवी वैश्यस्य' इति
आव्यवस्थाकृत्यर्थः । अनुकल्पमाह मनुः—

अनुकल्पः । गुञ्जालाभे तु कर्तव्या कुशाश्मन्तकवत्त्वजैः । त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव च ॥ इति ।

अत्र कुत्स्नकमट्टः 'आदिशब्दस्य लोपमङ्गीकृत्याकाङ्क्षितविधानान्मु-
खादीनां तिसृणां मेखलानामलाभे क्रमेण कुशाश्मन्तकवत्त्वजा प्राद्या इत्या-
ह । ग्रन्थयश्च शिष्टाचारात्प्रवरसंख्यया कार्याः । तथा च मनुस्यो विकल्पो
व्यवस्थितः । एकप्रवरस्यै वैको ग्रन्थिप्रवरस्य त्रयः पञ्चप्रवरस्य पञ्चेति ।
इति मेखलाव्यवस्था ।

दण्डा उक्ता गृह्ये 'तेषां दण्डाः पालाशो ब्राह्मणस्यौदुम्बरः क्षत्रियस्य
वैल्लो वैश्यस्य केशसंमितो ब्राह्मणस्य ललाटसंमितः क्षत्रियस्य प्राणसं-
मितो वैश्यस्य सर्वं वा सर्वेषाम्' इति । प्राणो नासा । मनुर्विशेषमाह—

दण्डः । प्राह्मणो वैल्वापालाशौ क्षत्रियो वाटस्वादिरौ ।
पैण्ड्रौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः ॥ इति ।

न चात्र द्वन्द्वनिर्देशात्समुच्चय इति वाच्यं, दण्डं प्रदायेतिसूत्रे गुणभूतद-
ण्डैकत्वश्रवणात् । मनुस्मृत्यावेव गुणविधिवान्वये 'केशान्तको ब्राह्मणस्य' इत्ये-
कवचनश्रवणात् वसिष्ठस्मृतौ स्पष्टमेव 'वैल्वाः पालाशो वा' इति विक-
ल्पाभिधानाच्च । अतो विकल्पितयोरेव द्वन्द्वनिर्देश इति । सर्वेषामलाभे
यम आह—
एतेषामप्यलाभे तु सर्वेषां सर्वयज्ञियाः । इति ।

दण्डान्विदिनष्टि श्लोकगौतमः—

ऋजवस्ते तु सर्वे स्थुरव्रणाः सौम्यदर्शनाः ।

अनुद्वेगकरा दण्डाः सत्वचो नाग्निदूषिताः ॥ इति ।

इति दण्डनिर्णयः ।

यज्ञोपवीतमाह मनुः—

कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृतम् ।
उपवीतम् । शणसूत्रमयं राज्ञो धैर्यस्याऽऽविकमुच्यते ॥

शणसूत्रमयमित्यत्रापि ऊर्ध्ववृतं त्रिवृदिति संग्रह्यते । आविकमव्यूर्णा-
संभवम् । एवं च यदिदानींतनानां क्षत्रियवैश्यानां कार्पासोपवीतधारणं तत्र
मूलं न विद्यः । विशेष उक्तः छन्दोगपरिशिष्टे—

त्रिवृदूर्ध्ववृतं कार्यं तन्तुत्रयमथोवृतम् ।

त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको प्रन्थिरिष्यते ॥

कर्तव्यतामाह देवलः—

ग्रामान्निष्कम्य संख्याय पणवत्यङ्गुलीषु तत् ।

तावन्निगुणितं सूत्रं प्रक्षाल्याच्छिद्वैश्विभिः ॥

देवागारेऽथवा गोष्ठे नथां वाऽन्यत्र वा शुचौ ।

सावित्र्या त्रिवृतं कुर्यान्नवसूत्रं तु तद्भवेत् ॥

हरिप्रहोश्चरेभ्यश्च प्रणम्याऽवदधात्यथ ।

यज्ञोपवीतमित्यादिव्याहृत्या चापि धारयेन् ॥

तथा—यज्ञोपवीतं कुर्वीत सूत्राणि नवतन्तवः । इति ।

वसिष्ठस्तु विशेषमाह—

नाभेरूर्ध्वमनायुष्यमथो नाभेस्तपःक्षयः ।

तस्मान्नाभिसमं कुर्यादुपवीतं विचक्षणः ॥

कालायनोऽपि—पृष्ठदेशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम् ।

तद्व्यायमुपवीतं स्यान्नातिलम्बं नचोच्छ्रितम् ॥ इति ।

धारणे विशेषमाह भृगुः—

उपवीतं घटोरेकं द्वे तथेतयोः स्मृते ।

भागे विशेषः । एकमेव यतीनां स्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥

इतरयोर्गृहस्थवनस्थयोः । यतीनां त्रिदण्डिनाम् । 'स्नानोत्तरमेव द्वे'
इत्याह वसिष्ठः—

स्नातकानां द्वितीयं स्यादन्तर्वासस्तथोत्तरम् । इति ।

एतद्वारणं नित्यम्—‘बहूनि चायुष्कामस्य’ इति देवलवचनाद्बहून्पि भार्याणि । बहुत्वावधिमाह कश्यपः—

ग्रीणि चत्वारि पञ्चाष्ट गृहिणः स्युर्दशापि वा ।

सर्वेषां शुचिभिर्भार्यसुपर्वीतं द्विजातिभिः ॥

इदं च—सदोषवीतिना भाव्यं सदा षड्भस्मिन् च ।

विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥

इतिभृशस्मृतोर्नित्यम् । तत्र पूर्वार्धेन पुरुषार्थत्वमुत्तरार्धेन ब्रह्मद्वैतमिति ।

विशेषमाह मनुः—

उद्धृते दक्षिणे पाणानुपवीत्युच्यते द्विजः ।

सव्ये प्रार्चानभार्थीती निवीती कण्ठसर्जने ॥

असमासश्चानन्दसः । स्मृतिसारे—‘सूत्रमन्यकृतमपि ग्राह्यम्’ इत्युक्तम् ।

छेदे विनाशे वा स्नातः कन्यया निर्मितं शुभम् ।

विश्ववाद्यामिरथवा सूत्रं गृहीत वै मुनिः ॥ इति ।

मेखलादीनां छेदे जलमध्ये प्रक्षेपः कार्य इत्याह मनुः—

मेखलामजिनं दण्डसुपर्वीतं कमण्डलुम् ।

अप्सु यास्य विनष्टानि गृहीतान्यानि मन्त्रवत् ॥ इति ।

मन्त्रवदिति उपनयनकाले यैर्मन्त्रैर्भूतानि ते मन्त्रा गृह्यन्ते । इत्युपवी-
तनिर्णयः ।

इत्युपनयनम् ।

अथ पुनरुपनयने विशेषमाहाऽऽश्वलायनः—‘अथोपेतपूर्वस्य कृताकृतं पुनरुपन-
येन विद्वेजः । शृणीमह इति सावित्रीम्’ इति । कृताकृतं पैकल्पिकम् ।
अनिवर्तं न कर्तव्यमित्यर्थः । कालनियमोऽपि नास्तीत्यर्थः ।

पराशरः—अजिनं मेखला दण्डो भैक्षचर्या व्रतानि च ।

निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥ इति ।

इदं च पुनरुपनयनं वेदान्तराध्ययनं चिकीर्षुः कुर्यादिति हरदत्त आह ।

आश्वलायनः—अव्यर्थेषां साम्प्रदानामृचमभ्येतुमिच्छताम् ।

क्रिया स्यात्परिदानान्ता दीक्षादिर्न विधीयते ॥

अचम्यवेदम् । परिवानम् ‘आदित्याय व्रतपत्ये बद्धं मे ददामि’ इति
विहितम् । अन्ये तु यत्र पुनःसंस्कारो विधीयते तत्रापीयमेवेति कर्तव्यमिति ।

अथ पुनरुपनयननिमित्तानि भरद्वाजः—

पुनरुपनय-
ननिमित्तानि । वितर्तुना वसन्तेन कृष्णपक्षे गलग्रहे ।
उपनीतस्त्वनध्याये पुनःसंस्कारमर्हति ॥
अपराह्णे चोपनीतः पुनःसंस्कारमर्हति ॥ इति ।

तथा—प्रदोषे निश्यनध्याये नन्दे कृष्णे गलग्रहे ।
मधुं विनोपनीतस्तु पुनः संस्कारमर्हति ॥ इति ।

पराशरः—अध्वानात्प्राश्य विष्णूत्रं सुरासंसृष्टमेव च ।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ।

विष्णुः—‘विद्वराहमामकुकुटगोमांसभक्षणेपु द्विजातीनां प्रायश्चित्तान्ते
पुनःसंस्कारं कुर्यात्’ इति ।

लशुनं गृञ्जनं जग्ध्वा पलाण्डुं च तथा पुनः ।
उष्ट्रमानुपकेभाभ्वारासभीक्षीरमोजतात् ।
उपायनं पुनः कुर्यात्तप्तकृच्छ्रं चरेन्मुहुः ॥
देशान्तरं गतस्यौर्ध्वदेहिके कृते यशसौ पुनरायाति तत्रोक्तं संप्रहे—
जीवन्यदि समागच्छेद्भुतकुम्भे निमज्ज्य तम् ।
पुनरुत्थापयित्वाऽस्य जातकर्मादि कारयेत् ॥ इति ।

बौधायनः—

सिन्धुसौवीरसौराष्ट्रंस्तथा प्रत्यन्तवासिनः ।
(अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च गत्वा संस्कारमर्हति ॥ इति ।)
अगमने (तीर्थयात्रार्थमङ्गादिगमने ?) तु न दोषः—
अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च सौराष्ट्रमगधांस्तथा ।
तीर्थयात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥
इति श्लोकगौतमोक्तेः । इति पुनरुपनयननिमित्तानि ।

ब्रह्मचारिधर्माः ।

अथ ब्रह्मचारिधर्माः । याज्ञवल्क्यः—

गुरुं वै चाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः । इति ।

आश्वलायनः—

ब्रह्मचारी-
धर्माः ।

अश्वनाभ्यश्जने क्षौद्रं गन्धपुष्पाश्चतान्त्रती ।
वर्जयेत्पादुके छत्रं यानोष्णीपरधादिकान् ॥
न शर्यातान्तरिक्षे तु नाऽशुचौ न परैः सह ।
न वासीत न नम्रश्च नालीकं विभृयाद्गती ॥

नार्थकं नालिकेरकमण्डलुमिति धर्मप्रकाशे—

मनसापि न चोद्वह्या गुरोराज्ञा कथंचन ।
गुरुबद्धरूपत्नीपु तत्पुत्रादिषु सर्वदा ॥
प्रत्यक्षे वा परोक्षे वा चरेत् प्रथमाश्रमी ।
वेदोदितत्रतैरन्यान्त्रतानन्यान् संचरेत् (?) ।
न स्नायात्सर्वतीर्थेषु न भुञ्जीयादितस्ततः ॥

नार्थयात्रां न कुर्यादित्यर्थः ।

भैक्षमाहृत्य मुञ्जीयात्सायंप्रातर्गुरौ वसन् ।
देवार्पितपूजां च कुर्याद्वा गुर्वनुद्वह्या ॥
अच्छिन्नोन्धारयेन्नित्यं दण्डाजिनकमण्डलम् ।
यज्ञसूत्रपवित्रे च मेखलां च गुरौ वसन् ॥
न श्रावसूतके स्यातां मातापित्रोर्मृतावृते ।
व्रतिनश्चोत्सवालोकः श्राद्धान्नं च न शस्यते ॥
न भक्षयेच्च ताम्बूलमथ मैथुनमेव च ।
वर्जयेद्दण्डान्नं अजान्नाजापूषादिकान्त्रतां ॥
चरित्वा चतुरो वेदांस्त्रिन्धौ चैकमथापि वा ।
नोपयेद्दक्षिणाभिस्तु गुरुं भक्त्या विचक्षणः ॥ इति ।

सुमन्तुः—ब्रह्मचर्यं तयो भैक्ष्यं संख्ययोरभिर्कर्म च ।

स्वाध्यायं गुरुवृत्तिश्च चर्ययं ब्रह्मचारिणः ॥

व्यासः—जघन्यज्ञायी पूर्वं स्यादुत्थायी गुरुवेश्मनि । इति

गुरुसेवायाः फलमाह शङ्खः—

गुरुसेवाफलम् । न हानेन न होमेन नैवाग्निपरिचर्यया ।

ब्रह्मचारी दिवं याति स याति गुरुपूजनात् ॥

मनुः—अधःशय्याऽऽसनं चास्य नित्यं स्याद्गुरुसन्निधौ ।

गुरोश्च चक्षुर्विषये न खेप्यसक्तो भवेत् ॥

प्रसारणादिकं न कुर्यादित्यर्थः । अत्र नित्यप्रहणाद्ब्रह्मचर्योत्तरकालम-
प्येतेऽनुवर्तन्ते एव । समासनमप्यनुजानाति कचिद्विष्णुः—

‘नास्त्यैकासनो भवेदुक्ते दिक्ष्णाफलकनौयानेभ्यः’ इति ।

मनुः—गुरोर्यत्र पर्यावादो निन्दावाऽपि प्रवर्तते ।

कर्णौ तत्र पिशातव्यौ गन्तव्यं वा तनोऽन्यतः ॥

सदोपकीर्तनं परीवादः । असदोपोक्तिर्निन्दा । निन्दादिकरणे फल-
माह स एव—

गुरुनि- भवेत्स्वरः परीवादाच्छृष्टा वै भवति निन्दकः ।
न्दफलम् । परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥

परिभोक्ता अदत्तगुरुदानभोक्ता । हारीतः—

ऋचं वा यदि चार्धर्चं पादं वा यदि वाऽश्वरम् ।

सकाशायस्य गृहीयान्नियतं तस्य गौरवम् ॥

मनुः—नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ।

न चैवास्याऽनुकुर्वीत मतिभाषितचेष्टितम् ॥ इति ।

केवलं नाम न ग्राह्यं किंतु उपाध्यायादिविशिष्टम् । उक्तं च गौतमेन—
'नामगोत्रे गुरोः समानतो निर्दिशेत्' इति । मानेन सहितं समानम् ।

याज्ञवल्क्यः—

मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुल्कस्त्रीप्राणिर्हिसनम् ।

भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत् ॥ इति ।

मधु क्षौद्रम् । आश्वलायनस्मृतौ क्षौद्रमहणात् । शुल्कं निष्ठुरवाक्यम् ।
यदि मांसभक्षणान्निवर्त्या व्याधिस्तदा गुरोरुच्छिष्टं भक्षणीयम् । आश्व-
लायनस्मृतौ 'स चेद्वाधीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भेषजार्थं सर्वं प्राभी-
यात्' इति । आपस्तम्बोऽपि—

'पितुर्ज्येष्ठस्य च भ्रातुरुच्छिष्टं भोक्तव्यम्' इति ।

मनुः—वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धमाल्यरसान् स्त्रियः ।

शुल्कानि चैव सर्वाणि प्राणिनां च विर्हिसनम् ॥

अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरूपानच्छत्रधारणम् ।

कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादने ।

स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ॥ इति ।

प्रेक्षणालम्भमिति मैथुनशङ्कायामेव । यथोक्तं गौतमेन—'प्रेक्षणा-
लम्भने मैथुनशङ्कायाम्' इति ॥ एवं च मान्यस्त्रीणां प्रेक्षणमालम्भः
संभाषणं वा न दोषाय । आलम्भः स्पर्शः । मनुर्विशेषमाह—

मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटी । इति ।

अत्र त्रयः पक्षाः मुण्डः जटी शिखाजटी वेति । गौतमोऽपि—'मुण्डी
शिखी वा' इति । कात्यायनोऽपि—

सशिखं वपनं कार्यमास्त्रानाद्रहचारिणः । इति ।

सर्वमुण्डत्वं सामगविषयमिति केचित् । तथा च विष्णुपुराणे ज्ञापकम्—

एते लूनशिक्षास्तस्य दम्भनैरचरोद्भूतैः ।

कुशकाशा विराजन्ते बटवः सामगा इव ॥ इति ।

यमः— 'सदासनं च शयनं वर्जयेदन्तर्धानम् ।

स्वपेदेकः कुशेष्वेव न रेतः स्कन्दयेत्कचित् ॥

कूर्मपुराणे—

नाऽदर्शं वै सर्माक्षेत नाचरेदन्तर्धानम् । इति ।

याज्ञवल्क्यः—

ब्रह्मचर्यं स्थितो नैकमभ्रमयादनापदि ।

प्राक्षणः काममश्रीयाच्छ्राद्धे व्रतमपीदयन् ॥ इति ।

ब्रह्मचर्यं स्थितो ब्राह्मणादिरेकमेकसंविध्यं नाचात् । एकस्यान्नं न गृहीयात् किं तु कृन्नां ब्रह्मचारी तु आद्रे निमग्नतः सन्मधु-
मांसादिबर्जमेकस्यापि गृहेऽश्रीयात् । अनेन ज्ञायते आद्यव्यतिरेकेणैकस्यान्नं न गृहीयादिति । तथा—

अप्रिकार्यं ततः कुर्यात्संध्ययोरुभयोरपि । इति ।

ततः संध्योत्तरम् । संध्याविधिश्चाचारमगूले विस्तरेण कथ्यते । कदाचि-
त्यातःसंध्योत्तरमकृतस्याप्रिकार्यस्य यावद्भोजनं गौणकालमाह स एव—

कृताप्रिकार्यो भुञ्जीत वाग्यतो गुर्वनुज्ञया । इति ।

'सायमेवाप्रिभूजेत्येके' इति सायमेवाप्रिकार्यमित्याहाऽऽपस्तम्बः ।

समिदाहरणं मरुराह—

पुरादाद्रत्य समिधः स निदध्याद्विहायसि ।

सार्यं प्रातश्च जुहुयान्तामिरग्निमन्त्रितः ॥ इति ।

विहायसि मण्डपादाविति धर्मप्रकाशे । आपस्तम्बः—'नास्तमिते
समिदारो गच्छेत्' इति ।

समित्पारिमाणमाह कात्यायनः—

नाङ्गुष्ठावधिवन्न कार्या समित्स्थूलतया कचित् ।

न विहीना तन्वा चैव न सक्रीडा न पाटिका ॥

प्रादेशात्राविका नोना तथा न स्याद्विशालिका ।

विशीर्णा विदल्य हस्ता कर्माः ससुपिराः कृशाः ।

दीर्घाः स्थूलाश्च समिधो वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ इति ।

अग्निकार्याकरणे प्रायश्चित्तमृग्विवाने—

अग्निकार्याकर- मानस्तोके जपेन्मन्त्रं शतसंख्यं शिवालये ।
ने प्रायश्चित्तम् । अग्निकार्यं विना मुञ्चे न पापं ब्रह्मचारिणः ॥ इति ।
इत्यग्निकार्यम् ।

ततोऽभिवादनमुक्तं याज्ञवल्क्येन—

अभिवादनम् । ततोऽभिवादयेद्ब्रह्मानसावहमिति श्रुवन् । इति ।

ततोऽग्निकार्यानन्तरम् । अत्राग्निकार्याभिवादनयोरङ्गाङ्गित्वाभावात्कदा-
चिदग्निकार्याकरणेऽपि अभिवादनं कार्यमेव । वृद्धा मान्याः । तत्र मान्यो-
गुरुः । तं विशिनष्टि याज्ञवल्क्यः—

स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति । इति ।

क्रिया निषेकाद्याः । मनुष्ये—

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ।

संभावयति चाग्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥ इति ।

एवं च पितैव गुरुः । निषेकादिक्रियाकर्तृत्वात्तस्य । एवं च—

उपनीय य ऋग्वेदमाचार्यः स उदाहृतः ।

इत्याचार्यस्योपनेतृत्वं पितृभावे द्रष्टव्यम् । यद्यपि क्षत्रियस्य वृत्त्यर्थ-
त्वेनाप्राप्तमध्यापनं तथाप्यापदि धर्मार्थं प्राप्तमेव ।

अतश्च—‘पितैवोपनयेत्पुत्रम्’ इति क्षत्रियादिं प्रत्यापदि प्रवर्तत एव । अयं
परो विदोषः । याज्ञवल्क्यवाक्ये संज्ञासंज्ञन्धसैवर्णिकान्विपर्ययकरोति । मनु-
वाक्ये तु विप्रप्रहणात्तमेव विपर्ययकरोति । एवं च विप्रस्तान्न (विप्रा-
दन्यत्र ?) संभावनाकरणे गुरुत्वं यद्यपि मनुवाक्यं न प्रतिपादयति तथापि
याज्ञवल्क्यवचनात्तत्सिद्धिः । षण्वर्णिकानां मध्ये यस्यैवैतद्वचनद्वय-
प्रतिपादितानि निमित्तानि न सन्ति न तस्य गुरुशब्दवाच्यत्वम् । शूद्रा-
णां तु न कदाप्येतद्वचनद्वयप्रतिपादितं गुरुत्वं संभाव्यते । नन्वेवं
शूद्राणां गुरुतत्पगमनप्रायश्चित्तं न स्यादिति चेद्येद्यपि गुरुतत्पगमनजन्यं
न स्यात्तथापि मानृगमनजन्यं स्यादेवेति न विरोधः ।

यद्वा—उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महामतिः ।

मातुलश्च गुरुस्वाता मातामहपितामहौ ॥

वर्णज्येष्ठः पितृव्यश्च पुंस्येते गुरवः स्मृताः ।

माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुश्च सोदराः ।

पितामही स्वसा ज्येष्ठा भ्रात्री च गुरुवः स्त्रियः ॥

इति देवस्वाध्यायेन केवलस्वाध्यापि पितृगुरुसंज्ञाकरणात्तद्व्यापारगमने भवि-
ष्यत्येव गुरुतत्त्वगमनप्रायश्चित्तम् । आचार्यं विशिनष्टि मनुः—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्विजः ।

सम्प्लवं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ इति ।

रहस्यमुपनिषदः । उपाध्यायं विशिनष्टि स एव—

एकदेशं तु यो वेदं वेदाङ्गान्यथवा पुनः ।

योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥ इति ।

शङ्खोऽपि—भृतकाध्यापको यस्तु स उपाध्याय उच्यते । इति ।

माते दिने वषं वा एतावदेयमिति परिच्छिन्नं योऽध्यापयति स भृतका-
ध्यापकः । विष्णुरपि—

‘यस्त्वेनं मूल्येनाध्यापयेत्तमुपाध्यायम्’ इति ।

विद्यादिति शेषः । एषु च मध्ये माता मान्यतरेत्युक्तं बाङ्गवत्कन्येन—

पते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी ॥ इति ।

धर्मप्रकाशे पुराणे तु—

द्वौ गुरु पुरुषस्येह पिता माता च धर्मतः ।

तयोरपि पिता श्रेयान्वीजप्रधान्यदर्शनात् ।

अभावे वीजिनो माता तदभावे तु पूर्वजः ॥

इति पितुर्गरीयस्त्वमुक्तम् । अत्रेच्छया विचरत्यः तुल्यकल्पत्वं वा ।
अन्यं विशेषमाह विष्णुः—

‘बाले समानवयस्यध्यापके गुरुवद्भूतेत’ इति ।

बाल इति नाक्याणीय इत्यर्थः । इति गुर्वादिनिरूपणम् ।

अभिवादनप्रकारमाह मनुः—

अभिवादात्परं विप्रो ज्ञायांसमभिवादयन् ।

असौ नामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्तयेत् ॥

अभिवादादभिवादये इति पदात्परं स्वं नाम आहाम् ।

तथा—भोऽहं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादाने । इति ।

तथाच अभिवादये देवदत्तोऽहं भो इत्युल्लेखः । एकहस्तेनाभिवादनक-
रणे दोषमाह विष्णुः—

जन्मप्रभृति यत्किञ्चित्तेतसा धर्ममाचरेत् ।
धर्मं तन्निष्फलं याति एकहस्ताभिवादाने ॥ इति ।

विशेषमाहात्रिः—

दक्षिणं पाणिमुद्धृत्य प्रकाममभिवादयेत् ।
ओत्रिये त्वञ्जलिः कार्यः पादोपग्रहणं गुरोः ॥ इति ।

एतस्माच्च वाक्यादेकहस्तेनाप्यभिवादनं गम्यते । एवं च पूर्वोक्तदोषश्र-
वणं ओत्रियादौ ज्ञेयम् । पादोपसंग्रहणप्रकारमाह मनुः—

व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः ।
सव्येन सव्यः स्रष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः ॥

गुरुचरण इति शेषः । यौधायनः—‘ ओत्रे संस्पृश्य ’ इति विशेषमाह ।
अन्यविशेषमाह मनुः—

गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् । इति ।

अथ प्रत्यभिवादनमुक्तं मनुना—

आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादाने ।
प्रत्यभिवादनम् । अकारश्चैव नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥

अत्र न नाम्नोन्तेऽकारो विधीयते किंतु यो नामान्तेऽकारस्तमुद्दिश्य
प्लुतमात्रं विधीयते । नाम्नां च सर्वेषामकारान्तत्वाभावादकारग्रहणं ना-
मान्तस्वरोपलक्षणमिति व्याख्यातृसंप्रदायः । सौम्येतिनामग्रहणार्थं तथा
च नामान्तस्वरः प्लुतो भवति । शर्मोदिप्रयोगोऽपि कार्य इति केचित् ।
एवं चायुष्मान्भव देवदत्ता ३ शर्मन्निति प्रयोगः । केचित्तु शर्मशब्दान्तर्ग-
ताकारं प्लुतं पठन्ति । तच्चिन्त्यम् । शर्मशब्दस्य नामान्तर्गत्यभावात् ।
तदन्तर्गतौ केवलशर्मप्रयोगाभावादवश्यवक्तव्ये उपपदे द्वाक्षरनामानुपपत्तिः ।
इदं च शूद्रस्य न भवति । ‘ प्रत्यभिवादेऽशूद्रे ’ इति स्मृतिरूपपाणिनिसूत्रात् ।
अनेन च ज्ञायते शूद्रं प्रत्यपि प्रत्यभिवादनं प्राप्तमिति ।

ब्राह्मणस्य क्षत्रियादीनामभिवादाने प्रायश्चित्तमाह शातातपः—

क्षत्रवैश्यावभिवाद्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।

ब्राह्मणस्य च- ब्राह्मणानां दशाष्टौ वा अभिवाद्य विशुध्यति ॥
क्षत्र्यादीनामभिवा- अभिवाद्य द्विजः शूद्रं सचैलं स्नानमाचरेत् ।
दाने प्रायश्चित्तम् ।

ब्राह्मणानां शतं सम्यगभिवाद्य विशुध्यति ॥ इति ।

अभिवादानापवादमाह विष्णुः—

सभासु चैव सर्वासु यज्ञे राजगृहे तथा ।

नमस्कारं प्रकुर्वीत ब्राह्मणान्नाभिवादयेत् ॥

कचिद(न)भिवादनमाह शातातपः—

उदक्यां सूक्तिकां नारी भर्तृघ्नीं गर्भधातिनीम् ।

अभिवाद्य द्विजो मोहादहोरात्रेण शुष्यति ॥

अनेन निषेधेन ज्ञायते स्त्रियोऽप्यभिवाद्या इति ।

यथोक्तं मनुना—

कामं तु गुरुपत्नीनां युक्तीनां युषा सुधि ।

विधियद्वन्दनं कुर्यादसावहमिति शुक्ल ॥ इति ।

विशेष उक्तस्तेनैव—

यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ।

नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥

एतन्नाभिवादनमधिक्ययसामेव कार्यम्—‘ज्यापांसमभिवादयेन्’ इति स्मृतेः ।

तथा अत एव ऋत्विगादीनां मान्यत्वेऽपि कर्नायसामन्भिवाद्यत्वाद्माह गौतमः—‘ऋत्विक्श्चशुरपितृव्यमातुलपितृव्याणां तु यवीयसां प्रत्युत्थानमनभिवाद्याः’ इति ।

यत्तु वसिष्ठः—‘ऋत्विक्श्चशुरपितृव्यमातुलानवरवयसः प्रत्युत्थायाभिवादयेत्’ इति । तदभिवादनमाभिमुख्येन वदनं परितोपपन्नार्थम् । अत एव वीधायनः—ऋत्विक्श्चशुरपितृव्यमातुलानां यवीयसां प्रत्युत्थायाभिभाषणम् ॥ इति ।

अभिभाषणनियममाह मनुः—

कुशलं ब्राह्मणं पृच्छेत्क्षत्रवन्धुमनामयम् ।

वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च । इति ।

ब्राह्मणेन स्वस्मात्कर्तव्यानां क्षत्रियादीनां वाऽऽक्षौर्देवत्युक्तं भार्गव-
पुराणे—

ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति स्थितिः ॥ इति ।

विशेष उक्तः शातातपेन—

पाखण्डं पक्वितं ज्ञात्यं महापातकितं शकम् ।

नास्तिकं च कृतघ्नं च नाभिवादेत्कथंचन ॥
 धावन्तं च प्रमत्तं च मन्त्रोच्चारकृतं तथा ।
 भुञ्जानमाचमनार्हं नाभिवादेत्कथंचन ॥
 वमन्तं कृन्तमाणं च कुर्वन्तं दन्तधावनम् ।
 अभ्यक्तशिरसं चैव स्नास्यन्तं नाभिवादयेत् ॥

जमदग्निः—

देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं चैव त्रिदण्डिनम् ।
 नमस्कारं न कुर्याच्चैदहोरात्रेण शुध्यति ॥
 इत्यभिवादनप्रत्यभिवादननिर्णयः ।

अथ मान्यतानिमित्तानि । याज्ञवल्क्यः—

विद्याकर्मवयोवन्धुवित्तैर्मान्या यथाक्रमम् ।

मान्यतानि- अत्र पूर्वपूर्वस्य गरीयस्त्वं ज्ञेयम् । उक्तं च गौतमेन—
 मित्तानि । 'श्रुतं सर्वेभ्यो गरीयस्तन्मूलत्वाद्धर्मस्य' इति ।

मनुरपि—पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च ।

यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमी गतः ॥ इति ।
 दशमी गत इति नवतेरूर्ध्वावस्था प्राप्त इत्यर्थः । पञ्चानां विद्यादीनाम् ।
 याज्ञवल्क्योऽपि—

एतैः प्रभूतैः शूद्रोऽपि वार्द्धके मानमर्हति । इति ।

मार्गापसारणे विशेषमाह मनुः—

मार्गापसारणे- चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ।
 विशेषः । स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देवो वरस्य च ॥

वगो विवाहोद्यतः । भारतेऽपि—

अष्टावक्रः पथि राज्ञा समेत्य प्रोत्सार्यमाणो वाक्यमिदं वभाषे ।
 अन्वस्य पन्था वधिरस्य पन्थाः स्त्रियः पन्था भारवाहस्य पन्थाः ।
 राज्ञः पन्था ब्राह्मणेनासमेत्य स्नातस्य पन्थाः ब्राह्मणस्यैव पन्थाः ॥ इति ।

इति मान्यतानिमित्तम् ।

अध्यय- मनुः—चर्याविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च श्रुतिचोदितैः ।
 नयमोः । वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ॥ इति ।

रहस्यमुपनिषत् । श्रुतौ—‘तस्मात्स्वाध्यायोऽध्येतव्यः’ इति स्वः स्वकीयो-
ऽध्यायः शाखा तदुक्तं भट्टीपादैः—

अत्र स्वाध्यायशब्देन स्वशाखैका तु गृह्यते । इति ।

अनेन च स्वाध्यायाध्ययनस्य प्रायस्यमावश्यकत्वं चोक्तं न तु द्वितीय-
वेदाध्ययनम् ।

एवंच—वदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।

इत्यविरुद्धम् ।

अत्र केचित्—यदूनां वेदानामध्ययनेऽपि स्ववेदसंयन्धिनी द्वितीया शा-
खानाध्येतव्येति व्यापकते । यथा आश्वलायनेन शाङ्खायनशाखेति । तद-
युक्तम् । आश्वलायनेन यजुःशाखाध्येतव्या न शाङ्खायनशाखेत्यत्र माना-
भावात् । न च स्वाध्याय इत्यत्रैकवचनान्तदर्थस्यावरमामांसारित्योपादे-
यगतत्वात्पशुना यजेतेत्यत्र द्वितीयपञ्चनालम्भवद्वितीयशाखाऽनध्ययनमिति
वाच्यम् । तत्र हि एकत्वं प्रकृत्यन्वापि व्यावर्तकं संभवति नत्वेवमत्राऽपि
स्वाध्यायस्यैकत्वेन परिज्ञातत्वात् । न ह्यप्राज्ञ इत्यत्रैकत्वं व्यावर्तकं
भवति । अतोऽत्र—

एकवेदस्य शाखानां मध्ये योऽन्यां समाश्रयेत् ।

स्वशाखां संपरित्यज्य शाखारण्डः स उच्यते ॥ इति ।

अन्यां स्वशाखाभिन्नाम् । यत्र हि एकवेदशाखानां मध्ये स्वीयां परित्यज्य
योऽन्यामधीते स शाखारण्ड इतिवदता तामधीत्यान्यशाखाध्ययनमनुज्ञातं
भवति । ॥ एव—

अधीत्य शाखामात्मीयां परशाखां ततः पठेत् । इति ।

तथा ‘पठद्भो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च’ इति । विशेषमाह कत्यायनः—

स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयं तु यः ।

कर्तुमिच्छति दुर्मेवा मोक्षं तस्य विचेष्टितम् ॥ इति ।

इदं स्वशाखोक्तविरुद्धं न कार्यमित्येवंपरम् । यथोक्तं तेनैव—

यन्नाम्नातं स्वशाखायां पारक्यमविरोधि यत् ।

विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकं यथा ॥ इति ।

अध्ययननर्माह मनुः—

अध्ययननर्मा ।

प्राकूलान्पूर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः ।

प्राणायामैश्चिभिः पूतस्तव ओङ्कारमर्हति ॥ इति ।

प्राकूलान्प्रागग्रान् । पवित्रमाह गौतमः—‘प्राणोपस्पर्शनं दर्भैः’ इति ।
प्राणा इन्द्रियाणि । संवर्तः—

पवित्रम् । प्रणवं प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरम् ।

सावित्र्याश्चानुवचनं ततो वृत्तान्तमारभेत् ॥ इति ।

वृत्तान्तं पत्रस्थापितम् । मनुः—

ओङ्कारपूर्विकास्तिष्ठो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।

त्रिपदा चैव गायत्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ॥

तिस्रः भूर्भुवःस्वः । ब्रह्मणो वेदस्य मुखमारम्भे पठनीयमित्यर्थः ।

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा ।

इतिवचनादन्ते प्रणवमात्रम् । गौतमः—‘प्राङ्मुखो दक्षिणतः शिष्य उदङ्मुखो वा’ इति । मनुः—

अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमुदङ्मुखः ।

ब्रह्माञ्जलिपुटोऽध्याप्यो लघुवासा मितेन्द्रियः ॥ इति ।

लक्ष्मणयोगेणाचमनमध्ययनाङ्गम् । शूद्रसन्निधौ नाध्येयमित्याह व्यासः—

शूद्रसन्निधौ- अनध्यायेष्वधीतं यद्यच्च शूद्रस्य संनिधौ ।

अध्ययननिषेधः । प्रतिग्रहनिमित्तं यन्नरकाय तदुच्यते ॥ इति ।

अस्याध्ययने लब्धिर्भविष्यतीत्याशया पठितम् । नारदः—

पुस्तकप्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ ।

भ्राजते न सभामध्ये जारगर्भे इव स्त्रियाः ॥

नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसन्निधौ ।

न निशान्ते परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत् ॥

नारदः—हस्तेनाधीयमानस्तु स्वरवर्णान् प्रयोजयन् ।

अग्न्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते ॥

हस्तस्वराध्ययनं तु सामयजुर्वेदिनाम् ।

व्यासः—मेखलाजिनदण्डानां धारणैर्विद्वच्चारिभिः ।

वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सर्वज्ञाना द्विजातिभिः ॥

भिक्षाशिभिर्गुरोर्नित्यं शुश्रूषायां रतैः सदा ।

आसमाप्तेर्व्रतं कार्यं वेदस्य विधिवद्विजैः ॥ इति ।

शुश्रूषाफलमाह स एव—

शुश्रूषा-
कम् ।

यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यभिगच्छति ।

तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरभिगच्छति ॥

नारदः—अहेरिब गणाङ्गीतः सौहित्यान्नरकादिव ।

राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यासुखाच्छति ॥ इति ।

सौहित्यं नृभिः । लघुव्यासः—

भक्त्यादमप्यर्थायीव मार्गोऽप्येतेन धर्मवित् ।

नत्वेव चतुरो वेदानन्यायेन कदाचन ॥

वेदविष्ठावनात्तेन वरं मौनं समाश्रितम् ।

वेदविष्ठावनाङ्गीतो (!) नरकं यात्यधोमुखः ॥ इति ।

वेदविष्ठावकस्य लक्षणमाह यमः—

योऽर्थार्थी मां द्विजे दद्यात्पटेवैवाऽविधानतः ।

अनप्याये च तं प्राहुर्वेदविष्ठावकं त्रिजाः ॥

विद्यानाशहेतुन्नारद आह—

विद्यानाश- रूतं पुस्तकशुश्रूषा नाटकासक्तिरेव च ।

हेतवः । स्त्रियस्तन्द्रा च निद्रा च विद्याविघ्नकराणि पद ।

पुस्तकस्य पुराणादेः शुश्रूषा श्रोतुमिच्छा । अन्यान्यपि लोक्तो
विद्यानाशकारणान्यङ्गान्तन्यानि ।

इत्यप्येनृभर्माः ।

गुरुभर्मानाह याज्ञवल्क्यः—

शुश्रूषाः । कृतज्ञाऽत्रोहिमेवाविशुचिकल्पानसूयकाः ।

अध्याप्या धर्मतः साधुशक्तस्तत्त्वज्ञानवित्तदाः ॥

कृतज्ञः उपकारस्य वेत्ता । कल्पो नीरोग इति ।

धर्मप्रकाशे मनुः—

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ।

आप्तः शक्तोऽर्षदः साधुः स्वोऽध्याप्या दश धर्मतः ॥

तथा—धर्मार्थो यत्र न स्यात्तां शुश्रूषा वापि तद्विधा ।

न तत्र विद्या वक्तव्या तत्र वीजमिषोपरे ॥

यदा विहिताननुप्राप्तकाय नास्तिकाय चाध्यापयति तदा धर्माभावः ।

नारदः—

गुरुशुश्रूषया विद्या पुण्डलेन धनेन वा ।

अथवा विद्यया विद्या चतुर्थं नोपलभ्यते ॥ इति ।

चतुर्थं साधनम् । यमः—

सततं प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम् ।

स्नात्वा हुत्वाऽथ शिष्येभ्यः कुर्यादध्यापनं द्विजः ॥ इति ।

शयानस्या-
ध्यापननिषेधः ।

आपस्तम्बः—‘शयानश्चाध्यापनं वर्जयेत्’ इति ।

मनुः—अध्येष्यमाणस्तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः ।

अधीष्व भो इति श्रूयाद्विरामोऽस्त्विति वा चरेत् ॥

ताडनमपि स एवाह—

भार्या पुत्रश्च दासश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः ।

प्राप्तापराधास्ताड्यास्ते रज्ज्वा वेणुदलेन च ॥ इति ।

ताडनं तु शिरसि न कार्यम् । यथोक्तं मनुना—

घृष्टतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कथंचन ।

अतोऽन्यथा तु प्रहरन् प्राप्तः स्याद्द्वोरकिल्बिषम् ॥

विद्यावतः प्रार्थितस्याध्यापनमावश्यकम् ‘ये हि विद्यामधीत्यार्थिने न प्रदद्गुर्न ते धर्मभाजः स्युः’ इति वसिष्ठस्मरणादध्यापनेनाधीताया विद्यायाः संपूर्णं फलमाप्नोतीत्यर्थः ।

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ।

प्रश्रूयाद्ब्राह्मणस्तेषां नेतराविति निश्चयः ॥

इतिमनुवचनाद्ब्राह्मणेनैव कार्यम् । इतरौ राजवैश्यौ । अत्र वाक्यत्रयम्—
‘त्रयो वर्णा ब्राह्मणादधीयीरन्’ वक्ष्यमाणवचनस्वरसाद्ब्राह्मणादित्यध्याहार्यम् । ‘ब्राह्मण एव प्रश्रूयात्’ इति द्वितीयम् । ‘नेतरौ’ इति प्रतिषेधरूपं तृतीयम् । एवं यदा क्षत्रियादिरध्यापयति तदा तस्याध्येतुश्च दोषः । आपशुभयोर्दोषो नास्तीत्याह मनुः—

अत्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते ।

अनुव्रज्य तु शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ॥ इति ।

अनुव्रज्य शुश्रूषेत्यनुगमनमात्रं कार्यं न पादप्रक्षालनादि । इयं चापद्ब्राह्मणाध्यापकाभावरूपाऽध्येतुः । गौतमोऽपि—‘आपत्कल्पा अत्राह्मणाद्ब्राह्मणस्य विद्योपयोगोऽनुगमनं शुश्रूषाऽऽसमाप्तेर्ग्राहणो गुरुः’ इति ।

मनुरपि—अदधानः शुभां विद्यामाददीताञ्जरादपि ।

अन्त्यादपि परं धर्मं खीरत्रं दुष्कुलादपि ॥ इति ।

वेदाध्ययनस्य श्रेष्ठममाह याज्ञवल्क्यः—

यज्ञानां तपसश्चैव शुभानां चैव कर्मणाम् ।

वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ॥ इति ।

विद्यादानस्य फलमाह स एव—

विद्यादान- सर्वधर्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकं यतः ।

फलम् । तद्वत्त्वा समवाप्नोति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ इति ।

इति गुरुवर्माः ।

अथानध्यायाः । ते च नित्यनैमित्तिकभेदेन द्विधा । तत्र नित्यास्तावदुच्यन्ते ।

मनुः—अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी ।

अनध्यायाः । ब्रह्माऽष्टमी पौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥ इति ।

तथा—अमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासु च । इति ।

अष्टमीत्वेनाष्टकानामुपादानादोपातिशयार्थं पुनर्ब्रह्मणम् । केचित्तु अष्टमीष्वित्येव पठन्ति । अहोरात्रं चायमनध्यायः । याज्ञवल्क्येन शुनिदा-
मित्यनुवृत्तौ चतुर्दश्यादीनामुपादानात् । रामायणे हनुमद्वाक्यम्—

सा स्वभावेन तन्वद्गी त्वद्वियोगाद्विशेषतः ।

प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गता ॥ इति ।

हारीतोऽपि—

प्रतिपत्सु चतुर्दश्यामष्टम्यां पर्वणोर्द्वयोः ।

श्वोऽनध्यायेऽद्य सर्वर्यां नाधीयीत कदाचन ॥ इति ।

तथा—प्रदोषेषु त्रयोदश्यां नाध्येयं प्रतिपत्सु च । इति ।

त्रिमुहूर्तः प्रदोषः स्याज्जानावस्तंगते सति ॥

इत्युक्तप्रदोषे । यद्वा प्रदोष उक्तो बृहन्मनुना—

चतुर्थ्यां च त्रयोदश्यां सप्तम्याम्बरात्रतः ।

अर्वाङ्गनाध्ययनं कुर्याद्यदीच्छेत्तस्य धारणम् ॥

स्मृत्यर्थसारे विशेषः—

चतुर्थ्याः पूर्वरात्रे तु नवनाडीषु दर्शने ।

नाध्येयं पूर्वरात्रे स्यात्सप्तमी च त्रयोदशी ॥

अर्बरात्रात्पुनः चेत्स्यान्नाध्येयं पूर्वरात्रके ॥ इति ।

पूर्वं चतुर्थ्यामर्धरात्रतोऽर्वाङ्नाध्येयमिति तावत्पर्यंतं चतुर्थीसत्वे अन्यथा नवनाडीपर्यन्तम् । यद्वा पूर्ववचनेनार्धरात्रात्प्राग्दोषेऽवगते पुनरत्र नवनाडीग्रहणं दोषातिशयार्थम् ।

दक्षः—प्रदोषपञ्चमौ यामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत् ।

यामद्वये शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

बौधायनः—प्रातःसंध्या त्रिनाडी स्यात्सायंसंध्या तथाविधा ।

महानिशा तु विज्ञेया चतस्रो घटिकास्तथा ।

सायंप्रातःसंध्योश्च नाधीयीत महानिशि ॥

तथा—महानिशा तु विज्ञेया रात्रौ मध्यमयामयोः ।

तस्यां क्षान्तं न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥ इति ।

अत्रापि घटिकाचतुष्टयं दोषातिशयार्थम् । स्मृतिचन्द्रिकायां पुराणे—

महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यां च महाशुते ।

तथाक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्बुधः ।

माघमासस्य सप्तम्यां रथाख्यायां विवर्जयेत् ॥ इति ।

महच्छब्दस्य द्वादश्या भरण्या च सहान्वय इति धर्मप्रकाशे । महानवमी आश्विनशुक्ला । महाद्वादशी कार्तिकशुक्लद्वादशी । महाभरणी प्रौष्ठपद्यनन्तरेति तत्रैव । नारदीये—

अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः ।

अनध्यायस्तु कर्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु ॥

तथा—युगादिषु च सर्वासु तथा मन्वन्तरादिषु ।

अनध्यायं प्रकुर्वीत या च सोपपदा तिथिः ॥

मन्वन्तरादयो युगादयश्च श्राद्धमयूखे वक्ष्यन्ते । सोपपदा उक्ताः कालादर्शे—

सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आश्विने दशमी सिता ।

चतुर्थी द्वादशी माघे एताः सोपपदाः स्मृताः ॥ इति ।

यदि कदाचिदनध्यायतिथिः प्रातः सायं वा तदानध्याय इत्याह बौधायनः—'यदनध्यायतिथिर्दिमुहूर्ता परिदृश्येत तमनध्यायं प्राहुः' इति । दिनमध्ये परिदृश्येतेत्यर्थः । कालादर्शे स्मृतिः—

चातुर्मास्यद्वितीयासु वेदाध्यायं विवर्जयेत् ॥ इति ।

ता आह गार्गीः—

शुचायूजं तपस्ये च या द्वितीया विधुक्षये ।

चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ इति ।

विधुक्षयः कृष्णपक्षः । आपादयुत्तरा फाल्गुन्युत्तरा
चेत्यर्थः । इति नित्यानघ्यायाः ।

अथ नैमित्तिकेषु तात्कालिकानघ्यायानाह याज्ञवल्क्यः—

नैमित्तिका- शक्रोष्टुर्गर्भोदूकतामवाणार्चनित्वने ।
नघ्यायाः । अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके ॥
वेशेऽशुचावात्मनि च विगुत्तनितसंप्लवे ।
मुक्त्वाद्रपाणिर्मोऽन्तरर्धरात्रेऽतिमारुते ॥

तात्कालिका- पांशुवर्षे च विग्वाहे संध्यानीहारभीतिषु ।
नघ्यायाः । धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते ॥
खरोष्ठ्रयानहस्त्यन्धनौघक्षेरिणरोहणे ।
सप्तत्रिंशदनघ्यायानेतां तात्कालिकान्विदुः ॥ इति ।

धाणो वंशः । शिष्टागमनेऽहि शिष्टाह्वायां नानघ्यायः । यथाह यमः—
आगतं वाऽतिथिं दृष्ट्वा नाऽधीयीतैव बुद्धिमान् ।
अथानुज्ञापिते तस्मिन्नप्येतज्यं प्रयवतः ॥ इति ।

यानं रथादिः । इरिणमूपरं महाभूमिर्वा । याननिमित्तं शब्दादि तान-
देवानघ्याय इत्यर्थः । मनुः—

नित्यानघ्याय एव स्याद्गामेषु नगरेषु च ।
वर्मेनैपुणकामानां पूतिगन्धे च सर्वतः ॥ इति ।

धर्मस्य नैपुणं संपूर्णत्वं तत्काम्यतीति । वसिष्ठो विशेषमाह—‘नग-
रेषु कामं गोमयपर्युक्षिते परिलिरस्ने च ’ इति । हेमाद्रौ स्मृतौ—

सर्वकुत्सितगन्धे च परिवादसमासु च ।
गोविप्ररोधने सवदा.....आदपङ्क्तिषु ॥
आत्मलस्य मधूकस्य कोविदारकपित्तयोः ।
श्लेष्मातकस्य छायायां चेति तात्कालिकान्विदुः ॥

आद्धपङ्क्तिषु विहितमन्त्रभिन्नेषु आद्धभागेष्वनध्यायः । विहितमन्त्राः
आद्धमयूखे वक्ष्यन्ते ।

मनुः—शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् ।

नाधीयीताऽऽमिपं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥ इति ।

प्रौढपादः प्रसारितपादः पादारोपितपादो वा । अवसक्थिका जानु-
नोर्मध्यस्य च धन्वः । स एव—

नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा ।

वसित्वा मैथुनं वासः आद्विकं प्रतिगृह्य च ॥

न विवादे न कलहे न सेनाया न संगरे ।

न भुक्तमात्रे नाऽर्जीर्णे न वमित्वा न मुक्ते ।

शस्त्रेण च क्षते गात्रे रुधिरं च परित्यजेत् ॥

मुक्तं मुखोद्गार इति । धर्मप्रकाशे यमः—‘सामशब्दे नाथर्वयजुषी’ इति ।
नीधीयीतेत्यर्थः । आपस्तम्बः—‘शाखान्तरध्वनौ साम्नामनध्यायः’ इति ।
गौतमः । ‘अभ्रदर्शने चापतौ’ अपतौ प्रावृद्भिन्नतौ । हेमाद्रौ स्मृतिः—
‘गजगण्डसारससिंहव्याघ्रमहापापिकृतप्रावेक्षणमनध्यायः’ इति । एषां या-
वद्वेक्षणं तावदनध्याय इत्यर्थः । प्रचेताः—‘चतुष्पथवर्त्ममहापथराजोद्या-
नेषु नाधीयीत’ इति ।

शङ्खः—नाधीयीताभियुक्तोऽपि यानगो न च योगतः ।

देवायतनवल्मीकश्मशानवनसन्निधौ ॥

आपस्तम्बः—‘ब्रह्माध्यैष्यमाणो मलबद्धाससेच्छन्संभाषितुं ब्राह्मणेन
संभाष्य तथा संभाषेत ब्राह्मणेनैव संभाष्याधीयीत’ इति । यावद्ब्राह्मण-
संभाषणं न कृतं तावदनध्याय इति । गोतमः—‘वाणभेरीमृदङ्गगदार्तस्वरेषु’
इति । अनध्याय इत्यर्थः । गङ्गं शकटम् ।

तात्कालिकानुक्त्वा सज्योतिरनध्यायानाह मनुः—

प्रादुष्टतेष्वग्निषु तु विद्युस्तनितनिस्वने ।

सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषे रात्रौ यथा दिवा ॥

प्रादुष्टतेष्विति प्रातःसंध्योपलक्षणम् । सज्योतिरिति सायंसंध्यायां रात्रौ ।
पूर्वं विद्युस्तनितवर्षाणि प्रकान्तानि । तत्रोभयोरुक्तम् । शेषे वर्षे यथा दिवा
तथा रात्रौ अहोरात्रमित्यर्थः । वर्षं संध्यायामेव । अयं सज्योतिरनध्यायः

प्रावृत्काले । यथाहऽऽपैठिनसिः—‘यदा वर्षास्वेव विद्युत्स्तनितं वा तदा संज्योतिः’ इति । अवर्षासु विद्युदादौ त्रिरात्रं वक्ष्यते । इदं सायंसंध्याया हारीतेन ‘प्रातःसंध्यास्तनितेऽहोरात्रम्’ इत्युक्तत्वात् । स्मृत्यर्थसारे ‘का-
कोल्लकमूपककुक्षुदमण्डकाद्यन्तरागमनं दिने चेद्दिनान्तं रात्रौ चेन्नात्र्य-
न्तमनध्यायः’ इति । गौतमः—‘अग्निशानप्रामान्तमहापथेऽनध्यायः’ इति
इति सज्योतिरनध्यायः । अहोरात्रानध्यायमाह याज्ञवल्क्यः—

संध्यागार्जितनिर्घातभूषम्पोल्कानिपातने ।
समाप्य वेदं शुनिशमारण्यकमर्धात्य च ॥
पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके ।
अतुसंधिषु भुक्त्वा तु आद्विकं प्रतिगृह्य च ॥
पशुमण्डूकनकुलधाहिमार्जारमूपकैः ।
कुतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शकपावे तथोच्छ्रये ॥

आद्विकं प्रतिगृह्यचेति पार्षणसंयन्धि । एकोदिष्टे वक्ष्यते । नवभ्रातृ-
ऽन्नजरणपर्यन्तमनध्यायः ।

शाठातपः—‘अष्टकासु त्वहोरात्रमुल्कासु च महोत्सवे’ इति ।

गौतमः—‘सकलोपाहितवेदसमातिछर्दिआद्धमनुष्ययज्ञभोजनेऽहोरा-
त्रमिति’ । सकलोपाहितोऽन्युत्पातः । छर्दीं विशेषमाहाऽऽपस्तम्बः—
‘छर्दयित्वा स्वप्नान्ते घृतं वा प्राश्य’ इति । अर्धयित्वात्यर्थः । स्वप्नान्तं
मेहनादि । रश्मिप्रकाशे । अहोरात्रानुवृत्तौ गोमिलः—

सप्रहचारिणि सृते प्रेते भूमिपत्तावपि । इति ।

अनध्याय इत्यर्थः । गौतमः—‘ऊर्ध्वं भोजनादुत्सवे प्राधानस्य’ इति ।
अस्यार्थः । उत्सवे विवाहादावूर्ध्वं भोजनादहोरात्रमनध्यायः । प्राधानस्य
प्रथमाध्ययने अनुत्सवेऽपि भोजनादूर्ध्वमनध्याय इति ।

इत्यहोरात्रानध्यायाः ।

आकालिकानध्यायमाह मनुः—

आकालि- विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संप्रवे ।
कानध्यायः । आकालिकमनध्यायमेतेषु मनुःप्रकीर्त ॥ इति ।

विद्युदादित्रयसाहित्यमत्र ज्ञेयम् । द्वन्द्वनिर्देशादिति मेधातिथिः । प्रत्येकं
निमित्ततेति हेमाद्रिः । इदं च वर्षाकाले, तज्जिज्ञे वक्ष्यते । यस्मिन्समये नि-
मित्तं जातं तं कालमारभ्य अस्तावत्कालपर्यन्तम् । विद्युदादीनां निमित्तत्वं
संध्यायामेव । यथाऽऽह म एव—

एतास्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृतामिषु ।

तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥

एवं च ऋतावभ्रदर्शने नानध्यायः । अभ्रदर्शनेऽपि प्रादुष्कृतान्वय इति धर्मप्रकाशे । आपस्तम्बः—‘उत्कापातमन्युत्पातं च सर्वासां विद्यानामाकालिकम्’ इति । अनध्याय इत्यर्थः । हेमाद्रौः स्मृत्यन्तरे—‘अन्युत्पाते चाकालवृष्टौ चाकालिकोऽनध्यायः’ इति । अन्युत्पातश्च समानप्रामभवः । आपस्तम्बः—‘विद्युत्तनयिलुवृष्टयोऽपतौ यत्र संनिपतेयुष्यहमनध्यायो यावद्भूमिर्व्युदका इत्येके । एकेन द्वाभ्यां चैतेषामाकालम्’ इति ।

अपर्तुमाह गार्ग्यः—

अनूराधर्षमारभ्य षोडशर्षेषु भास्करः ।

यावत्प्रवर्तते तावदकालं मुनयो विदुः ॥ इति ।

एवं च मृगमारभ्य विशाखान्तं कालः । इत्याकालिकानध्यायः ।

पक्षिण्यनध्यायमाह मनुः—

पक्षिण्यन- यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां बहिः ।
ध्यायः । विरमेत्पक्षिणीं रात्रिं यद्वाप्येकमहर्निशम् ॥ इति ।

कालादर्शं मनुः—

उत्सर्गं प्रथमेऽध्याये त्वनध्यायरूपहं भवेत् ।
धारणाध्ययनादौ तु पक्षिणीं दिनमेव च ॥ इति ।

इति पक्षिण्यनध्यायः ।

त्रिदिनाऽनध्यायमाह मनुः—

त्रिदिनान- प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोदिष्टस्य केतनम् ।
ध्यायः । त्र्यहं न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ॥ इति ।

अत्र केचिन्नवधाद्धेऽन्नजरणपर्यन्तमनध्याय एकोदिष्टे तु त्र्यहमित्यनौचित्यं मन्वाना नवध्यादीयमतिपूर्वाञ्जभोजनेऽन्नजरणपर्यन्तमेकोदिष्टेषु मतिपूर्व त्र्यहमिति व्यवस्थापयन्ति । मनुचैकोदिष्टशब्देन नवध्याद्वान्यपि गृह्यन्ते । शङ्खः—‘राहुदर्शने शक्रध्वजपतने आचार्ये च मृते त्रिरात्रम्’ इति । इदं च संपूर्णग्रहे । खण्डग्रहे तु गौतमोक्तमाकालिकमनध्यायं विद्यादिति तत्रैव । विज्ञानेश्वरस्तु प्रस्तास्ते त्रिरात्रमन्यथाऽकालिकमित्याह । शक्रध्वजकालमाह गार्ग्यः—

द्वादश्यां तु सिते पक्षे मासि प्रौष्ठपदे तथा ।

.....शक्रयष्टिनिपातनम्' इति ।

पौर्णमास्यामिति केचित् । मनुः—

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षणं स्मृतम् । इति ।

याज्ञवल्क्यः—

अहं प्रेत्येव नध्यायः शिष्यास्त्रिगुरुबन्धुषु ।

विश्वामित्रः—

समाप्य वेदं त्रिदिनं वेदानध्ययनं भवेत् । इति ।

हारीतः 'आरण्यशूफरस्य अहं प्राम्यस्याहः' इति । अन्तरागमन इत्यर्थः ।
इति अहानध्यायाः ।

महागुरुनिपाते ब्राह्मणस्य द्वादशरात्रमध्ययनाविनिर्णयत्सोऽध्यनध्यायः ।

त्रिमासानध्याय उक्तो हेमाद्रौ—

अविगवयाजव्याघ्रनास्तिकादौ त्रिमासम् । इति ।

त्रिमासानध्यायः ।

षण्मासानध्याय उक्तः श्लोकगौतमेन—

षण्मासान-
ध्यायः ।

गुरुन्तेवासिनां वेदमध्येतृणां च मध्यतः ।

ययुः शशाः श्रपाकाऽजा नाभीयीतार्थत्सरम् ॥ इति ।

पूर्वमजे मासत्रयमुक्तमतोऽत्र प्रथमारम्भेऽजगमने षण्मासं श्रेयम् । संव-

वत्सरान-
ध्यायः ।

त्सरऽनध्याय उक्तो वसिष्ठेन उक्तः (स्मृत्यर्थसारे—गजसारस-
सिंहव्याघ्र-महापातकिष्कतत्रादेरुदमिति) ।

इत्यनध्यायाः ।

अथानध्यायापवादमाह मनुः—

अनध्याया-
वादः ।

वेदोपाकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ।

नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥ इति ।

नित्यस्वाध्यायो ग्रहयज्ञः । शौनकः—

नित्ये जपे च काम्ये च वेदपारायणे तथा ।

नाऽनध्यायोऽस्ति वेदानां ग्रहणे ग्राहणे स्मृतः ॥

तथा—देवतार्चनमन्त्राणां नानध्यायः स्मृतस्तथा ।

नाऽनध्याये जपेदेदानुश्रवणं विशेषतः ।

१ अथमनध्यायप्रतिकेवोऽति मन्दबुद्धिविषयः ।

पौरुषं पावमानं च गृहीतनियमादृते ॥ इति ।

यदि मयेदमपठित्वा न भोक्तव्यमिति नियमस्तदाऽध्येयमित्यर्थः ।

तथा—चतुर्दश्यष्टर्मापर्वप्रतिपत्स्वेव सर्वदा ।

दुर्मेधसामनध्यायस्त्वन्तरा गमनेषु च ।

तत्र विस्मृतिशीलानां बहुवेदप्रपाठिनाम् ॥

चतुर्दश्यष्टर्मापर्वप्रतिपद्गर्जितासु च ।

वेदाङ्गन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चाऽभ्यसेत् ॥ इति पठितम् ।

इत्यपवादाः ।

भिक्षाप्रकारमाह मनुः—

प्रतिगृहेप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम् ।

प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्भैक्षं यथाविधि ॥

भक्तपूर्वं चरेद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः ।

भक्त्यभ्यर्च्य तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदन्तिमः ॥

वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु ।

ब्राह्मचार्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥ इति ।

भक्तपूर्वमिति 'भवती भिक्षां ददातु । भिक्षां भवती ददातु । भिक्षां ददातु भवती' इति ।

व्यासः—ब्राह्मणक्षत्रियविशश्चरेयुर्भैक्षमन्वहम् ।

सजातीयगृहेष्वेव सार्ववर्णिकमेव वा ॥ इति ।

शूद्रादामं ग्राह्यं न तु पक्वम् ।

तस्मादामं ग्रहीतव्यं शूद्रादप्यद्विराग्रवीत् ।

इत्यङ्गिरःस्मृतेः ।

यस्तु वेदमधीयानः शूद्राग्रमुपजीवति ।

शूद्रो वेदफलं याति शूद्रत्वं सोऽभिगच्छति ॥

इति पराशरेण सिद्धान्तस्य निन्दितत्वाच्च एतच्चापद्विषयम् ।

चातुर्वर्ण्यं चरेद्भैक्षमालाभे कुरुनन्दन ।

इति भविष्यत्पुराणोक्तेः । मनुरपि—

सर्वं वापि चरेद्भैक्षं पूर्वोक्तानामसंभवे ।

नियम्य प्रयतो वाचमभिः शस्तांश्च वर्जयेत् ॥ इति ।

अभिः शस्तांश्च वर्जयेन्नैव पतितवर्जनं सुतरां सिद्धम् । विशेषमाह मनुः—

गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुल्यन्धुषु ।

यत्तु—मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ।

भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न निवारयेत् ॥ इति ।

तथा 'अप्रत्याख्यायिनमग्रे भिक्षेताऽप्रत्याख्यायिनीं वा' इति तदुपनय-
नाद्भिक्षापरमिति न विरोधः । एतच्च सायंप्रातः कार्यम्—'सायंप्रात-
रमत्रेण भिक्षां चरेत्' इत्यापस्तम्बोक्तेः । अमत्रे विशेषमाह हारीतः—

'लौहे मृन्मये वा पात्रे भुञ्जीत' इति । विशेषमाह मनुः—

भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकानाशी भवेद्भृती ॥ इति ।

यमः—आहारमात्रादधिकं न कचिद्भैक्षमाहरेत् ।

युज्यते स्तेयदोषेण कामतोऽधिकमाहरन् ॥ इति ।

कामत इत्युक्त्याऽज्ञानादधिकाहरणे न दोषः । अज्ञानादधिकाहरणे
आपस्तम्बः—'न चोच्छिष्टं कुर्यादशक्तौ भूमौ निखनेदप्सु वा प्रवेशयेत्' इति ।

गुरवे निवेद्यमित्याह मनुः—

गुरवे भि- समाहृत्य तु तद्वैक्षं यावदर्थममायया ।

दन्म् । निवेद्य गुरवेऽर्भियादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः ॥ इति ।

अमायया गुरुर्ग्रीहीष्यतीति भिया स्वादु न गोपनीयमित्यर्थः ।

याज्ञवल्क्यः—

कृताभिकार्यो भुञ्जीत वाग्यतो गुर्वनुज्ञया ।

अपोशानक्रियापूर्वं सकृत्सन्नमकुत्सयन् ॥ इति ।

गुरोरसंनिधौ तत्पुत्रादिभ्योऽनुज्ञा ग्राह्या । 'असंनिधौ तद्गार्वापुत्रस-
ब्रह्मचारिसद्वयः' इति गौतमस्मरणात् । आपस्तम्बः—'भुक्त्वा स्वयममन्नं
प्रक्षालयेत्' इति । तच्च भोजनमपरिमितमित्याह वसिष्ठः—

अष्टौ प्रासा मुनेर्भक्षं वानप्रस्थस्य षोडश ।

द्वात्रिंशन्तु गृहस्थस्यापरिमितं ब्रह्मचारिणः ॥ इति ।

आपस्तम्बः—आहिताग्निजड्वाञ्च ब्रह्मचारीति ते त्रयः ।

अभन्त एव सिध्यन्ति तेषां सिद्धिरनभताम् ॥ इति ।

आहिताग्नेर्वैर्हिःसमिदाहरणादेरवश्यकर्तव्यत्वाद्ब्रह्मचारिणश्च गुरुसेवाया
अवश्यकर्तव्यत्वात्तद्विरोधिशरीरनैर्केत्यापादकं काम्यव्रतादि नानुष्ठानार्ह-
मित्यर्थः । अतस्तद्वहणं दृष्टान्तार्थम् ।

इति भिक्षाटनम् ।

ग्रहचर्यावधिमाह याज्ञवल्क्यः—प्रतिवेदं ग्रहचर्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा । 'ग्रहणान्तिकमित्येके' इति ।

यावद्ब्रह्मणं स्वाधीनोच्चारणक्षमत्वं तावद्वा ।

यमः—ऋसेद्वादशवर्षाणि चतुर्विंशतिमेव वा ।

पट्त्रिंशत् वा वर्षाणि प्रतिवेदं व्रतं चरेत् ॥ इति ।

यस्तु चतुरो वेदानथ्येतुमिच्छति तस्याष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि । यथाहाऽऽ-
पस्तम्बः—'उपेतस्याचार्यकुले ब्रह्मचारिवासोऽष्टाचत्वारिंशद्वत्सरान्' इति ।
अत्र च पक्षविकल्पे अध्ययनकाल एव 'वैकल्पिकानामादितोऽवधारणम्'
इतिन्यायेनैकः पक्षः परिग्रहीतव्यः । तस्मिंश्च द्वादशवर्षपक्षादौ परिगृहीते
मध्ये गृहीतेऽपि वेदे कालः पूरयितव्य इति मेधातिथिः ।

इति ग्रहचर्यावधिः ।

द्विविधो ग्रहचारी उपकुर्वाणिको नैष्ठिकश्च । तत्र नैष्ठिकस्य विशेष
उक्तो याज्ञवल्क्येन—

ग्रहचारिणे नैष्ठिको ग्रहचारी तु वसेदाचार्यसन्निधौ ।

द्विविधम् । तदभावेऽस्य तनये फल्ग्या वैश्वानरेऽपि वा ॥ इति ।

वसिष्ठः—'संयतवाक्चतुर्थपष्टाष्टमकालभोजी भैक्षाशी गुर्वधीनो जटि-
लः शिखाजटो वा गुरुमुपासीताहूताध्यायी सर्वं लब्धं निवेद्य तदनुज्ञया
भुञ्जीत । स्रद्धाशयनदन्तप्रक्षालनाञ्जनाभ्यञ्जनवर्जी स्थानासनशीलस्त्रि-
होऽभ्युपेयादपः' इति । त्रिकालं ज्ञायादित्यर्थः । देवलेन तु सकृदवगाहनं
सकृद्भोजनमुक्तं तदशक्तपरम् । केषांचिनैष्ठिकग्रहचर्यमेवेत्याह विष्णुः—
कुम्भवासनमात्यन्धर्द्धीवपङ्क्त्यर्तारोगिणाम् ।

व्रतचर्या भवेत्तेषां यावज्जीवमनंशतः ॥ इति ।

अत्रानंशत इति हेतुं वदता दृष्टमूलत्वमुक्तम् । अतः प्रतिग्रहादिना
द्रव्यसद्भावे भक्त्येव विवाहः । दृष्टं च धृतराष्ट्रे । संप्रहेऽपि—

पङ्क्तादीनामनंशत्वादसामर्थ्याच्च शास्त्रतः ।

नियतं नैष्ठिकत्वं स्यात्कर्मस्वनधिकारतः ॥ इति ।

न चैवं सर्वनैष्ठिकविधीनां कुम्भादिपरत्वेनोपसंहारादन्येषामनधिकार
इति वाच्यम् ।

यदि त्वात्यन्तिको वासो रोचेतास्य गुरोः कुले ।

युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात् ॥

इति मनुप्रतिपादितपाक्षिकत्वविरोधात् कुंजादीनां नित्यप्राप्तेः ।
नच ब्रह्मचारिद्वैविध्यास्तत्वार आश्रमा इत्यापस्तम्बवचनाविरोधः ।

द्वितीयो नैष्ठिकश्चैव तस्मिन्नेवाश्रमे स्थितः । ।

इति दक्षेणैकाश्रमत्वोक्तेः । अस्य फलमाह याज्ञवल्क्यः—

अनेन विधिना देहं साधयन् विजितेन्द्रियः ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेहाजायते पुनः ॥ इति ।

इदं च फलं ब्रह्मविद्विषयमब्रह्मविदस्तु ब्रह्मलोकमात्रम् 'तमेव विदित्वाऽपि
मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' इति ज्ञानस्यैव मोक्षसाधनत्वो-
क्तेरिति । इति नैष्ठिकब्रह्मचर्यविधिः ।

व्रतान्युक्तान्याश्रमलायनस्मृतौ—

वेदव्रतानि । प्रथमं स्यान्महानाश्री द्वितीयं स्यान्महाव्रतम् ।
तृतीयं स्यादुपनिषद्गोदानाख्यं ततः परम् ॥ इति ।

स्मृत्यादौ गोदानस्यैव केशान्त इति संज्ञा । तत्कालमाह मनुः—
केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।

राजन्ययन्त्रोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥ इति ।
द्व्यधिके चतुर्विंशे इत्यर्थः । एवं च व्रतानां वर्षव्यवधानेनातुष्टेयत्वाद्ब्राह्म-
णस्य त्रयोदशवर्षादारभ्य व्रतानि भवन्ति । राजन्यस्योत्तविंशवर्षादारभ्य
वैश्यस्यैकविंशवारभ्येति । एषु च व्रतेषु चौलवत्कालनिर्णयः । तदुक्तं
श्रीधरीये—

तिथिनिक्षत्रवारांशवर्गोदयनिरीक्षणम् ।

चौलवत्सर्वमाख्यातं सगोदानव्रतेषु च ॥ इति ।

तैत्तिरीयाणां नामभेदः—प्राजापत्यं सौम्यमाग्नेयं वैश्वदेवमिति । तेषु
च व्रतेषु दण्डादीनाह पराशरः—

यद्यस्य विहितं कर्म यत्सूत्रं या च मेखला ।
यो दण्डो यच्च वसनं तत्तदस्य व्रतेष्वपि ॥ इति ।

स्वकाले व्रतलोपे प्रायश्चित्तमाहात्रिः—

ब्रह्मलोप-
यश्चित्तम् ।

पिता भ्राता परो वापि प्राजापत्यत्रयं चरेत् । इति ।
वटोरशकौ पित्रादीनामनुष्ठानम् । शकौ तु तेनैव कार्यम् ।

यथाह शौनकः—

प्रत्येकं कृच्छ्रमेकैकं चरित्वाऽऽज्याहुतीः शतम् ।
हुत्वा चैव तु गायत्र्या स्नायादित्याह शौनकः ॥ इति ।

अत्र प्रायश्चित्ते स्नानसमानकर्तृकत्वश्रवणाद्वटोरेव कर्तृत्वम् । प्रायश्चित्तो-
त्तरकालमेतानि समावर्तनेन सह कर्तव्यानीति प्रयोगपारिजाते । तत्र
मूलं मृग्यम् । इति व्रतलोपप्रायश्चित्तम् ।

अथाश्रमविकल्पसमुच्चयौ । समुच्चयस्तावदादित्यपुराणे—

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ।

अश्रमत्तेन मनसा मा गाः पुत्र कुवर्त्मना ॥ इति ।

मनुरपि—ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ।

एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥

सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निपेविताः ।

यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥ इति ।

गृहस्थप्रभवा गृहस्थोपजीविनः । अश्वस्तनव्रतादीनां गृहस्थानामपि
गृहस्थोपजीवित्वाश्चतुर्णां ग्रहणम् । क्रमश इति प्रातिलोभ्यं नाभीष्टम् ।
तथा च दक्षः—

त्रयाणामानुलोभ्यं स्यात्प्रातिलोभ्यं न विद्यते ।

प्रातिलोभ्येन यो याति न तस्मात्पापकृत्तरः ॥

त्रयाणामिति ब्रह्मचर्योत्तरेषां ग्रहणम् । तस्यावश्यकत्वादित्यर्थः । मनु-
विशेषमाह—

चतुर्थमायुषो भागं वसित्वाद्यं गुरोः कुले ।

द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।

चतुर्थमायुषो भागं लब्ध्वा सद्धान्परिव्रजेत् ॥ इति ।

अत्र 'शतायुर्वै पुरुषः' इति श्रुतेः पञ्चविंशतिवर्षपर्यन्तमेकैकस्मिन्नाश्रमे-
ऽवस्थातव्यमिति निबन्धकृतः । एवं क्रमे स्थिते यदापस्तम्येनोक्तम् 'चत्वार
आश्रमा गार्हस्थ्यमाचार्यकुले वासो मौनं वानप्रस्थम्' इति तत्रोद्देशमात्रे
तात्पर्यं न क्रमे । आश्रमसमुच्चयस्य फलमाह हारीतः—

अनेन विभिन्ना यो हि आश्रमानुपसेवते ।

स सर्वलोकाभिर्जित्य ब्रह्मलोकाय कल्पते ॥ इति ।

विरुत्प उक्तो जाबालश्रुतौ 'यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्ब्रह्मा
वनाद्वा' इति । भविष्यत्पुराणेऽपि—

गार्हस्थ्यमिच्छन् भूषाल कुर्यादारपरिमहम् ।

समावर्तनम् ।

ब्रह्मचर्येण वा कालं नयेत्संकल्पपूर्वकम् ।
वैखानसो वापि भवेत्परिव्राड्यवेच्छया ॥ इति ।

वसिष्ठेन गार्हस्थ्यस्य स्तुतिरुक्ता—

गृहस्थ एव प्रव्रजेद्गृहस्थः स्तूयते यतः ।
चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थस्तु विशिष्यते ॥

गार्हस्थ्यस्तुतिः ।

सर्वेषामपि वै तेषां वेदस्मृतिविधानतः ।

गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्विभर्ति हि ॥ इति ।

ततश्चैवमुक्तम् । प्रथमं ब्रह्मचर्यमावश्यकम् । ततो यदि तत्रैव रुचि-
स्ततो ब्रह्मचर्येणैव यावज्जीवं तिष्ठेत् । यदि न रुचिस्ततो गृही बनी यती
चा भवेदिति । ततो गार्हस्थ्येनैवायुः क्षप्येद्दुनाश्रमेण वा यत्नाश्रमेण ।
तथाश्रमचतुष्टयं विप्रादिवर्णत्रयस्य 'त्रयाणां वर्णानां चत्वार आश्रमाः'
इति कठसूत्रात् । एवम्—

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ।

इतिमनुवाक्ये ब्राह्मणग्रहणं द्विजोपलक्षणमिति धर्मप्रकाशे पि-
तामहचरणाः । श्रुतिगतेषु सर्वेषु 'ब्राह्मणो निर्वैवमायात्' इत्या-
दिसंन्यासविधिषु ब्राह्मणग्रहणात्तस्य च स्मृत्यनुरोधेनोपलक्षणत्वे
प्रमाणाभावात्, प्रत्यक्षश्रुतिविरुद्धा काचित्स्मृतिरप्रमाणम् जायनीभिः
पत्नीः संयाजयन्तीतिवत् ? । अथवा क्षत्रियादीनां संन्यासश्रवणं विद्वत्सं-
न्यासपरमिति शंकराचार्यादीनामाशयः । इत्याश्रमविकल्पसमुच्चयौ ।

समावर्तनम् ।

ज्ञानमाह याज्ञवल्क्यः—

गुरुवे तु वरं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया ।
वेदं व्रतानि वा पारं नीत्वा हुभयमेव वा ॥ इति ।

वरं गुरुतोपकारिणीं दक्षिणाम् । संग्रहकारो विशेषमाह—

आहरिष्यामि किं तेऽर्थं भक्तो वचनादिह ।
त्वयोक्तं हि करिष्यामि कृतार्थः स्यां गृहेण तु ॥ इति ।
तेनोक्तं च तथा कृत्वा ज्ञानं शिष्यः समाचरेत् ।
अल्पमर्थेन मे वत्स त्वद्रूपैरस्मि तोषितः ॥
'गृहाय त्वानुजानामि'

इत्यनुज्ञापर्यन्तं कार्यम् । तथा चोक्तं कूर्मपुराणे—
वेदं वेदौ तथा वेदान्वेदान्वा चतुरो द्विजः ।

अधीत्य चाधिगम्यार्थं ततः स्नायाद्विजोत्तमः ॥ इति

इदं च विस्तरतो भट्टपादैः 'अथातो धर्मजिज्ञासा' इत्यस्मिन्सूत्रे प्रपञ्चितमिति नेह प्रपञ्चितम् । दक्षिणा च गुरुतोषार्था न तु मूल्यरूपा । विद्याया मूल्याभावात् । तथाच तापिनी श्रुतिः—

सप्तद्वीपवती भूमिर्दक्षिणार्थं न कल्पते । इति ।

छन्दोगश्रुतिरपि—'यद्यप्यस्मा इलामग्निः परिगृहीतां धनेन पूर्णा दद्या-
देतदेव ततो भूय इति' । एतद्विद्याग्रहणम् । हारीतोऽपि—

एकमप्यक्षरं यत्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ।

पृथिव्यां नास्ति तद्रूपं यद्वत्त्वाऽप्यनृणो भवेत् ॥ इति ।

यद्यप्येवं तथापि देयमाह मनुः—

स्नात्यंस्तु गुरुणाऽऽज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत् ।

क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमासनम् ।

धान्यं वासांसि शाकां वा गुरवे प्रीतिमावहन् । इति ।

आश्वलायन उपकल्पद्रव्याण्याह—'अथैतान्युपकल्पयित समावर्त्य-
मानो मणिं कुण्डले वस्त्रयुगं छत्रमुपानगुगं दण्डं स्रजमुन्मर्दनमनुलेपनमा-
ञ्जनमुष्णीपमित्यात्मने चाचार्याय च यशुभयोर्न विन्देताऽऽचार्यायैव' ।
इति । करञ्जफलं पेपयित्वा तेनोद्धर्तनमुन्मर्दनमिति वृत्तौ । इदं च स्वक-
र्तृकं 'समावर्त्यमानः' इतिसूत्रात् । एवं च तदङ्गभूतं नान्दीश्राद्धं स्वय-
मेव कार्यम् । शौनकः—

कुर्वीत स्वयमेवेदं कर्माऽऽचार्यानपेक्षतः ।

विद्यायाभ्युदयश्राद्धं पूर्वगुरपरेऽहिं वा ॥ इति ।

अत्र हि त्वार्थल्यप्ययोगात्समानकर्तृकता गम्यते । अत्र कालनिर्णयश्चौ-
लब्धः । उक्तं च शौनकेन—

गोदानेनातिदिष्टत्वात्कर्मणोऽस्योत्तरायणम् ।

पूर्वपक्षादियोगं च प्रतीक्ष्य ह्येतदाचरेत् ॥ इति ।

स्नातकधर्मा उक्ताः कूर्मपुराणे—

यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमण्डलुम् ।

छत्रं चोष्णीपममलं पादुके चाप्युपानहौ ॥

भार्येदिति शेषः । आश्वलायनः—'तस्यैतानि व्रतानि भवन्ति न नक्तं

नायात्र नम्रः स्वायात्र जमः शयीत न नम्रां स्त्रियमीक्षेतान्यत्र मैथुनाद्-
रति न धावेत्त वृक्षमारोहेन कूपमवरोहेन वाहुभ्यां नदीं तरेन संदाय-
मयापयेत्' इति । याज्ञवल्क्यः—

न स्वाध्यायविरोधार्थमीहेत न यतस्ततः ।

न विरुद्धप्रसङ्गेन संतोषी च भवेत्सदा ॥

स्वाध्यायो वेदस्ताद्विरुद्धं तन्नाशकारकमित्यर्थः । विरुद्धप्रसङ्गो शूतादिः ।

तथा—राजान्तेवासियाज्येभ्यः सीदन्निच्छेद्वनं क्षुवा ।

दम्भिहेतुकपातयण्डिकवृत्तींश्च वर्जयेत् ॥

आपदि गृहीयादित्यर्थः । दम्भी द्रव्यार्थं कर्मलिङ्गधारी न भद्रया । हे-
तुकः सर्वत्र हेतुभिः संशयोत्पादकः । पाखण्डी अस्थिमालादिनिरुद्धवेपधारी ।
वक्रवृत्तिरधोवृष्टिर्नैकृतिकः स्वार्थसाधन उत्तरः 'शठो मिथ्याविनीतश्च वक्र-
वृत्ति रुदाहृतः' इति मन्त्रेः ।

शुक्लाम्बरधरो नीचकेशश्मश्रुनखः शुचिः ।

न भार्यादर्शनेऽभीयात्रैकवासा न संस्मृतः ॥

न संशयं प्रपद्येत नावस्मादप्रियं वदेत् ।

नाहितं नानृतं चैव न स्तेनः स्यान्न वार्ष्णेयी ॥

भार्ष्णेयी निषिद्धवृद्धपुण्यजीवी ।

पाश्चायणी प्रश्नसूत्री येषुमान्सकमण्डलः ।

कुर्यात्प्रदक्षिणं देवं मृदोविप्रवनस्पर्तान् ॥

न तु मेहेनदीप्रायावर्त्मगोप्राप्सुमससु ।

न प्रत्यय्यर्कगोसोमस्तंभ्यामनुस्त्रीद्विजन्मतः ॥

नेक्षेत्तार्क न नम्रां स्त्री न च संस्पृष्टमैथुनात् ।

न च मूर्धं पुरीषं वा नाङ्गुली राहुतारकाः ॥

अयं मे वज्र इत्येवं सर्वं मन्त्रमुर्वीरयन् ।

वर्षत्यप्रावृतो गच्छेत्स्वपेटस्त्यक्शिरा न च ॥

'अयं मे वज्रः पापघ्नमपहन्तु' इतिमन्त्रः । गच्छेत्त भावेत् ।

घोबनाऽसृक्शङ्कन्मूत्ररेतास्यम्भु न निक्षिपेत् ।

पादौ प्रतापयेत्प्रागौ न चैनमतिलङ्घयेत् ॥

जलं पिवेन्नाञ्जलिना न शयानं प्रबोधयेत् ।

नाक्षैः क्रीडेन्न धर्मत्रैर्व्याधितैर्वा न संविशेत् ॥ इति ।

जलमिति पेयमात्रोपलक्षणम् । 'नाञ्जलिना पिवेत्' इति गौतमेन पेयविशेषानुपादानादिति कश्चित्तत्र । सामान्यस्यापि गौतमीयस्य विशेषेण याज्ञवल्क्येनोपसंहर्तुं शक्यत्वात् । अतो जलमेवं न पेयमात्रमिति । शयानं श्रेष्ठं न प्रबोधयेदिति ।

नैकः स्वप्याच्छून्यगृहे श्रेयांसं न प्रबोधयेत् । इति मनुक्तेः ।

विरुद्धं वर्जयेत्कर्म प्रेतधूमं नदीतरम् ।

केशभस्मतुपाङ्गारकपालेषु च संस्थितिम् ॥

विरुद्धं जनपदकुलविरुद्धम् । नदीतरणं बाहुभ्याम् । अत उडुपादिना पारगमने न दोषः । नदीमिति तडागाशुपलक्षणमिति कश्चित् । तत्र प्रमाणं मृग्यम् । यदि परं मीमांसाभिज्ञः सन् 'उद्देश्यविशेषणमविवक्षितम्' इति नीत्या नदीप्रहणमविवक्षितमेवं जलप्रहणमिति यदि मन्यसे तर्हि श्रेयांस-मिति विशेषणविवक्षोद्देशौ किमिति मूकोऽसि । एवं 'न ब्राह्मणं हन्यात्' इत्यत्राप्यतिप्रसङ्गः ।

नाचक्षीत धयन्तीं गां नाऽद्वारेण विशेषेत्कचित् ।

न राज्ञः प्रतिगृहीयात्सुखस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥

परस्य क्षीरादि धयन्तीं गां तस्मै नाचक्षीत । यद्वा क्त्वं धापयन्तीम् । अन्तर्भावितण्यन्ताच्छतृप्रत्ययः । न विनिवर्तयेदपि ।

न वारयेद्वां धयन्तीं न वाचक्षीत कस्यचित् । इति मनुक्तेः ।

प्रतिमहे सृनिचक्रिष्वजिवेश्यानराधिपाः ।

दुष्टा दशगुणं पूर्वात्पूर्वादेते यथाक्रमम् ॥

सूनी हिंसाशीलः । चक्री तिलपीडकः । ध्वजी सुराचक्रेण जीवी ।

देवर्त्तिकृन्नातकाचार्यराज्ञां छायां परस्त्रियाः ।

नाक्रामेद्रक्षविष्मूत्रघ्नीवनोद्वर्तनानि च ॥

विप्रादिक्षत्रियात्मानो नावज्ञेयाः कथंचन ।

आ मृत्योः श्रियमाकाङ्क्षेन्न कंचिन्मर्माणि स्पृशेत् ।

दूरादुच्छिष्टविष्मूत्रपादान्भांसि समुत्सृजेत् ॥

पादाभः पादप्रक्षालनोदकम् ।

श्रुतिस्पृत्युदितं कर्म नित्यं सम्यक् समाचरेत् ।

गोप्राक्षणानलानानि नोच्छिष्टे न पद्म स्पृशेत् ।

न निन्दाताडने कुर्यात्पुत्रं शिष्यं च ताडयेत् ॥

कथं तर्हि कवले गृहीते उच्छिष्टेन पुनः पात्रस्थं स्पृश्यते । भोजनार्थं
पात्रस्थे न दोष इति शिष्टकिमनाभावात्कल्प्यते ।

कर्मणा मनसा वाचा यन्नाद्धर्मं समाचरेत् ।

अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु ॥

अभ्यनुज्ञातमपि भोजनावशिष्टमांसभक्षणादिकं लोकविद्विष्टमत एवास्व-
र्ग्यं नाचरेत् । धर्मपदेनापिना योगान्न स्वार्थं तात्पर्यम् । केचित्स्विदानीत-
नानां मधुपर्कं पशुवधानाचरणादीनामेतद्वचनमूलकत्वमिति वदन्ति तन्न,
कलिनिपिद्धत्वेनैवानाचरणात् विधिविहितबाधकत्वायोगाच्च ।

मातृपित्रतिथिभ्रातृजामिसंगन्धिमातुलैः ।

वृद्धवालातुराचार्यैर्वैद्यसंश्रितबान्धवैः ॥

ऋत्विक्पुरोहितापत्यभार्यादाससनाभिभिः ।

विवादं वर्जयित्वा तु सर्वालोकाजयेद्वृही ॥

पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिणि ।

स्नायान्नदीदेवखातहृदप्रस्रवणेपु च ॥

परवार्यनुत्सृष्टोदकम् ।

परश्व्यासनोद्यानगृह्यानानि वर्जयेत् ।

अदत्तान्यग्निहीनस्य नाश्रमस्यादनापदि ॥

अदत्तान्यननुज्ञातानीति ग्रन्थकृतः ॥

कदर्ययद्धचौराणां छीवरङ्गावतारिणाम् ।

वैणाभिश्चस्तवार्धुष्याणिकाराणदीक्षिणाम् ॥

चिक्किस्तकातुरम्बुपुंश्चलीमत्तविद्विषाम् ।

कूरोग्रपवितप्रात्यदाम्भिकोच्छिष्टभोजिणाम् ॥

अवीरास्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजितप्रामयाजिणाम् ।

शस्त्रविक्रयिकर्मारस्तनुवायश्चवृत्तिनाम् ॥

नृशंसराजरजकृतप्रवधजीविणाम् ।

चैलधावसुराजीवसहोपपतिवेश्मनाम् ॥

पिशुनानुतिनोश्चैव तथा चाक्रियन्दिनाम् ।

एषामन्नं न भोक्तव्यं सोमविक्रयिणस्तथा ॥

कदर्य-आलानं धर्मकृत्यं च पुत्रान्दाराश्च पीडयेत् ।

लोभाद्यः पितरौ मृत्यान् स कदर्य इति स्मृतः ॥

इति लक्षितः । वैणो वेणुच्छेदनजीवी । वीणावादनजीवीति केचित् ।
गणदीक्षी बहुयाजकः । पराशरस्मृतिव्याख्याने तु गणान्नं दीक्षी दीक्षित-
स्तस्य चेति व्याख्यातम् । गणान्नं च बहुनामेकपात्रे पकं तदुच्यते ।
दीक्षितान्ननिषेधश्चाग्नीषोनीयशुसंस्थापर्यन्तं क्रीतराजको भोज्यान्न इत्य-
स्याप्रामाण्यादिति भाष्यकृतः । आचार्यास्तु वदन्ति । उभयोरपि
श्रुतित्वाविशेषेणावाधानाप्रामाण्यम् । तदुक्तम्—

क्रीतराजकभोज्यान्नवाक्यं चार्थवैदिकम् ।

न च तस्याप्रमाणत्वे किञ्चिदप्यस्ति कारणम् ॥ इति ।

तथोभयोर्विषयोऽपि प्रदर्शितः—

आपद्धर्मा यथैवान्ये मुख्यासंभवहेतुकाः ।

तथैव प्राणपीडायां क्रीतराजकभोजनम् ॥

सामान्येनाभ्यनुज्ञाताद्विशेषश्च विशिष्यते ।

विशेषोऽत्यन्तनिर्दोषः स्तोकदोषेतरक्रियाः ॥ इति ।

प्रपञ्चितं चैतद्वार्तिककारैरिति काठिन्यभिया नेह विस्तरेण प्रपञ्चितम् ।
अवीरा पतिपुत्ररहिता । कर्मारो लोहकारः । तन्तुवायः सूचिशिल्पोपजी-
वी । श्ववृत्तिः श्वभिः वृत्तं जीवनमस्यास्तीति श्ववृत्तिः । राजा पुरोहितश्च
' राजपुरोहितान्नानि वर्जयेत् ' इति शङ्खस्मृतेः । कदर्यादयश्च द्विजातय
एव । शूद्राणां वक्ष्यमाणदासादिव्यतिरेकेणाभोज्यान्नत्वात्—

शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्थसारीणः ।

भोज्यान्ना नापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥ इति ।

अर्थसारी कृषिकृशभागग्राही । अहं त्वदेकाश्रित इति यो निवेद-
नमात्मनः करोति । ' शूद्रादीनां भोज्यान्नत्वमापद्विषयम् ' इति हरदत्तः ।
चतुर्विंशतिटीकायां तु—

कन्दुपकं शूलयत्पकं पायसं दधिसक्तवः ।

एतानि शूद्राद्वाह्याणि भोज्यानि मनुरग्रवीत् ॥

इतिवचनोपात्तपरमिति । शूले यत्पकंमस्पृष्टमित्यर्थः । परं तु कलावेतेषां
भोज्यान्नत्वनिषेधान्नातीव परिच्छेदोऽस्माभिः क्रियते । कैलिवर्ज्यानि च
समयमयूखे दर्शयिष्यामः । माधवीये मार्कण्डेयः—

न म्लेच्छभाषां शिक्षेत् न पश्येदात्मनः शकृत् ।

वर्जयेन्मार्जनीरेणुं नापेयं च पिबेद्विजः ॥ इति ।

अपेयं काञ्चिकादि । मनुः—

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याऽभिजनस्य च ।

[येपेवागुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह ॥

नित्यं शास्त्राण्येक्षेत नियमांश्चैव वैदिकान् ।

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यन्तं कदाचन ॥]

नोपरकं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ।

न लङ्घयेद्वत्सतन्त्रीं न प्रधावेष्ट वर्पति ॥

वत्सतन्त्रीं वत्सप्रहणं च गोत्वजातेरुपलक्षणमिति
हरदत्तः ।

न चोदके निरीक्षेत स्वं रूपमिति धारणा ।

नाभीयाङ्गार्यया सार्धं नैनामीक्षेत वाभ्रतम् ॥

क्षुवन्तीं जृम्भमाणां वा न चासीनां यथासुखम् ।

नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्षत्रमनायुताम् ॥

नाभ्रमद्यादेकवासा न नमः स्नानमाचरेत् ।

न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोत्रजे ॥

न फालकृष्टे न जले न चित्पां न च पर्वते ।

नोदक्ययाऽभिधापेत यज्ञं गच्छेन्न चायुतः ॥

अवृत्तो यजमानेनानाकारितो लोभात् गच्छेत् । श्रुं तु कामं गच्छेत् । 4

‘ न यज्ञमवृत्तो गच्छेद्दर्शनाय तु कामम् ’ इति गौतमोक्तः ।

स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ।

न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद् बुधः ॥

न भुञ्जीतोदृतस्नेहं नाविसौहित्यमाचरेत् ।

भनेन चोदृतस्नेहतक्रादिभोजनमनाचारः । यत्तु तक्रादिभिन्नपिण्या
कादिपरत्वं कल्पयन्ति न तत्र किञ्चिन्मूलम् । सौहित्यमत्यशनम् ।

न मृत्येदयवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् ।

न पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचिदपि भाजने ॥

न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत न भावप्रतिदूषिते ।

उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥

छपनीतमलंकारं स्पर्जं करकमेव च ।

वालातपः प्रेतधूमो वर्ज्यं भिन्नं तथासनम् ॥

वालातपः शरत्कालातपः । सङ्गवातप इत्यन्ये ।
 न कर्म निष्फलं कुर्यान्नायत्यामसुखोदयम् ।
 गवां पृष्ठेन यानं तु सर्वथैव विगर्हितम् ॥
 रथादियोगे त्वीपद्विगर्हितमिति ज्ञेयम् ।
 रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत् ।
 सर्वं च तिलसंबद्धं नाद्यादस्तमयं प्रति ॥
 आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ।
 न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविःकृतम् ॥
 अयं च साक्षादुपदेशनिषेधः ।

आवयेच्चतुरो वर्णान्कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ।
 इतिकरणे तु न दोषः । उच्छिष्टं भुक्तावशिष्टं न दद्यात् । शूद्रस्य
 गौतमेनोच्छिष्टाशनं शिल्पवृत्तिश्चेत्युच्छिष्टाशनस्याभ्यनुज्ञानात् दोषः ।
 दातुस्तु भवत्येव । एवं च यदि प्रत्यवायमङ्गीकृत्योच्छिष्टं ददाति तदा
 तेन भक्षणीयम् । यथा कुरुक्षेत्रादौ दातुरभ्युदयः प्रतिग्रहीतुर्वीर्य एवग्राम-
 पीति केचित् । सांप्रदायिकास्तु उच्छिष्टवानप्रतिषेधो गृहस्थशूद्रविषयः ।
 तद्विज्ञाय तु वेद्यम् । तथाच व्याघ्रः—

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं शूद्रायाऽगृहमेधिने ।
 गृहस्थाय तु दातव्यमनुच्छिष्टं दिने दिने ॥ इति ।
 न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ।
 धर्मं धर्मशास्त्रम् । पूर्वनिषेधस्तु दण्डनीतिविषय इति व्याख्यातारः ।
 न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेतात्मनः शिरः ।
 न स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नायाद्विना ततः ॥
 एतत् शिरः । इदं च शिरःस्नानं शक्तस्य ।
 न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ।
 भोजनोत्तरं स्नानस्य निषेधो रागप्राप्तस्य ।
 भद्रं भद्रमिति यूयाद्भद्रमित्येव वा वेदेन ।
 शुष्मैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह ॥
 शुष्कं फलशून्यम् । एवं विवादोऽपि ।
 नाऽप्रातेन समं गच्छेन्नैको न वृष्टैः सह ।
 अनातुरः स्थानि स्थानि न स्पृशेदनिमित्ततः ॥
 स्थानि छिद्राणि ।

रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत् ।
 प्रतिग्रहस्मर्योऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत् ॥
 न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत् ।
 यमान्सेवेत नियतं नित्यं च नियमान्वुवः ॥
 आनृशंस्यं क्षमा सत्यमर्हिता दममष्टहा ।
 ध्यानं प्रसादो माधुर्यमार्जवं च यमा दश ॥
 शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः ।
 व्रतोपवासौ मौनं च स्नानं च नियमा दश ॥
 नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानभ्राद्धिनस्तथा ।

अभ्राद्धिनः श्रद्धारहितस्य ।

आदर्शताऽऽममेवास्मादवृत्तावैकरात्रकम् ।
 उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं संवन्वानाचरेत्सदा ॥
 तिनीषुः कुलमुत्कर्षमवमानधर्मास्त्यजेत् ।
 गुरुभृत्यांश्चोजिहीर्षन्नाधिप्यन्वेकतातिथीन् ॥
 सर्वतः प्रतिगृहीयाञ्च तु मृप्येत्स्वयं तदः ।
 येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ॥
 तेन यायात्सतां मार्गमेवं गच्छंस्तरिष्यन्ति ।
 एषोदिता गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य क्षात्रकी ।
 स्नातकव्रतफलपथं सत्यवृत्तिरुः शुभः ॥ इति ।

अत्र 'स्वर्गायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत्' इत्युपक्रमात्,
 'स्नातकव्रतकल्पश्च सत्यवृत्तिरुः शुभः' इत्युपसंहाराच्च भव्येष्टुतानां नबा-
 मुपपदेनान्वयात्पुंदासा अङ्गीक्रियन्ते । तदुक्तं भगवता जैमिनिना--'तदु-
 त्सरं कर्माणि पुरुषार्थाव' इति ।

तथा--उपक्रमे श्रुतं कर्मवाचि व्रतपदं यतः ।

तदन्वयशलात्कर्मविशेषोऽतोऽत्र चोच्यते ॥
 तेन लक्षणयाप्यत्र पुरुंदासः स च ऋतोः ।
 बहिःश्रुतः फलाफाङ्गी पुरुषार्थत्वमुच्छति ॥ इति ।

संकल्प एव चात्र लक्ष्यते । उदाहृता च तन्त्ररत्ने स्मृतिः--

त्रिसन्ध्यं जप्ता तेन सावित्री नेक्ष इत्ययम् ।

आदित्यं व्यायता कार्यः संकल्पः पापनाशनः ॥ इति ।

विस्तरस्तु तन्त्ररत्नादौ द्रष्टव्यो दुर्गमत्वभिया नेह प्रपञ्चितः । अन्ये च स्नातकधर्मा मानवगौतमीयादिशास्त्रे द्रष्टव्याः । विस्तरभयात्तु नेह प्रपञ्चिताः ।

इति स्नातकधर्मप्रकरणम् ।

स्नातकभेदा उक्ता गोभिलेन—

‘विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकश्च’ इति । विद्यामे-
 स्नातक- वाधीत्य स्नानं कृतवानिति विद्यास्नातकः । व्रतान्येव कृत्वा
 भेदाः । स्नानं कृतवानिति व्रतस्नातकः । विद्यामधीत्य व्रतानि कृत्वा
 च यः स्नाति स उभयस्नातकः । तेषामन्त्यः श्रेष्ठः । उभौ तुल्यौ ।

इति स्नातकभेदाः ।

विवाहप्रकरणम् ।

उपकुर्वाणस्य गार्हस्थ्यं कर्तुं विवाह उक्तो याज्ञवल्क्येन—

अविप्लुतप्रज्ञचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वेष्ट ।
 कन्यालक्ष- अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ।
 णानि । अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्पणोत्रजाम् ॥ इति ।
 अस्यार्थः । लक्षण्यां बाह्याभ्यन्तरलक्षणैर्युक्ताम् । बाह्यानि मनु-

नोक्तानि—

अन्यद्वाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणरामिनीम् ।
 तनुलोमकेशदशनां मृदङ्गीमुद्वेष्टेतिष्यम् ॥ इति ।

वर्ज्या आह स एव—

नोद्वेष्टकपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ॥
 वर्ज्यकन्याः । नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
 न पक्ष्यहिरेष्यनाम्नीं न विभीषणनामिकाम् ॥ इति ।

विष्णुपुराणे—

॥ श्मश्रुव्यञ्जनवर्ती न चैव पुरुषाकृतिम् ।
 न धर्मस्वरां क्षामां तथा काकस्वरां न च ।
 नानिधद्वेक्षणां तद्वदृत्ताक्षां नोद्वेष्ट बुधः ॥
 अनियद्वेक्षणां मनोनुरञ्जनेक्षणादिताम् ।

यस्याश्च रोमशे अङ्गे गुल्फौ यस्यास्तथोन्नतौ ।
गण्डयोः कूपकौ यस्या हसन्त्यास्तां च नोद्वहेत् ॥
नातिरक्तच्छर्वि पाण्डुकस्त्रजामरुणक्षणाम् ।
आशीनहस्तपादां च न कन्यामुद्वहेद् बुधः ॥
न वामनीं नातिदीर्घां नोद्वहेत्संगतध्रुवम् ।
नचातिच्छिद्रदशनां न करालमुखी नरः ॥ इति ।

आभ्यन्तराण्युक्तान्याश्रयायेन—‘अष्टौ पिण्डान्कृत्वा ऋतममे प्रथमं
अक्ष ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम् । यदियं कुमार्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यतां
यत्सत्यं तदृश्यतामिति पिण्डानभिमन्त्र्य कुमारी द्यूयादेयामेकं गृह्णाणेति
क्षेत्राघेदुभयतः सस्याद्रुहीयादन्नवत्यस्याः प्रजा भविष्यतीति विद्या-
द्रोष्ठात्पशुमती वेदिपुरीषाद्ब्रह्मवर्चस्विन्यविदासिनो ह्वात्सर्वसंपन्ना देव-
नाक्तितर्वा चतुष्पथाद्विप्रत्राजिनीरिणादधन्या श्मशानात्पतिप्री ’ इति ।
देवनं द्यूतम् । ईरिणामूखरम् । न अन्यः पूर्वं यस्याः साऽनन्यपूर्विका ।
दानेनोपभोगेन वा । कान्तां मनोनयनानन्दकारिणीम् । यथोक्तमापस्त-
म्बेन—‘यस्यां मनश्चक्षुषोर्निवन्धस्तस्यामृद्धिः ’ इति । इयं च परीक्षा
कुलपरीक्षोत्तरं कार्या ‘ कुलप्रमे परीक्षेत ’ इत्याश्रयायनस्मृतेः ।

मनुः—उत्तमैरुत्तमो नित्यं संवन्धानाचरेत्सदा । इति ।

उत्तमानाह ॥ एव—

विशुद्धाः कर्मभिश्चैव तेया श्रुतिनिर्दिष्टैः ।

उत्तमा वंशाः । अविप्लुतब्रह्मचर्या महाकुलसमन्विताः ।

अक्रोधनाः सुप्रसादाः कार्याः संवन्धिनः सदा ॥

नीचानाह स एव—

ये स्तेनाः पिशुनाः क्लीबा ये च नास्तिकवृत्तयः ।

अपमा वंशाः । विकर्मणा च जीवन्तो विकृताकृतयस्तथा ॥

प्रवद्वचैराः शूरैर्ये राजकित्तिपिणस्तथा ।

ब्रह्मवादननिन्द्याश्च कदर्याश्च विगर्हिताः ॥

अप्रजा येषु वंशेषु र्क्षाप्रजाप्रसवास्तथा ।

पतित्रयश्च सुवासिन्यस्ताश्च यत्नेन वर्जयेत् ॥ तान् वंशान् ।

महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः ।

स्त्रीसंज्ञे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥
हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्चन्दो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिन्धित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥

तथा—कुविवाहैः क्रियालोपैर्वैदानध्ययनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥
शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केवलैः ।
गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया ॥
अयाज्ययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्मणा ।
कुलान्यकुलतां यान्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ॥ इति ।

विष्णुः—अथ पित्रा परीक्षेत मात्रा कन्या परीक्षयेत् ।
कृष्या भूमिं परीक्षेत आचारेण कुलं तथा ॥ इति ।

नारदेन कन्यालक्षणान्युक्तानि—

नारदोक्तकन्या-
लक्षणानि । पूर्णचन्द्रमुखी कन्या बालसूर्यसमप्रभा ।
विशालनेत्रा रक्तोष्ठी सा कन्या लभते सुखम् ॥
अङ्गुष्ठं कुण्डलं चक्रं यस्याः पाणितले भवेत् ।
पुत्रं प्रसूते सा नारी नरेन्द्रं लभते सुतम् ॥
यस्याः पाणितले रेखा प्राकारं तोरणं तथा ।
अपि दासकुले जाता राजपत्नी भविष्यति ॥
यस्याः संकुचिताः केशा मुखं च परिमण्डलम् ।
नाभिश्च दक्षिणावर्ता सा नारी प्रियभागभवेत् ॥
दीर्घाङ्गुली च या नारी दीर्घकेशा च या भवेत् ।
दीर्घमायुरवाप्नोति धनधान्यविवर्धिनी ॥ इति ।

अन्यान्यपि सामुद्रिकलक्षणानि तद्वन्थतोऽवगन्तव्यानि । विस्तरभ-
यान्नेह लिख्यन्ते ।

असपिण्डमिति । अत्र केचित्—

सापिण्डम् । लेपभाजश्चतुर्थीद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः ।
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ॥

इति मात्स्यास्तप्तपुरुषपर्यवसायिनी सपिण्डता । तथा च देवदत्तस्य
पियादिभिः पद्भिः सापिण्ड्यं पुत्रादिभिश्च पद्भिरिति । साप्तपौरुषमिति
सप्तपुरुषानभिव्याप्येत्यर्थः इत्याहुः । नन्वेवं भगिन्यादिभिः सापिण्ड्यं न

यात् । अत्र समादधिरे माधवाचार्याः—‘उद्देश्यदेवतात्वेन सापिण्ड्यानि-
र्वाहः’ इति । तथाच देवदत्तकर्तृके आदौ भगिन्यादीनामप्युद्देश्यत्वाच्चास्त्ये-
व सापिण्ड्यम् । तथा सति महालयादिआदौ गुरुशिश्यादीनामपि सापिण्ड्यं
स्यात् । अतो निर्वाप्यपिण्डान्वयपक्षं विहाय अवयवानुवृत्तिपक्षमङ्गीचनु-
विज्ञानेश्वरादयः । तथाहि समानः पिण्डो देहो देहावयवा यस्याः सा स-
पिण्डा न सपिण्डा असपिण्डेति । तथाहि पितुरवयवानां रक्तमज्जादीनां
पुत्रशरीरे साक्षात्प्रवेशः । पितामहस्य पितृद्वारा । एवं प्रपितामहादीनामपि
यथाकथंचित्परंपरयाऽवयवानुवृत्तिरस्त्येवेति । एवं मात्रादिभिरपि । एवं
पत्न्या पत्न्या एकशरीरारम्भकत्वेन । कचिच्चैकावयवाधारत्वेनापि सापि-
ण्ड्यम् । यथा यात्रोर्भर्तृद्वारा श्वशुरावयवाधारत्वम् । एवं यथाकथंचित्सा-
पिण्ड्यमन्यत्राप्यूहम् । यद्वा यत्राभियुक्तानां सपिण्ड इति प्रसिद्धिसत्र
सापिण्ड्यमिति । अत्र यद्यप्यसपिण्डामिति नवस्मासेन पर्युदासस्तथा
प्ययं निषेधफलकः सपिण्डापरिणयने प्रायश्चित्ताभ्यानात् ।
एवमेकशरीरावयवान्वयरूपे सापिण्ड्ये विधानशरीरेणापि परंपरया
सापिण्ड्यापत्तिरतः संकोच उक्ते याज्ञवल्क्येन—

‘पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा’ इति ।

मातृतः पञ्चमात् पितृतः सप्तमादिति तथाच पङ्कजशब्दवत्सपिण्डशब्दो
योगरुढः । एतन्निष्कर्षश्चाभियुक्तैः कृतः—

वध्वा वरस्य वा तातः कूटस्थाद्यदि सप्तमः ।

पञ्चमी चेत्तयोर्माता तत्सापिण्ड्यं निर्वर्तते ॥ इति ।

कूटस्थो मूलपुरुषः । यतः संतानमेवस्ततो गणयेत् । नारदोऽपि—

मातृतः पञ्चमादूर्ध्वं पितृतः सप्तमात्तथा ।

गृहस्थ उद्गृहेत्कन्यामन्यथा गुरुतल्पगः ॥ इति ।

पैठीनसिरपि—‘पञ्चमी मातृतः परिहरेत्सप्तमीं पितृतः’ इति ।

अत्र वधूवरयोः पितृद्वारकसापिण्ड्यविचारवेलायां मूलपुरुषगणने पञ्च-
म्या मातुः संताने निवृत्तगपि सापिण्ड्यं मण्डूकप्रुत्या तस्याः पुत्रसंताने-
ऽनुवर्तत एव । वधूवरयोः पितुः पप्रत्वादिति सांप्रदायिकाः ।

यत्तु विष्णुपुराणे—

पञ्चमी मातृपक्षाच्च पितृपक्षाच्च सप्तमीम् ।

गृहस्थ उद्गृहेत्कन्यां न्याप्येन विधिना नृप ॥

यच्च वासिष्ठे—

पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा । इति ।

तदुभयमप्यतीत्येति व्याख्येयं पूर्वोक्तवचनविरोधात् ।

सप्तमे पञ्चमे चैव येषां वैवाहिकी क्रिया ।

क्रियापरा अपि हि ते पतिताः शूद्रतां गताः ॥

इति मरीचिना दोषोक्तेश्च ।

यत्तु पट्त्रिंशन्मते—

तृतीयां मातृतः कन्यां तृतीयां पितृतस्तथा ।

विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशर्योऽङ्गिरा यमः ॥ इति ।

यदपि पैठीनसिस्मृतौ—‘त्रीनतीत्य मातृतः पञ्चातीत्य पितृतः’ इति तद्वर्गादोपातिशयार्थम् । अन्यथा ‘पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वम्’ इत्यनेन पञ्चमप-
ष्टादौ क्रियमाणो विवाहोऽनिष्टसाधनं पट्त्रिंशन्मतादिभिस्त्विष्टसाधनमिति विरुद्धबोधद्वयस्याशङ्क्यत्वात् । दोषातिशयार्थत्वं कथमिति चेदुच्यते । पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वमित्यनेन पूर्वं बोधितो दोषः कचिदल्पः कचिद्भूया-
निति बोधयितुं शक्यत्वात् । तस्य च प्रयोजनं प्रायश्चित्ताल्पत्वबहुत्वादि । नहि सापिण्ड्याविशेषे भगिनीगमने यावानेव दोषस्तावानेव पञ्चन्यामिति वक्तुं शक्यम् । अतः पूर्वोक्तमेव ज्याय इति । पट्त्रिंशन्मतादिवाक्यान्या-
पद्विपयाणि । अनुज्ञातं च निषिद्धमप्यापदि चातुर्वर्ण्यमैश्यादि ।

दोषाभावोऽप्युक्तस्तत्र निबन्धकृत्रिरिति चेन्न । तत्रापि—

आप्तकल्पं द्विजः कृत्वा प्रायश्चित्तं पुनश्चरेत् ।

इतिवचनेन दोषस्योक्तत्वात् । स्तोकदोषाच्च दोषाभाववचनम् । यद्येवम-
ङ्गीकृत्य तृतीयापरिणयनमिष्टं तदा क्रियतां नाम न तु सर्वथा दोषाभावः ।

विशेषान्तरं गृह्यपरिशिष्टे—‘अविरुद्धसंभ्रामुपयच्छेत्’ इत्युक्त्वा
‘दम्पत्योर्मियः पितृमातृसाम्ये विरुद्धसंभ्रमः यथा भार्यास्वसुर्दुहिता
पितृव्यपत्नीत्यसा च’ इत्युक्तम् । अत्र गृह्यपरिशिष्ट एव विरुद्धसंभ्रम-
स्योक्तत्वात्त्राधिकव्यवहाराणां मानमस्तीति भार्यास्वसृकन्या पितृव्यपत्नी-
त्यसा चापरिणयेति ।

अत्र विन्ध्यदक्षिणवासिनः केचित्—

मानुलस्य मुतामूढा मातृगोत्रां तथैव च ।

समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

इत्यादिबहुस्मृतिनिषिद्धमपि मातुलकन्यापरिणयनाचरन्ति । स च दुरा-
चार इति भट्टपादादयः । भट्टसोमेश्वरस्मृतिचन्द्रिकाकारमाधवादयस्तु दुरा-
चारत्वं नास्तीत्याहुः । कलावलाधिकरणे 'श्रुत्या लिङ्गं वाच्यते' इत्युक्त्वा—
“कचिच्छ्रौतेन लिङ्गेन विरोधाधिकरणरीत्या संभवदन्यमूलायाः स्मृतेर्वाधः ।
यथा 'गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः' इति
दादातय्यां श्रुतम् । तस्यार्थः—यमी यमं स्वध्रातरं मिथुनार्थं प्रोवाच । सा च
यमेन भ्रात्रेवमयुक्तमिति प्रत्याख्याता वदति । कः प्रजापतिर्विश्वरूपो विश्वात्मा
त्वष्टा सविता नौ आवयोर्भ्रातृभगिन्योर्गर्भे दम्पती जनिता जनयिष्यति ।
आवयोरपत्ययोरवश्यं दम्पतीत्वं भावि तद्वरमावामेव दम्पती भवाव इति
लिङ्गमनन्यगति । तथा “आयाहीन्द्र पयिभीरील्लितेभिर्वज्रमिमं नो भाग-
धेयं जुपस्व । तृप्तां जहुर्मातुलस्येव योपा भागस्ते पैतृष्वसेयी वपामिव” ।
अस्यार्थः । हे इन्द्र त्वमीक्षितेभिः प्रशस्तैः पयिभिः मर्मैर्नोऽस्माकं यज्ञ-
मायाद्यागच्छ आगत्य तृप्तामाज्यसिक्तं वषां भागधेयं वपारूपं भागं
जुपस्व सेत्स्व । तत्र वषाभागत्वे दृष्टान्तद्वयम् । यथा मातुलस्य जहुरप-
त्यरूपा योपा स्त्री कन्येत्यर्थः । सा मातुलशब्दस्य संबन्धिज्ञान्त्वान्ना-
गितेयोपस्थितेस्तस्य भागः भजनीया सेव्येत्यर्थः । यथा पैतृष्वसेयी
मातुलपुत्रस्य भाग इति च लिङ्गम् । स्मृतिचन्द्रिकायां व्याख्याने क-
श्चिद्विशेषः । आगत्य भागं सेवस्व । एते यजमानास्त्वामुद्दिश्य वषां
जहुस्त्यक्तवन्तः योपा दुहिता । अन्यत्पूर्ववत् । तथा वाजसनेयिभृतौ
सृग्व्यूहनाथैर्गदे 'तृतीये संगच्छामहं चतुर्थे संगच्छामहं' इत्यपि लिङ्गम् ।
नचास्त्यार्थवादत्वात्स्वार्थापरत्वमिति वाच्यम् । अप्राप्तार्थस्य 'उपरि हि देवे-
भ्यो धारयति' इत्यादिवद्विपरित्यात् । एवं स्थिते मातुलकन्यापरिण-
यने यद्यायश्चित्तादिरमरणं तदासुरादिविवाहोत्पन्नाविषयं ऋष्टव्यम् । किं तत्र
प्रमाणमिति चेदुच्यते—

गोत्ररिक्त्वे जनयितुर्न भजेद्विश्वः सुतः ।

गोत्ररिक्त्यानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ॥

इति मनुवचनेनोद्देश्यविशेषणस्य पुंस्त्वस्याविवक्षितत्वेन दानकर्माभूतस्य
जनककुले संप्रन्थमात्रनिवृत्त्या सापिण्ड्यस्यापि निवृत्तिः प्रतीयते ।
अतः कन्याया अपि ब्राह्मादिविवाहचतुष्टये दानसद्भावात्तत्र च सापि-
ण्ड्यस्यापि निवृत्तेस्तत्परं मातुलकन्यापरिणयनम् । आसुरादिविवाहेषु दा-

नाभावात्सापिण्ड्यानिवृत्तेस्तत्परो निषेध इति । कथमिदानीं मातुलकन्या-
वतैर्नृष्वन्नेयी दौहित्री वा न परिणीयते ।

अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु ।

इतिनिषेधादतो न दुराचारत्वमिति । अत्रोच्यते । ‘गर्भे नु नौ’ इत्य-
स्यामृचि पूर्वपामाचरितं स्मृत्यनुमेयश्रुतिविरोधान्न तादृशविधिकल्पकम् ।
यत्र हि नान्यविरोधोऽप्राप्तार्थकत्वं च तत्रैव विविनिषेधकल्पनम् । यथा
‘उल्लुक्कैर्ह स्म पूर्वं समाजम्मुः’ इत्यादिषु । अन्यथा ‘प्रजापतिरुपसमभ्यैत्स्वां
दुहितरम्’ इत्याद्यर्थवाददर्शनादन्यैरपि दुहितृगमनं कर्तव्यमिति कल्पनं
त्वदुक्तरीत्या केन निवार्येत । मन्त्रार्थवादेषु च बहवोऽर्थाः । केचन
सिद्धार्थानुवादका यथा ‘अग्निर्हिमस्य भेषजं’, ‘वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता’ इति ।
केचन रागप्राप्तानुवादकाः । यथा ‘तस्माद्भूतो मातरं स्वसारं चाधिरो-
हति’ यथाच ‘तस्माच्छूयूः श्वशुरश्च पुत्रश्च दुहिता च सुरां पीत्वा विलप-
पन्त आसते’ इत्यादि । केचन प्रायोदृष्टानुवादकाः । यथा ‘तस्मात्प्रजा
दश मासान्गर्भं धृत्वा एकादशमनु प्रजायन्ते’ इत्यादयः । नैतावता-
विध्यादिकल्पनम् । अत एव स्वार्थे तात्पर्याभावात्तन् विधिपरत्वमङ्गी-
कृतम् ‘सोऽरोदीत्’ इत्येवमादीनां मीमांसकैः । एवमत्रापि ‘गर्भे नु
नौ’ इत्यस्यां पूर्वोचरितमात्रं कीर्त्यते—इत्यादि शास्त्रदीपिकाप्रकाशे
पिनामहचरणैर्विस्तरेणोक्तमेव । वस्तुतस्तु नौ आवां जनिता जनयिता
गर्भे नु गर्भे एव कः कृतवानिति माधवाचार्यव्याख्यानमेव युक्तम् ।
करित्यस्यानुदात्तत्वेन पाठाद्रेफान्तत्वदर्शनाच्च । जनितेत्यस्यान्तोदात्तत्वेन
पाठानृमन्तमेव न तु लुङन्तम् ‘तिष्ठतिष्ठः’ इत्यनुदात्तत्वापत्तेः । तेन
जनितेत्यस्य जनयिष्यतीतिव्याख्यानमयुक्तम् । अत एव “न वा उ ते तन्वा
तन्वा संपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छन् । अन्येन मध्रमुदः कल्पयस्व
न ते भ्राता सुभगे यष्टयेत्” इति यमोक्तप्रत्याख्यानं संगच्छते । अस्यार्थः—
हे सुभगे ते त्वं तन्वा शरीरेण तन्वां स्वीयां तनूं न वा उ नैव संपृच्याम् ।
संपृक्यिष्यामीति । तत्र हेतुः । यः स्वसारं निगच्छन् यः स्वसारं गच्छ-
ति तं लोका देवाश्च पापिष्ठमाहुः तर्हि मत्संतोषः कथं स्यात्तत्राह मन्
मत्तः जायमानाः प्रमुदः त्वमन्येन पुंसा कल्पयस्व अर्जयस्व ते भ्राता
यमः एतत्कर्म न यष्टि न काङ्क्षतीति दिक् । ‘आयाहीन्द्र’ इत्यस्यां च
रागप्राप्तानुवादः । कथमनियन्प्राप्तस्य नित्यवदनुवाद इति चेत् ‘तस्मा-

व्यजा' इत्यस्य वा क नित्यप्राप्तिः । तत्र यथैवानियतप्राप्तिमुपजीव्या-
नुवाशोपपत्तिरेवमत्रापि ।

यत्तु दानेन सापिण्ड्यं निवर्तत इति । तत्रोच्यते—

माता पिता वा दद्यातां यमजिः पुत्रमापदि ।

सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दक्षिणः सुतः ॥

इति पुंस्त्वविशिष्टानुवादेन संज्ञाकरणात्कन्यायाश्च दक्षिणसंज्ञाभावादभि-
मानुवादेन विधीयमानाऽपि सापिण्ड्यनिवृत्तिर्न कन्याया भवति ।

नन्वेवं दक्षिणस्य सापिण्ड्यनिवृत्तौ जनककन्यादिपरिणयनं स्यात् ।
स्यादेव यदि 'ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृवन्धुभ्यो मातृवन्धुभ्यः पञ्चमाद्वीजिनश्च
सप्तमात्' इति वाक्यं नाभविष्यत् । अत्र हि वीजिप्रहणेन दक्षिणस्य जनक-
कुले सापिण्ड्यमस्तीति ज्ञायते । गोत्रनिवृत्तिस्तु ।

स्वगोत्राद्भ्रूयते नारी विवाहात्सप्तमे पदे ।

इत्यनेन वचनेन न त्वनेन । अतो मातुलकन्यापरिणयनं दुराचारः ।
अत एव भट्टपादैरुक्तम्—

वासुदेवाद्भ्राता च कौन्तेयस्य विवर्ण्यते । इति ।

बौधायनेन च दुराचारान्परिगणयता स्पष्टमेवोक्तम्—'पञ्चाधा विप्रतिप-
त्तिर्दक्षिणतस्तथोत्तरतो यानि दक्षिणतस्तान्यनुव्याख्यास्यामो तथैतदनुमेनेन
सह भोजनं स्त्रिया सह भोजनं पर्युषितभोजनं मातुलपितृवस्तृदुहितृगमन-
मिति । अयोत्तरत ऊर्णाविक्रयः सीधुपानमुभयतोदक्षिर्व्यवहार आयुधीयकं
समुद्रयानमिति । तत्रेतरदितरस्मिन् कुर्वन् दुष्यति वदेशग्रामाप्यान्मि-
थ्यैतदिति गौतमः उभयमेव नाद्रियेत शिष्टस्मृतिविरोधदर्शनात्' इति
प्रन्येत । सीधु मयम् । उभयतो दन्ता येषां ते उभयतोदवः । तैरुभयतो-
दजिः । व्यवहारस्तत्परणकरूपविक्रयरूपः यानादिरूपो वा । आयुधीयकम्
आयुषेन जीवनम् । गृहस्थतिरपि—

उद्गृह्यते दक्षिणात्यैर्मातुलस्य सुता द्विजैः ।

मत्स्यादाश्च नराः पूर्वं व्यभिचाररताः स्त्रियः ॥

उत्तरे मध्यपाश्चैव स्पृश्या नृणां रजस्वलाः ।

सजाताश्चापि गृह्णन्ति भ्रातृभार्यामभर्तृकाम् ।

सर्वदेशेवनाचारो रथ्याताम्बूलवर्जणम् ॥ इति ।

विशेषः स्मृत्यन्तरे—

गायत्र्या उपदेशुश्च कन्यां नैवोद्वहेद्भिजः ।

गुरोश्च कन्यां शिष्यो वा तत्संतत्याऽपि नेष्यते ।

पुरुषत्रयपर्यन्तं भ्रात्रादेर्नैव दिष्यते ॥ इति ।

सपन्नमातामहकुले सापिण्ड्यमाह सुमन्तुः—“पितृपत्न्यः सर्वा मातर-
स्तद्भातरो मातुलास्तद्भगिन्यो मातृपृवसारस्तद्गृहितरश्च भगिन्यस्तदपत्यानि
भगिन्येतान्यन्यथा संस्कारकारिणः स्युः ” इति । द्वितीयतच्छब्देन मातृ-
परामर्शः । अत्र ‘यावद्बचनं वाचनिकम्’ इति न्यायात्परिगणितेष्वेव
सापिण्ड्यं न सप्तमादिपर्यन्तम् । एतत्सापिण्ड्यविषयमेव—

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।

सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥

इति मनुवाक्यमिति निबन्धकृतः । एतदुपपत्तिश्च द्वैतनिर्णय उक्ता ।
अत्रासपिण्डामिति निषेधः सार्ववर्णिकः । असमानार्पणगोत्रजामिति त्रया-
णाम् । तत्र क्षत्रियवैश्ययोः पुरोहितगोत्रं न स्वत इति । यवीयसीमिति
वयसा परिमाणेन च न्यूनाम् । वयोन्यूनतायां विशेषमाह मनुः—

त्रिंशद्वर्षो बहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवर्षिकीम् ।

अष्टवर्षोऽष्टवर्षी वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ इति ।

अष्टवर्षश्चतुर्विंशतिवर्षः । बृहस्पतिर्विशेषमाह—

त्रिंशद्वर्षो दशाब्दां तु भार्या विन्देत नम्रिकाम् ।

एकविंशतिवर्षो वा सप्तवर्षमवाप्नुयात् ॥ इति ।

भ्रातृमतीमिति पुत्रिकाकरणशङ्कानिवृत्तये । तथाच मनुः—

यस्यास्तु न भवेद्भाता न पित्रायेत वै पिता ।

नोपयच्छेत् तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥ इति ।

अनेन पितुरभिप्रायमात्रेणापरिभाषिताऽपि पुत्रिका भवतीति गम्यते ।
अत एव गौतमः—“अभिसंविमात्रा पुत्रिकेत्येकेषां तत्संशयान्नोपयच्छेद्-
भ्रातृकाम्” इति । पुत्रिकाकरणप्रकारादिकं व्यवहारमयूखे दर्शयिष्यामः ।

असमानार्पणगोत्रजामिति । आर्पं च गोत्रं चार्पणगोत्रे समाने च ते आर्प-
गोत्रे च समानार्पणगोत्रे समानार्पणगोत्रयोर्जाता समानार्पणगोत्रजा न तादृशी
असमानार्पणगोत्रजा । अत्र च प्रत्येकं प्रतिषेधः । समानार्पा नोद्वाह्या

सगोत्रा च नोद्वाह्येति प्रत्येकं प्रायश्चित्ताग्नानात् । तत्र प्रायश्चित्तमग्रूले
वक्ष्यते । आर्षः प्रवरः गोत्रप्रवर्तकस्य ऋषेर्व्यावर्तको मुनिविशेषः ।
वत्सार्ष्टिपेणयोः गोत्रभेदे प्रवरैक्यात्, व्यामुष्यायणानां संकृतीनां प्रवरभे-
देऽपि सगोत्रत्वादुभयोपादानम् । मातामहगोत्राऽप्यपरिणया । तथा
च मनुः—

मातुलस्य सुतामृद्धा मातृगोत्रां तथैव च ।

समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ इति ।

अत्र सगोत्रा नोद्वाह्येत्यनेनैव मातृगोत्रपर्युदासे सिद्धे मातृगोत्रग्रहणं
मातुर्विवाहात्पूर्वगोत्रनिवृत्त्यर्थम् । तथा च मातामहगोत्रा नोद्वाह्येति फलि-
तम् । तत्र माष्यन्दिनीयानाम् । तथा च चतुर्विंशतिमतीकायां सत्यापा-
दवचनम् ‘मातृगोत्रं माष्यन्दिनीयानाम्’ इति ।

अथ गोत्रप्रवरनिर्णयः । तत्र स्मृत्यर्थसारे गोत्रलक्षणमुक्तम् ।

गोत्रप्रवर- जमदग्निर्भरद्वाजविश्वामित्रात्रिगौतमाः ।

निर्णयः । वसिष्ठकश्यपागस्त्या मुनयो गोत्रकारिणः ।

कानि तानि गोत्राणि यद्यवर्तकतैपामित्यत आह—

एतेषां यान्यपत्यानि तानि गोत्राणि मन्वते ॥ इति ।

अपत्यानीति न साक्षात् किन्तु पुत्रपौत्रादिपरंपरया । तथा यौधायनो-
ऽप्याह—‘एतेषामगस्त्याष्टमानां ब्रह्मर्ष्यं तद्गोत्रमित्याचक्षन्ते’ इति ।
एवमुच्यमाने भृग्वादीनां गोत्रत्वं न स्यात् । तत्र केचिदिष्टापत्या परि-
हरन्ति । अपरे भृग्वादिष्वनादिशिष्टानां गोत्रत्वसमाख्यानात्प्रवरमञ्जरी-
प्रयोगपारिजातमदनपारिजातादिग्रन्थविरोधाच्च न गोत्रत्वमपस्यपितुं शक्यम् ।
किन्तु यत्र शिष्टानां गोत्रत्वप्रसिद्धिस्तद्गोत्रं भ्रजत्वादिवदित्याहुः । वस्तुतस्त्वे-
तस्य पक्षस्य सूत्रानारूढत्वात्प्रवरवत्त्वं गोत्रलक्षणं युक्तमुत्पश्यामः । तथा
च सत्यापादसूत्रे प्रवरानुक्त्वा तैर्गोत्राणि इत्युक्तम् । व्याख्यातं च शनर-
स्वामिभिः ‘प्रवरैर्गोत्राणां गणव्यवस्था समानता च’ इति । एवं च स्वरू-
पतः समानतया च गोत्रज्ञाने प्रवराणां हेतुत्वमुक्तम् । तथा च तद्गो-
त्रमित्युक्तं भवति । ततश्च यमेवैकमाधिकृत्य प्रवरान्नानं सोऽभिहितो गोत्रम् ।
तस्य चैकस्याधिकृतस्य येषु स्वस्वगणान्तर्गतेष्वनुवृत्त्याख्यं साम्यं भवति ते
सगोत्रा इति फलितमिति पितामहचरणोक्तपक्ष एव श्रेयान् । एवं च

शिष्टाचारोऽप्यनुगृहीतो भवति बहुग्रन्थविरोधश्च परिहृतो भवति । यत्तु
बौधायनसत्यापाढादिभिरगस्त्याष्टमानामपत्यं गोत्रमित्युक्तम्, न तल्लक्षणा-
भिप्रायेण किंत्वयोगव्यावृत्त्येति ज्ञेयम् । नचैवं क्वचिद्वयोराष्ट्रिपेणादिभिः
सगोत्रतापत्तिरिति वाच्यम् ।

एक एव ऋषिर्याक्प्रवरेष्वनुवर्तते ।

तावत्समानगोत्रत्वमृते भृग्वङ्गिरोगणात् ॥

इति बौधायनेन पर्युदासात् । अनेन च पर्युदासेन ज्ञायते भृग्वङ्गिरोगणे-
ष्वस्ति गोत्रत्वमिति । यत्तु प्रवरमन्थरीकृता कचित्रांस्त्येवैषां गोत्रतेत्युक्तं
तत्पूर्वापरग्रन्थविरोधात्परमताभिप्रायेण । यत्तु विश्वनाथदेवेनोक्तम्—

भृग्वङ्गिरोन्यद्यत्किंचिदृषेयावत्सु वर्तनम् ।

तावत्समानगोत्रत्वमिति केचित्समूचिरे ॥

तत्रैवं सति सर्वत्र सगोत्रत्वनिबन्धने ।

अनुद्वाहे ॥ कुत्र स्यात्प्रवरैक्यं प्रयोजकम् ॥ इति ।

तदस्माभिः पूर्वमसंकीर्णोदाहरणोपन्यासादपास्तम् । तस्मादस्ति हरि-
तादीनामपि गोत्रत्वम् । यद्यपि गोत्राणामानन्त्यं तथापि यानधिकृत्य प्रव-
रा आम्रातास्तादृशगणा एकोनपञ्चाशत् । उक्तं च बौधायनेन—

गोत्राणां च सहस्राणि प्रयुतान्यर्युदानि च ।

ऊनपञ्चाशदेतेषां प्रवरा ऋपिदर्शनात् ॥ इति ।

ते च गणा यथा—भृगूणां सप्त ७, जमदग्नेस्तदन्तर्भावः । विश्वामित्राणां
दश १०, अत्रेष्टत्वारः ४, अङ्गिरसां सप्तदश १७, अत्रैव गौतमभरद्वाजयो-
रन्तर्भावः । कश्यपानां त्रयः ३, वसिष्ठानां चत्वारः ४, अगस्तेष्टत्वारः ४.
तथा च संप्रहे उक्तम्—

सप्तेह भृगवः सप्तदशाङ्गिरस एव च ।

ततोऽत्रयश्च चत्वारो वोद्वज्याः कश्यपास्तयः ॥

चत्वारोऽत्र वसिष्ठाः स्युर्विश्वामित्रास्ततो दश ।

अगस्तयस्तु चत्वार इति संप्रहकृद्वचः ॥

प्रवराः शिष्टपरंपराप्रसिद्धाः । इतिगोत्रप्रवरलक्षणम् ।

१ 'अन्यत्र भृग्वङ्गिरसां गणात्' इति च. पाठः । २ अत्र सर्वेषु विविगुदितपुस्तकेषु 'न
॥ २१'; 'नस्त एव' इति च पाठे रस्यते तथापि नास्येति पंथे सुवत्वात् वक्ष्यते ।

अयोदिष्टगणक्रमेण यौधायनादिसूत्रोक्तानि गोत्राणि प्रदर्शयन्ते । तत्र तावद्गूणां सप्तान्तर्गणाः । तत्राजामदन्याः केवलभृगवः पञ्च । आर्ष्टिपेणा यस्काः मित्रयुवो वैन्याः शुनका इति । तद्यथा ।

आर्ष्टिपेणा नैरथयो ग्राम्यायणयः कात्यायनाध्वान्द्रायणाः पैठकलायनाः सिद्धाः सुमनायनाः गौराभिराग्निः इत्येते आर्ष्टिपेणाः । तेषां च पञ्चाप्येयाः—भार्गवचयावनाप्रवानाः आर्ष्टिपेणानूपः इति । एषामविवाहः । इत्यार्ष्टिपेणगणः ।

यस्को मौनो मूको बाधूलो कर्पुष्णो मापो राजतैनो दुर्विन्दो भास्करो दैवन्तायनो जैवन्तायनो चाकलयो मय्यमेयो वासयः कौशाम्बेयाः कौटिल्याः सात्यकेयाः कौञ्जिकौञ्चिल्याः सत्यकयश्चित्रसेनाः भागन्तयस्ताकश्विकेयाः औक्तेयाः भौर्गवित्रतयः भारगुरिश्च इत्येते यस्काः । तेषां त्र्याप्येयाः प्रवराः । ‘भार्गवैतहव्यसावेतस’ इति । इति यस्कागणः ।

मित्रयुवो रौक्पायणा नासायजना रोषायना रौक्यायनाः सखण्डिनाः सुरभिनेया माल्याया वात्याया महावाल्यास्तादर्यायणा औरक्षायणा माजाधयः ‘कैतवायना’ इत्येते मित्रयुवस्तेषां त्र्याप्येयाः प्रवरः । ‘भार्गववाङ्मयद्वैवोदास’ इति । इति मित्रयुगणः ।

वैन्याः पार्थो घाष्कलाः श्येनाः, तेषां त्र्याप्येयाः प्रवरः ‘भार्गववैन्यपार्थ’ इति । इति वैन्यगणः ।

शुनकाः समद्रा यज्ञपयः सौगन्धयः क्षार्दमायना गौड्मायना मत्स्यगन्धाभार्गयणाः ओत्रियास्तौत्तिरीया इत्येते शुनकास्तेषां मेकार्येयाः प्रवरः । ‘शुनक’ इति । ‘गृत्समद’ इति वा । इति शुनकगणः । इति केवलभृगवः ।

अयं गणद्वयं सम्प्रर्ष्यन्तर्गतं वत्सविदार्यं तदुच्यते मार्कण्डेया माण्डव्या—माण्डूकेयाः कांसय आलेखना क्षार्भायणाः शार्करायणा देवतायनाः शौनकायनकयो वैश्वानरयो वैहानग्यो विरोहिता वाह्या गौड्मायणाष्टिकयः काशकृत्स्ना बाहूतकाः कृतभागा एतिशायनाः सौकृतयो मण्डविसौविस्तयः हस्त्यग्रयो हस्ताग्रयः शौड्मायकाः वैकेपाया द्रोणजिह्व्य औरसयः काम्वरोदरयः कण्ठोरकृतो वैहलयो विरूपाक्षा मिक्ताश्वा उच्चैर्मन्यवो

१ अयमधिको क. । २ जोन्वित्या क. पाठः । ३ ओक्तेयाः क. पाठः । ४ ओर्गुवित्रतयः क. पाठः । ५ रौक्पायणा क. पाठः । ६ औरक्षायणा वानायना उक्षपायणापेया क. पाठः । ७ गौड्मायना क. पाठः । ८ यज्ञपयः अलेखना क्षार्भायणाः शार्करायः द्रौदेवेवत्सना. शौनकायनममकेयाः पार्थिवः कांसयः प्रवायना.पैठकलायनाः इति क. पाठः ।

वैमत्या आर्यायणा मार्कयणाः काङ्गायना वायवा दैवमत्या आर्कयणाः
काङ्गायना वायानिनः शांकरवश्वान्द्रामसा गाङ्गेयाः तोयेया याज्ञिया
परिमण्डलयो जावाल्यो बाहुमित्रायणा आपिशलयो वैष्णुरयो लोहि-
तायना उष्ट्रावायानिनः शारद्वन्तायना राजितवाहा वात्सा वात्स्यायना
इत्येते वत्सास्तेषां पञ्चाप्येयः प्रवरो 'भार्गवच्यावनाप्रवानौर्वजामदग्न्य' इति ।
इति वत्सगणः ।

विदाः शैला अवयः शौलाः प्राचीनयोग्या अभयदानाः काण्डरथ्यो
वैतभृताः पुलस्तय आर्कयणास्तान्त्रायणाः कामला इत्येते विदास्तेषां
पञ्चाप्येयः प्रवरो भवति 'भार्गवच्यावनाप्रवानौर्ववैद' इति । इति विदगणः ।

आपस्तम्बस्तु विशेषमाह स उच्यते—तत्र यत्सगणो वाहव्यगणत्वेन व्यप-
दिष्टः । सावेतसेत्यत्र सावेदसेति । शुनकाणो गार्त्समदत्वेन व्यपदिष्टः । मित्र-
युगणो वश्यश्वगणत्वेन व्यपदिष्टः । विदगणो नोक्तः । कात्यायनेन भृगो-
र्द्वादश गणा उक्ताः । तद्यथा वात्स्यायना आवाच्या वैजवाः शाठरमाठरा
विदा आर्ष्टिपेणा वत्सा वेदविश्वज्योतिषः पार्श्वश्वेता आपिशायना वीतहव्या
गृत्समदाश्चेति । वात्स्यायनानां पञ्चाप्येयाः 'भार्गवच्यावनाप्रवानौर्वजाम-
दग्न्य' इति । आवाच्यानां 'भार्गवच्यावनावाच्या' इति । वैजवानाम् 'भार्ग-
वच्यावनाप्रवानवैजवनैमथित' इति । शाठरमाठराणाम् 'भार्गवशाठरमाठर'
इति । विदानाम् 'भार्गवच्यावनाप्रवान' इति । आर्ष्टिपेणानां पूर्वोक्तः ।
वत्सपुरोधसां 'भार्गवच्यावनाप्रवानवैजवनैमथित' इति । शाठरमाठराणां
भार्गवशाठरमाठर' इति । विदानाम् 'भार्गवच्यावनाप्रवान' इति । आर्ष्टि-
पेणानां पूर्वोक्ताः । वत्सपुरोधसाम् 'भार्गवच्यावनाप्रवानवात्सपौरोधस' इति ।
'भार्गववत्सपौरोधस' इति वा । वेदविश्वज्योतिषाणाम् 'भार्गववेदवै-
श्वज्योतिष' इति । पार्श्वश्वेतानाम् 'भार्गववैन्यपार्थ' इति । आपि-
शायनानाम् 'भार्गववापिश्वदैवोदास' इति । वीतहव्यानाम् 'भार्गववै-
तहव्यसावेधस' इति । गृत्समदानाम् 'गार्त्समद' इति । भार्ग-
वगार्त्समद' इति वा । लौगाक्षिस्तु सप्तगणेषु विशेषमाह—गणास्ता-
वन् 'वत्सा विदा वात्स्या आर्ष्टिपेणाः खालायना वीतहव्या गार्त्समदाश्च'
इति । तत्र वात्स्यानां पूर्ववत् । विदानां व्याप्येया 'भार्गवौर्वजामद-
ग्न्य' इति । वात्स्यानां 'भार्गवच्यावनाप्रवान' इति । आर्ष्टिपेणानां

पूर्ववत् । खालायनानां मित्रयुक्त्वत् । वीतहव्यानां ' भार्गवैतहव्यसावे-
तस ' इति । एवं पूर्वोक्तेषु वत्सविदार्ष्टिपेणानामन्योन्यमविवाहः । गोत्र-
प्रवरैक्यात् । यस्कमित्रयुवैत्यनुनकाः परस्परं न विवेहेयुः । दौधायनमते
प्रवरैक्यात् पूर्वोपपादितप्रकारेण गोत्रैक्याच्च । यस्कादिचतुर्भिर्विदादि-
त्रिभिर्भवत्येव विवाहः । सगोत्रत्वाभावात् । ननु भार्गवरूपैकप्रवरसा-
म्यात्कार्थं विवाहः । उच्यते—

पञ्चानां त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः ।

भृन्वद्भिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोऽपि वारयेत् ॥

इति दौधायनवचनेन भृगुगणे एकानुवृत्तेरप्रयोजकत्वात् । एवमपेऽपि
द्रष्टव्यम् ।

इति भार्गवनिर्णयः ।

अथाङ्गिरोनिर्णयः । तत्र तद्रणास्त्रयः केवलाङ्गिरसो गौतमा भरद्वाजाश्चे-
ति । तत्र केवलाङ्गिरसः षट्, चत्वारो भरद्वाजाः, सप्त गौतमा इत्येवं स-
प्तदश । तत्र केवलाङ्गिरसां षड्गणमध्ये एकः संकृतिर्व्यामुष्यायणः ।
तत्तद्व्यकरणे निरूपयिष्यामः । अवाशिष्ठाः पञ्च तद्यथा । विष्णुवृद्धकण्वह-
रितरथीतरमुद्रलाख्याः । त उच्यन्ते ।

विष्णुवृद्धाः शठा मठाः भद्रणा मद्रणा वादरायणाः सात्यकिः शालङ्का-
यना नैतुधाः स्तुत्वा भारुण्या वैहोठा देवस्थातयः इत्येते विष्णुवृद्धास्तेषां
व्याप्यैः प्रवरः ' आङ्गिरसपौरकुत्सत्रासदस्यव ' इति । इति विष्णुवृद्धगणः ।

कण्वाः औपमः कठायना वाष्कलाः पौलाः हलिनो माञ्जिः माञ्जयः
मौजिगन्धा विजिवा जया बाजश्रवस इत्येते कण्वास्तेषां व्याप्यैः प्रवरः
' आङ्गिरसाजमीढकाण्व ' इति । इति काण्वगणः ।

हरिताः कौत्सः साहो दाभ्यो भैम्यो भैमग्वो मलयुर्लभ्योदरो यलो-
दरो महोदरो नैमिश्रयो मिश्रादेना मिश्रयः कौत्साः कारपियः कौलयः
पौलयः मौद्रलोमा माधूपमान्भातृमाण्डकारय इत्येते हरितास्तेषां व्याप्यैः
प्रवरः । ' आङ्गिरसाम्बरीपयौवनान्व ' इति । इति हरितगणः ।

रथीतरा हास्तिदास्तिका ह्यायना नैतिरक्षयः ऐशानयः शैलालयो
मिलैभिला भायसा कद्वा भैक्षवाहा डेमावा इत्येते रथीतरास्तेषां त्रयः
प्रवराः ' आङ्गिरसवैरूपराथीतर ' इति । इति रथीतरगणः ।

मुद्रला हिरण्याक्षा ऋषभामिनाः क्षपासस्या शपायणा दीर्घजङ्घाः
प्रबलजङ्घाः स्तरणमिन्दव इत्येते मुद्रलास्तेषां त्रयः प्रवराः । आङ्गिरसभार्ग्यः
श्वमौद्रल्य ' इति । इति मुद्रलाणः । इति केवलाङ्गिरसः ।

एषु पञ्चसु स्वं स्वं गणं हित्वा परस्परं विवाहः । यद्यप्याङ्गिरसेति प्रव-
रैक्यं सर्वत्र तथाप्यङ्गिरोगणत्वाददोषः ।

अथ भरद्वाजाङ्गिरसः । तद्रणाश्वत्वारः भरद्वाजाः कपयः गर्गा रौक्षायणा
इति । ते उक्ता दौधायनेन ।

भरद्वाजा क्षान्मायणाः सङ्गडा देवान्धा उद्ग्रहव्याः प्राम्वंशय बाहलभा
वायो गावसानायना वैदेहा आत्रा औक्षा भूरयः परिणद्वेयाः केशलेयाः
शौद्धय उरुढाः खारिग्रीवय औपसयो वयोक्षिमेदा अग्निवेश्या व्ययाः शठा
गौरिवा लेख्यायनाः स्तनकर्णा ऋक्षा माणिमिन्धाः कठोदकाः सौद्रलयो
वैलाः खारुढा देवयो भाद्रपद्ययः सौरभराः शुङ्गा देवमत्तय इषुमता औदमै-
धयः प्रवाहणेयाः कुल्मापा राजस्तम्भयः सुधापकृतो वाराहयो बलभीकयो
रुद्राङ्गपथाः शालाहलयो वेदवेला नृत्यायनाः शालालयः शार्दूल्यः शाकला
वाष्कलाः सत्यकेयाः क्रोडायनाकौण्डिन्या ब्रह्मस्तम्भा राजस्तम्भा आपस्त-
म्भाः ये चान्ये स्तम्भस्तम्बशब्दान्ता अरुणिः सिन्धुः कौमुदगन्धिः इति
पृथग्नामान्यन्यत्र आरणसिन्धुकौमुदगन्धयः ' शिखायना आत्रेयायणा
भामाण्याः कुक्षाः कौकक्षिपो नैतुन्त्यो वार्भयः श्यामेधाः मत्सकायाः
करुणायनाः कारुपथयः कारिपायणाः काम्बल्या इत्येते भरद्वाजास्तेषां
प्राप्यैः प्रवरः ' आङ्गिरसवार्हस्पत्यभारद्वाज ' इति । इति भरद्वाजगणः ।

रौक्षायणाः कपिलाः शक्तिफलाः शैफिला वैकिडोऽकौथुमोऽग्निजिह्वी
च कणिश्चंसूतिश्चेति रौक्षायणास्तेषां पञ्च प्रवराः ' आङ्गिरसवार्हस्पत्य-
भारद्वाजवान्दनमातवचस ' इति । इति रौक्षायणगणः ।

गर्गाः सौम्भरायणाः सांख्यानायना गन्धरायणा बालुकयो भ्राष्ट्रका
भ्राष्ट्रविन्दवः प्रोष्ट्रकयः सौर्यामुनिः भ्राजिनाक्षयो होत्रयः सपचपचयो
यवा नवपलाशाः शाखावनयः संप्रहकल्पा वेणुभिरिः सौहृप्रकारि रौति-
क्रौचाल्या राजवत्यो लवाः इत्येते गर्गास्तेषां पञ्चप्रवराः ' आङ्गिरसवार्हस्प-
त्यभारद्वाजगार्ग्यसैन्येति ' त्रयो वा ' आङ्गिरससैन्यगार्ग्येति ' इति गर्गगणः ।

१ मद्रडा इति ड. पाठः । २ कौकक्षिपो ड. पाठः । ३ श ड. पाठः । ४ साम्भरायण-
ड. पाठः । ५ जवा ड. पाठः ।

कपयः वैतलायनाः पतञ्जलीनाः तरस्विनः ताण्डिनः भोजस्यः सार
झरवाः खरशिखाण्डिनः मौशितकिः संशयः पौष्ययः ऐतिशायना इत्येते कपय-
स्तेषां त्रयः प्रवराः । 'आङ्गिरसामहीयवौरुक्षयस' इति । इति कपिगणः ।
मरद्वाजानां चतुर्णामविवाहः । इति मरद्वाजाङ्गिरसः ।

गौतमाङ्गिरसां सप्त गणाः । आयास्याः शरद्वन्ताः कौमण्डा दीर्घतमसः
कारेणुपालयो वामदेवा औशनसाश्चेति । त उच्यन्ते ।

आयास्या आपिवेया मूढरयाः कावाक्षयो वैदेहाः कौमारवत्यादिः दर्भिः
वृत्तौकिः सात्यमुष्मिकौवाहाः बौभ्याः नैकरुधिष्टिः स्तैकपिः किरालयः
कारुणिः कठोरिः काशीवाः कार्क्षीवा इत्येत आयास्यास्तेषां त्रयः प्रवराः
'आङ्गिरसायास्यगौतम' इति । इत्यायास्यगणः ।

शरद्वन्तः अभिजितो रोहिण्याः क्षीरकरभाः सौमुचयः सौपासुनाः कौ-
पविन्वो राहूगणा गणयोम्यणा इत्येते शरद्वन्तास्तेषां त्रिप्रवराः 'आ-
ङ्गिरसगौतमशरद्वन्त' इति । इति शरद्वद्वगणः ।

कौमण्डा मानसरेपणा मासुराक्षाः काण्वरेभय आञ्जायना वाजायना
इत्येते कौमण्डास्तेषां पञ्चापेयः प्रवरः 'आङ्गिरसौचप्यकाक्षीवतगौ-
तमकौमण्ड' इति । कौमण्डगणः ।

दीर्घतमसां पञ्च 'आङ्गिरसौचप्यकाक्षीवतगौतमदीर्घतमस' इति । इति
दीर्घतमोगणः ।

कारेणुपालयो वास्तव्याः श्वेतीयाः पौत्रिस्त औदजायना मान्धुक्षारा
जमगन्धय इत्येते कारेणुपालयस्तेषां त्रिप्रवराः 'आङ्गिरसगौतमकारेणुपाल'
इति । इति कारेणुपालिगणः ।

वामदेवानां त्रयः 'आङ्गिरसगौतमवामदेव' इति । इति वामदेवगणः ।

औशनसा दिश्याः सुरुपाः प्रशस्ताः सुरुपाक्षा महोदरा विक्रंताः
सुनुध्या निहता इत्येत औशनसास्तेषां त्र्यापेयः प्रवरः । 'आङ्गिरसगौतमौ-
शनस' इति । इत्यौशनसगणः । गौतमानां सप्तानामविवाहः ।

इति गौतमाङ्गिरसः ।

अथ विश्वामित्रास्तेषां गणा दश । कुशिकरौहितरौक्थककामकायनक-
तवधनश्चयाऽजाऽघमर्षणपूरणेन्द्रकौशिकारुष्याः । त उच्यन्ते ।

कुशिकाः पार्णजङ्घा बालुन्या औदरिः माणिः बृहदग्निः रालवः राधठिः
आपयव्याः कामन्दैतका वद्धकवाः श्रिषिताः कामकायना शालद्वायनाः ।

शाङ्कायनाः यमंदूता आनतित्राः तारकायणा चार्वासा जावालयः याज्ञवल्क्याः विदण्डाः भुवनयनाः सौश्रुतयः औषदहनयः औदुम्बरीः भ्राष्ट्रेया श्यामेयाः चैत्रेयाः साश्वता मयूराः चित्रभावनाः श्येतभावना अनुतन्तवयो मान्तवा ये चान्ये व्रतशब्दान्ताः वाभ्रव्याः कालोत्तरा इत्येते कुशिकास्तेषां त्रिप्रवराः 'वैश्वामित्रदेवरातौदल' इति । इति कुशिकगणः ।

रोहिता दण्डकयः चाक्रवर्मापिणः खजूरायिणः वाञ्जायनाः वासयः इत्येते रोहितास्तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरः 'वैश्वामित्राष्टकरोहित' इति । इति रोहितगणः ।

रौक्थकाः खोद्वहा बला रेवणाश्च तेषां त्रयः वैश्वामित्ररौक्थकरैवण इति । इति रौक्थकगणः ।

वैश्वामित्रा दैवश्रवसो दैवतरस औमनज्याः कामकायनास्तेषां त्रयः 'वैश्वामित्रदेवश्रवसदैवतरस' इति । इति कामकायनगणः ।

कताः सैरन्धाः करभा वाजायनाः सांहितेयाः कौकुल्याः । पिण्डप्रीवा नारायणा नाराघा इत्येते कतास्तेषां त्रयः 'वैश्वामित्रकात्यात्कील' इति । इति कतगणः ।

धनञ्जयाः पारिजामयः आश्रयेनावायव्याः सैन्धवायनः पुष्कराक्षास्तेषां त्रयः 'वैश्वामित्रमाधुछन्दसधानञ्जय' इति । इति धनञ्जयगणः ।

आजानां त्रयः 'वैश्वामित्रमाधुछन्दसआज' इत्याजगणः ।

अघमर्षणाः कौशिकाः तेषां त्रयः 'वैश्वामित्राघमर्षणकौशिक' इति । इत्यघमर्षणगणः ।

पूरणाः वारिधापयः तेषां द्वौ ॥ 'वैश्वामित्रपौरण' इति । इति पूरणगणः ।

इन्द्रकौशिकानां द्वौ 'वैश्वामित्रेन्द्रकौशिक' इति । इतीन्द्रकौशिकगणः । सर्वेषां वैश्वामित्राणामविवाहः ।

इति विश्वामित्राः ।

अयात्रयश्चतुर्भेदाः । अत्रयः वादूतका गविष्ठिरा मुद्रलाश्चेति । त उच्यन्ते ।

भूरयः छान्द्रिष्ठान्दोगिः पौष्टिका मौद्रलयः सोपानच्छराला-
श्छागलाः स्तृणविन्दुः भागन्तयः मालरुचः व्यालयः साम्भव्यायनाः साव-
व्यायनाः कर्मधीयाः कामप्यायनिः दाक्षिः वैदेहा गणपतयः औदालकिः
द्रोणभावाः गौरिर्भीवयः गाविष्ठिराः शिशुपालाः कृष्णात्रेयाः गौरात्रेया

तृणात्रेयाः अरुणात्रेयाः गोपवनाः कालापथवयः आनीलायना आनी-
शायनाः आनन्दिः मानन्दिः गौरन्दिः सैरन्दिः पुण्यः शेष्यः सापेता-
यना शाकटायना भरद्वाजनयः इन्द्रातिथिः इत्येतेऽत्रयः । तेषां त्रयः
प्रवराः 'आत्रेयार्चनानसयावाध' इति । इत्यत्रिगणः ।

वाङ्मूतकानां त्रयः 'आत्रेयार्चनानसवाङ्मूतक' इति । इति वाङ्मूतकगणः ।

गविष्ठिराणां त्रयः 'आत्रेयार्चनानसगाविष्ठिर' इति । इति गविष्ठिरगणः ।

मुद्रलाः व्यालिसन्धिः अर्णवाः वौधाः क्षावाजकिः गविष्ठिराः
शिरीषयः शालिमताः ग्रीहिमताः गौरिनीताः गौरिकिः वयोवायवनाः
बाष्कलाः इत्येते मुद्रलास्तेषां त्रयः प्रवराः 'आत्रेयार्चनानसपौर्वातिथ' इति ।
इतिमुद्रलगणः । अत्रीणां सर्वेषामविवाहः ।

इत्यत्रयो निर्णीताः ।

अथ वसिष्ठास्तेषां चत्वारो गणा आरावसिष्ठाः कुण्डिना उपमन्यवः परा-
शराश्चेति । ते उच्यन्ते ।

पैतलकिः वाररकिः सारवला गौरिश्रक्स आश्वलायनाः कपिष्ठाः
शौचिगृक्षा व्याघ्रपादो वाङ्मकायनिः वाढव्या जातुकर्ष्या औडुलोमिः
क्रौंभोजिः कौलायनाः सुन्दहरितः काण्डवृद्धिः सौवत्सायना आलम्भायनाः
लोमन्यः स्वस्त्याः कर्पिताः पार्णकायनाः पार्णवल्क्यः देवल्का गौरव्या
विधावना वाहुकपय आविशिषयो नन्दयज्ञपयः पूर्णवेला विशिखा इत्येते
वसिष्ठास्तेषामेकप्रवरो 'वासिष्ठ' इति । इत्याथवसिष्ठगणः ।

कुण्डिना होलायना गौणा आश्वत्था वैकर्ण्य आश्रित्वा वदरा आश-
रथ्या वाहवः क्रौंकोक्याः साङ्गलिनः काष्ठवः पेटका नमप्रामा हिरण्या-
क्षाः पैष्टपाः पैपल्यादयः माष्यन्दिनाः शान्तिसौपत्तिः इति कुण्डिना-
स्तेषां त्रयः प्रवराः 'वासिष्ठमैत्रावरुणकौण्डिन्य' इति । इतिकुण्डितरणः ।

उपमन्यव औपगन्धा पाण्डलेख्यः कापिञ्जला जलगृहः तपोलोकाः
सैत्रणाः स्नेपाः तागुरिः स्वराक्षरा मौल्यः चैल्ललिनाः महाफर्णायना
वालसिखा औदाहमानयः चलायना मागुरिः रथायनाः कुण्डोदरायणाः
कावाधयः मार्कोधय आनुधरव आलववाः कपिकेशा इत्येते उपमन्यवस्तेषां
त्रयः प्रवराः 'वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरदुसव्य' इति ।

पराशराः कुण्डशयो वाजयो वाजिमन्तयो वैमातायना गोबालिः । प्ररो-
हयः वैकल्यः शुद्धयः क्रौमुदादय अर्हार्थधिवः । स्वत्वायना गोपायनाः वातय

आरुणिः वारुणिः । भालुक्या वाजरिः चक्राव्हयनाः क्रौड्कलयः क्रैमतिः ।
 कृष्णाजिनाः कपिसुखाः स्वस्त्ययनयः श्वेतयूपयः पौष्कलत्याविः । गार्ग्याय-
 णयः वार्णयः श्यामेयाः श्रौनुहिः सहचौलिस्तेषां त्र्यार्षेयः 'वासिष्ठशा-
 क्त्यपाराशर्य' इति ॥ अत्र गोवास्त्यन्ताः कृष्णाः पराशराः । अहार्यश्वन्ताः
 गौराः । वारुण्यन्ताः अरुणाः । क्रैमत्यन्ताः नीलाः । पौष्कलसाव्यन्ताः
 श्वेताः । सहचौल्यन्ताः श्यामा इति संज्ञा । इतिपराशरगणः । वासि-
 ष्ठानां सर्वेषां परस्परमविवाहः ॥ आपस्तम्बस्त्वाद्यवसिष्ठानामपि 'वासि-
 ष्ठशाक्त्यपाराशर्य' इति त्रिप्रवरानाह ।

इति वसिष्ठाः ।

अथ कश्यपास्तेषां त्रयो गणाः । निघ्नवा रेभाः शाण्डिलाश्चेति । त उच्यन्ते ।
 कश्यपाः छागलेया माठरा ऐतिशायना आभूत्वा वैशिखा
 धृन्नायणाः सोम्या धर्म्यायणा औदवृत्तिः आग्रायणाः पैन्धकयः प्रावार्यह-
 द्रोणा आनयाः पाश्चायतिका मौपीतकिः साममया माधवयः सारावयः
 सौधवयः सापत्या आसुरायणाः छागव्याः सोमेधाः स्थूलकेशयः वार्द्ध-
 कय औपव्या लाक्षायणाः क्रोष्टाजीवनयः खार्द्रायणा रोहितायना
 मितकुम्भाः पिङ्गाक्षय औडलयः मारयणाः पचयः वैकर्णेयाः कौशीतिकेयाः
 धूमलक्ष्मणयः सुराः गौरिवायना विमध्या अग्निशर्मायाणाः औक्षाय-
 नयः काम्बोदरयः देवराताः वैदूराः वावेलः महावकेयाः पैठीनस्याः पाः
 नत्याः वृष्णाणाः द्राक्षमाणयः भालन्दनाः शाङ्गमित्रेयाः हिरण्मयाः वालाः
 जारमाण्याः साविश्रवसः वैशम्पायनाः स्वैरकिः कांसतयाः उल्कायनिः
 मार्जलायनाः कांसलायनाः देवोहोताः मुरुचयः स्वरेभाः आयस्थूणाः
 भागुरयः पाधिकायाः गोपायनाः हिरण्मयाः आग्निदेविः तथ्यशौर्याः
 मुसलाः आविश्रेण्या उत्तरतोगण्डूपाः दलोः मन्त्रिताः वैकर्णयः स्थूल-
 विन्दव इत्येते निघ्नवास्तेषां त्रयः प्रवराः 'काश्यपावत्सारनैघ्रुव' इति
 इति निघ्नवगणः ।

रेभाणां त्रयः 'काश्यपावत्साररैभ्य' इति । इति रेभगणः ।

शाण्डिलाः कौहलाः पार्यकावा औदमवयः सौदानवः सौपशवः कारेयाः
 कौकटयः शैशिकयः माहकयः बर्हुदेहा गोमूत्राः वाक्यशठाः जालन्धरिः
 धन्वन्तरिः इत्येते शाण्डिलास्तेषां त्रयः प्रवराः 'काश्यपावत्सारशाण्डि-

१ स्पेम्भा उ. पाठः । २ कम्बोदरिः उ. पाठः । ३ वंदलः उ. पाठः । ४ बहुदकयः उ. पाठः ।

स्य ' इति । १ ' काश्यपावत्सारदैवल ' इति वा । २ ' काश्यपावत्सारा-
सित ' इति वा । ३ ' शाण्डित्यासितदैवल ' इति वा । ४ ' काश्यपासि-
तदैवल ' इति वा । इतिशाण्डिल्यगणः ।

आपस्तम्बसूत्रे निरुपदाः कश्यपा उक्ताः । रेमशाण्डिलास्तु व्याप्या-
रुयाप्या वा । ' देवलासित ' इति । ' काश्यपदेवलासित ' इति ।
कश्यपानां सर्वेषामविवाहः ।

इति कश्यपनिर्णयः ।

अथागस्त्यः । ते त्रयः । आद्यागस्त्यः साम्भवाहाः सोमवाहाश्चेति । त
उच्यन्ते ।

अगस्त्यः विशालाद्याः शालङ्कयना औवहनयः कुत्मापदण्डिनाः
पर्णाश्वः सावर्णिः वषन्धयः वैरणयः दुधोदरयः सौचपयः शास्त्रातयाः
मौजिकराः शत्रयः हृद्योमाः शाण्डिवाराः पयोद्रताः हरित्रीवाः रौहि-
ण्याः मौसलयः इत्येतेऽगस्त्यः । तेषां त्रयः प्रवराः ' आगस्त्यवार्क्य-
च्युतेष्मवाह ' इति ॥ अन्यत्र तु चत्वारः प्रवरा उक्ताः ।

श्मवाहाः इच्छवाहाः साम्भवाहाः सोमवाहाः यज्ञवाहाश्चेति ।
श्मवाहानां त्रयः ' आगस्त्यवार्क्यच्युतेष्मवाह ' इति ।

साम्भवाहानाम् ' आगस्त्यवार्क्यच्युतसाम्भवाह ' इति ॥

सोमवाहानाम् ' आगस्त्यवार्क्यच्युतसोमवाह ' इति ।

यज्ञवाहानाम् ' आगस्त्यवार्क्यच्युतेष्मवाह ' इति ॥

कात्यायनलौगाक्षिभ्यामगस्तिगणमध्ये पुलस्तः पुलहः ऋतुः इत्याद्युक्त्वा
' आगस्त्यमाहेन्द्रमायोमुव ' इति । इति प्रवरा उक्ताः । ततः पूरणादीनुक्त्वा
' आगस्त्यपौर्णमासपौरण ' इति प्रवरा उक्ताः । सत्यापादस्तु आद्यागस्तीननु-
क्रम्य ' आगस्त्यवार्क्यच्युतेष्मवाह ' इति त्रीन् । आगस्त्यानां सर्वेषामविवाहः ।

इत्यगस्त्यनिर्णयः ।

द्वयमुक्त्वा अथ व्यामुष्यायणाः । तत्र भरद्वाजानां केवलद्विरसामग्रीणां
यणाः । कश्यपानां वसिष्ठानां विश्वामित्राणां च व्यामुष्यायणाः ।
नान्येषाम् । त उच्यन्ते ॥ तत्र संकुतिगणो व्यामुष्यायणः । स यथा ।
संकृतयः मेलकाः पौलस्त्येण्डिशंलुशैवगवाः परिमवास्तारकायाः हरित्रीवाः
ऐतरेयाः फेगायाः आरायणाः आश्वलायनाः औतायनाः आमायणाः

आर्यभयः चान्द्रायणाः आघ्रापयः पूतिमापाः इत्येते संकृतयस्तेषां त्र्यार्षेयः
 ' आङ्घ्रिरससांकृत्यगौरिवीत ' इति । आश्वलायनस्तु ' शाक्त्यगौरिवीत-
 सांकृत्य ' इति प्रवरानाह । एतैः पूर्वोक्तैः परस्परं चतुर्विधवसिष्ठैश्च सह
 न विवाहः । चतुर्विंशति(मत)टीकायां तु कश्यपैस्त्रिभिरविवाह इत्युक्तम् ।
 श्लोकोऽप्युक्तः—

काश्यपेयगणस्यापि वसिष्ठस्य गणस्य च ।

संकृतिपूतिमापाभ्यां विवाहो न परस्परम् ॥ इति ।

तत्राकरो मृत्युः । लौगाक्षीणां त्रयः प्रवराः ' काश्यपावत्सारवासिष्ठ ' इति ॥ एषां वासिष्ठकश्यपैरविवाहः । तथा धनञ्जयानां विश्वामित्रात्रिभिरविवाहः । एवं वामरथ्यानां जातूकर्ण्यानां वसिष्ठात्रिभिरविवाहः । विश्वामित्रभरद्वाजैः शौङ्गशैशिरीणां न विवाहः । अस्य प्रवराः । ' आङ्घ्रिरसवार्हस्पत्यभारद्वाजकात्याल्कील ' इति । कश्चित्तु देवरातेन विश्वामित्रजमदग्निभिः सह न विवाह इत्युक्तम् ॥ तत्र केषांचित्काशीस्थानामनादरः । विपरीतानुष्ठानात् । दक्षिणदेशे तु न कुर्वन्ति । तत्र मूलं [प्रयोगपारिजाते संग्रहे—

जमदग्निगणस्यापि विश्वामित्रगणस्य च ।

न देवरातगोत्रेण विवाहः स्यात्परस्परम् ॥ इति ।

हरिवंशे तु—

और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महायशाः ।

जमदग्निस्तपोवीर्यो जज्ञे ब्रह्मविदां वरः ॥

मध्यमश्च शुनःशेषः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः ।

इत्युक्त्वा—देवैर्दत्तः शुनःशेषो विश्वामित्राय भार्गवः ॥

देवैर्दत्तः स वै यस्माद्देवरातस्त्रतोऽभवत् ॥

इति देवरातस्य जमदग्निसंबन्धकथनाज्जामदग्न्यत्वमुक्तम् ।] मृग्यम् ।

इति व्यामुष्यायणाः ।

यत्तु ' मानवेति वा सर्वेषाम् ' इति प्रवर उक्तः स वरणे न तु विवाहादौ तस्योपयोगः ॥ राजन्यवैश्यानां समानार्पयत्वादिकं पुरोहित-
 गोत्रादिभिर्विचारणीयम् ।

१ कश्यपैस्त्रिभिरिति क पाठः । २ गणस्येत्यधिकं क । [३] पञ्चविंशतर्गत्र च. पुस्तके
 इत्यत्रे । मृग्यमिति च नास्ति ।

अथ कश्चिद्विशेषो मृम्यमूलोऽपि लिख्यते ॥ शौद्धशैशिरिणां यथोक्ताः ।
 'आंगिरसवार्हस्पत्यभारद्वाजशौद्धशैशिर' इति वा । त्रयोवा 'आंगिरसका-
 त्यात्कील' इति । 'भारद्वाजकात्यात्कील' इति वा ॥ कपिलानां आङ्गिरस-
 वार्हस्पत्यभारद्वाजचान्दनमातृवचस' इति ॥ एषां विधामित्रभरद्वाजैर्ना-
 न्वयः ॥ धनञ्जयानां 'वैधामित्रमाधुछन्दसधानश्चय' इति । एषानत्रिवि-
 श्वामित्रैर्नान्वयः ॥ लौगाक्षीणां 'काश्यपावत्सारवासिष्ठ' इति । 'वासि-
 ष्ठावत्सारकाश्यप' इति वा । एषां वासिष्ठकाश्यपैरविवाहः । यस्य विस्मर-
 णादिना गोत्रनाशस्तस्य काश्यपगोत्रम् । 'गोत्रनाशे तु काश्यपम्' इति
 हेमाद्रौ व्याघ्रोक्तेः ।

अथात्र स्मृत्यर्थसारीयाः श्लोकाः संप्रहार्यं लिख्यन्ते—

अथात्र गोत्रप्रवरनिर्णयो वर्ण्यतेऽञ्जसा ॥

जमदग्निभरद्वाजविश्वामित्रात्रिगौतमाः ॥ १ ॥

वसिष्ठकश्यपागत्या मुनयो गोत्रकारिणः ॥

यतेषां यान्यपत्यानि तानि गोत्राणि मन्वते ॥ २ ॥

गोत्रप्रवरनिर्णो-
 यकश्लोकाः ।

त्रियमाणतया वाऽपि सत्तया वाऽनुवर्तनम् ॥

एकस्य दृश्यते यत्र तत्रोर्ध्वं तस्य कथ्यते ॥ ३ ॥

समानमुनिभूयस्त्वमेकप्रवरतामपि ॥

समानप्रवरत्वं च द्वेधा बौधायनोऽग्रणीत् ॥ ४ ॥

मुनिप्रणीतप्रवरैरुनपञ्चाशता वयम् ॥

अनन्तान्यपि गोत्राणि चाङ्गीकृत्याभिदध्महे ॥ ५ ॥

जामदग्न्या वत्सविदावाट्टिपेणाः परस्परम् ॥

नान्वियुः प्रवरैक्येन समोत्रत्वेन चादिमौ ॥ ६ ॥

यस्का मित्रयुवो वैन्याः शुनकाः प्रवरैक्यतः ॥

स्वं स्वं हित्वा गणं सर्वं विवदेयुः परावरैः ॥ ७ ॥

उक्ताः सप्त मृगोर्वेदा वक्ष्यन्तेऽङ्गिरसो रणाः ॥

गौतमाः सप्त चायास्याः शरद्वन्तास्तथा परे ॥ ८ ॥

कौमाण्डार्दीर्घतमसस्ततः कारेणुपालयः ॥

वामदेवा औशनसा गोत्रैक्यान्नान्वियुर्मथः ॥ ९ ॥

केवलाङ्गिरसाश्रौके विष्णुवृद्धाः सकण्वजाः ॥

हरिता रथीतराश्च मुद्रलाः प्रवरैक्यतः ॥ १० ॥

- स्वं स्वं हित्वा गणं सर्वे विवहेयुः परावरैः ॥
 षोडशाङ्गिरसस्त्रेधा प्रोक्ताः संकृतयस्तथा ॥ ११ ॥
 संकृतीनां द्विवंशत्वाद्वासिष्ठैश्च चतुर्विधैः ॥
 स्वर्गायैः सगोत्रत्वात्परैक्याच्च नान्वियुः ॥ १२ ॥
 - चत्वारोऽत्रय आद्यात्रिबाहूतकगविष्टिराः ॥
 मुद्रलाश्चान्त्यगोत्रैक्यात्परैक्याच्च नान्वियुः ॥ १३ ॥
 त्रयश्च कश्यपगणा निघ्नुवा रेभशण्डिलाः ॥
 गोत्रैक्यात्परैक्याच्च नोद्वहेयुः परस्परम् ॥ १४ ॥
 वासिष्ठैः कश्यपैर्नित्यं लौगाक्षीणामनन्वयः ॥
 अहं वसिष्ठतोक्तिस्तु प्रयाजाद्यादिगोचरा ॥ १५ ॥
 वसिष्ठाः कुण्डिनाश्चैवमुपमन्युपराशराः ॥
 वसिष्ठा इति चत्वारो गोत्रैक्यान्नान्वियुर्भिधः ॥ १६ ॥
 कुशिका रोहितगणा रौक्थंकाः कामकायनाः ॥
 कता धनञ्जया आज्ञा अधमर्पणपूरणाः ॥ १७ ॥
 इन्द्रकौशिकजाश्चेति विश्वामित्रगणा दश ॥
 नोद्वहेयुः सगोत्रत्वात्कचिच्च प्रवरैक्यतः ॥ १८ ॥
 अगस्तयः साम्भवाहाः सोमवाहा इति त्रयः ॥
 गोत्रैक्यात्परैक्याच्च नोद्वहेयुः परस्परम् ॥ १९ ॥
 चर्गा एकोन पञ्चाशत्यासिद्धा मुनिभिः स्मृताः ॥
 अप्रसिद्धाः परे वंश्या अन्तर्भूता इहैव ते ॥ २० ॥
 विश्वामित्रात्रिगोत्रेण नोद्वहेयुर्बनञ्जयाः ॥
 अत्रेस्तु पुत्रिकापुत्रा वामरध्यादयस्तथा ॥ २१ ॥
 तथैव जातूकर्ण्याश्च वसिष्ठैरत्रिभिः सह ॥
 भरद्वाजेन शुद्धेन विश्वामित्रस्य शैशिरेः ॥ २२ ॥
 क्षेत्रे जातो द्विगोत्रर्षिः प्रोच्यते शौद्धशैशिरिः ॥
 - विश्वामित्रभरद्वाजैस्तज्जानां तेन नान्वयः ॥ २३ ॥
 कपिलानां भरद्वाजैर्विश्वामिपैश्च नान्वयः ॥
 गुरोः सगोत्रप्रवरा नोद्वाह्या क्षत्रविद्वजैः ॥ २४ ॥
 सगोत्राद्यनभिज्ञैश्च विप्रैराचार्यगोत्रजाः ॥

दानादिनान्यंगोत्राः स्युरक्षात्सुगुणोत्रिणः ॥ २५ ॥

समानप्रवरोद्वाहनिषेवः क्षत्रवैश्ययोः ।

प्रवरान्मानवेत्यस्मात्प्रवरान्मानोचरः ॥ २६ ॥

इत्थं सगोत्रसंबन्धविधाहविषये स्थिते ।

यदि कश्चिज्ज्ञानतस्तां कन्यामूढोपमच्छति ॥ २७ ॥

गुरुत्त्वप्रताच्छुद्धयेद्गर्भस्तज्जोऽन्त्यतां व्रजेत् ।

भोगस्तस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिव ॥ २८ ॥

अत्र प्रायश्चित्तप्रपञ्चः प्रायश्चित्तमयूखे कथ्यते ।

जामदग्न्या वत्सविदा आर्ष्टिणेणास्तथैव च ।

पञ्चावत्तिन एकैते अन्ये चतुरवत्तिनः । ॥ २९ ॥

अर्थतः पूर्वमेव व्याख्यातानि पद्यानि । इह कपिलनामित्यर्द्धं प्रक्षिप्त-
मिति दीपाकृतः ।

सगोत्रसप्रवरपरिणये प्रायश्चित्तमुक्तं मदनपारिजाते शातातपेन—

परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथा ।

त्यागं कृत्वा द्विजस्तस्यास्तत्तश्चान्द्रायणं चरेत् ॥

आपस्तम्बः—

समानगोत्रप्रवरां कन्यामूढबोपगम्य वा ।

तस्यामुत्पाद्य षण्डालं ग्राह्यप्यादेव हीयते ॥

समानप्रवरां कन्यामेकगोत्रमथापि वा ।

निवाहयति यो मूढस्तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥

अस्तृभ्य तां ततो भार्या मातृवत्परिपालयेत् ।

अत्र प्रमादेन परिणयनमात्रे चान्द्रायणादि । अत्र गोत्रप्रवरनिर्णये षण्ड-
वत्तन्व्यमप्युपयोगाभावाद्विस्मृतिभयाच्च नोक्तम् । विचारबाहुल्यमिहासुना
त्रैतनिरणये द्रष्टव्यम् ।

इति कन्यालक्षणादि ।

एतानेव धर्मान्वरोऽतिदिशति याज्ञवल्क्यः—

एतैरेव गुणैर्युक्तः संवर्णः ओत्रियो वरः ।

वरगुणाः कलत्परीक्षितः पुंस्त्वे युवा भीमाञ्जनप्रियः ॥ इति ।

अत्र भ्रातृमदनन्त्यपूर्वयवीयस्तरूपगुणत्रयमिनाः सर्वे गुणा अतिदि-
श्यन्ते । सदर्प उक्तमवधौ वा । अस्तृषिण्डादिगुणाविदेशादुभयतः सापि-

ण्ड्यनिवृत्तिरभिप्रेता । तेन वरनिरूपितं कन्यायां कन्यानिरूपितं च वरे
पृथगेव सापिण्ड्यं नतु व्यासज्यवृत्ति उभयानिरूपितमेकमिति पितामह-
चरणाः । पुंस्त्वपरीक्षोक्ता नारदेन—

यस्याप्सु प्लवते वीजं ह्लादि मूत्रं च फेनिलम् ।

पुमान् स्याल्लक्षणेरेतैर्विपरीतस्तु पण्डकः ॥ इति ।

गृह्ये—‘बुद्धिमते कन्यां प्रयच्छेत्’ इति । यमोऽप्याह—

कुञ्जं च शीलं च वपुर्वयश्च विद्यां च विर्त्तं च सनाथतां च ।

एतान्गुणान्सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम् ॥ इति ।

सामुद्रिके—पूर्वमायुः परीक्षेत पञ्चालक्षणमादिशेत् ।

आयुर्हीननराणां हि लक्षणैः किं प्रयोजनम् ॥ इति ।

अन्यानि सामुद्रिकलक्षणानि विस्तरभिया नोक्तानि ।

इति वरगुणाः ।

अथ विवाहक्रमः । याज्ञवल्क्यः—

विवाहक्रमः । तिस्रो वर्णानुपूर्व्येण द्वे तथैका यथाक्रमम् ।

प्राज्ञणक्षत्रियविशां भार्याः स्वाः शूद्रजन्मनः ॥

तिस्र इत्यादिसङ्ख्या सवर्णाव्यतिरेकेण । मनुः—

सवर्णाऽमे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि ।

क्रामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोऽवराः ॥

अत्र प्राञ्चः—रतिपुत्रधर्मार्थत्वेन विवाहस्त्रिविधः । पुत्रार्थो द्विविधः
नित्यः काम्यश्च । अपुत्रस्य यः सुतार्थं विवाहः स नित्यः । एकस्मिन्पुत्रे
जाते बहुपुत्रोत्पादनार्थं यो विवाहः स काम्यः । तत्र नित्ये सवर्णैव
काम्यपुत्रोत्पादने शूद्राव्यतिरिक्ताः । रत्यर्थमनाश्रमित्वदोषपरिहारार्थं वा
शूद्राऽपि परिणेतव्याः । न तु पुत्रोत्पत्त्युद्देशेन ।

यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राचारोपसङ्ग्रहः ।

नैतन्मम मतं यस्मात्तत्राऽत्मा जायते स्वयम् ॥

इति हेत्वभिधानान् । नचैवं शूद्रापुत्रस्य विभागो न संगच्छत इति वा-
च्यम् । रत्यर्थं प्रवृत्तस्यानुपद्वेण पुत्रे जाते वचनस्यार्थवत्त्वात् । यदि
नित्यपुत्रोत्पादनार्थं सवर्णा न लभ्यन्ते तदाऽनुवर्त्यार्थमप्यसवर्णापरिणयन-
मित्याहुः । विशेष उक्तो याज्ञवल्क्येन—

पाणिर्माह्यः सवर्णामु गृहीयात्क्षत्रिया शरम् ।

वैश्या प्रतोदमादद्याद्देदने त्वमजन्मनः ॥ इति ।

विवाहभेदाः ।

तथा—वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोः कृष्टवेदने । इति च ।
अप्रजन्मग्रहणेनोत्तमवर्णग्रहणम् । वैश्यायाः क्षत्रियेण सह विवाहे प्रतोद एव ।
इति विवाहक्रमः ।

अथ विवाहभेदाः—तत्र विवाहशब्दः [व्यर्थः] कन्यापितरं प्रति दानम्—
'अलंकृत्य कन्यामुदकपूर्वा दद्यादेव ग्राह्यो विवाहः' इति श्रुतौ दानविवाह-
शब्दयोः सामानाधिकरण्यात् । वरं प्रति पाणिग्रहणादि । अन्यथा 'उद्गा-
यनआपूर्वमाणपक्षे कल्याणे नक्षत्रे चौलकर्मोपनयनगोदानविवाहः सार्व-
कालमेके विवाहं तेषां पुरस्ताच्चतस्र आज्याहुर्तीर्जुह्यात्' इत्याश्वलायनेन
विवाहात्पूर्वं होम उक्तोऽसंगतः स्यात् । नहि कन्यादानात्पुरस्तादेता
आहुतयः सन्ति ।

मनुः—ग्राह्यो दैवस्तथैवाऽऽर्यः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः ।

विवाहभेदाः । गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचस्त्वष्टमः स्मृतः ॥ इति ।

तत्र क्रमेणैवाष्टानां स्वरूपं फलं चाहऽऽश्वलायनः—'अलंकृत्य कन्या-
मुदकपूर्वा दद्यादेव ग्राह्यो विवाहस्तस्यां जातो द्वादशावरान् द्वादशपरान्नु-
नात्युभयत ऋत्विजे वितते कर्मणि दद्यादलंकृत्य स दैवो दशावरान् दश-
परान्नुनात्युभयतः सह धर्मं चरत इति प्राजापत्योऽष्टावरान्ष्टपरान्नुना-
त्युभयतो गोमिथुनं दत्त्वोपयच्छेत् स आर्यः सप्तावरान्सप्त परान्नुनात्यु-
भयतो मिथः समयं कृत्वोपयच्छेत् स गान्धर्वो धनेनोपतोप्योपयच्छेत् स
आसुरः सुतानां प्रमत्तानां वाऽपहरेत्स पैशाचो हत्वा भित्त्वा च शीर्षाणि
रुदती रुदत्यो हरेत्स राक्षसः' इति ।

एतेषु गुणदोषानाह मनुः—

ग्राह्यादिषु विवाहेषु चतुर्वैवानुपूर्वशः ।

ब्रह्मवर्चास्मिन् पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः ।

इतरेष्ववशिष्टेषु नृशंसानृत्तवादिनः ।

जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मवर्माद्विपः सुताः ॥

नृशंसा हिंसाः । ब्रह्मद्वियो वेदद्विपः । गान्धर्वादिष्वनन्तरं होमादि-
कमपि कार्यम् । तद्विना भार्यात्वानुत्पत्तेः । तथाऽऽह देवलः—

गान्धर्वादिविवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः ।

कर्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समर्थेनाग्निसाक्षिकः ।

वसिष्ठोऽपि—बलादपहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्मृता ।

अन्यस्मै विधिवदेया यया कन्या तथैव सा ॥

अत्र व्यवस्थांमाह मनुः—

विवाहव्य- चतुरो ब्राह्मणस्याऽऽद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः ।
वस्था । राक्षसं क्षत्रियस्यैवमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥ इति ।

राक्षसः क्षत्रियस्य मुख्यः । आसुरो वैश्यशूद्रयोर्मुख्यः । अनुकल्पमाह
स एव—

पदानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोऽवरान् ।

विदूशूद्रयोस्तु तानेव विन्धाद्धर्म्यान्राक्षसान् ॥ इति ।

अस्यार्थः—ब्राह्मणस्य ब्राह्माद्या गान्धर्वान्ताः पडेव नेतरौ । एवं च
क्षत्रियादेर्ब्राह्माद्यनुज्ञा । आसुरादयश्चत्वारः क्षत्रियस्य धर्म्याः । वैश्यशू-
द्रयोरपि राक्षसवर्जमेत एव । एवं च राक्षसं क्षत्रियस्यैव । ब्राह्मणस्य
पद । नेतरौ । क्षत्रियस्य सर्वे । आसुरं निन्दति कश्यपः ।

क्रीता द्रव्येण या नारी न सा पत्नी विधीयते ।

न सा दैवे न सा पित्र्ये दासी तां कवयो विदुः ॥ इति ।

यमः— कन्याविक्रयिणो मूर्खा रहःकिस्विपकारिणः ।

कन्याविक्र- पतन्ति नरके घोरे दहन्त्यासप्तमं कुलम् ॥ इति ।
यिणो निन्दा ।

एतच्चात्मार्थं धनग्रहणे दोषः कन्यार्थं तु न दोषः । यथाह मनुः—

यासां नाऽऽददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः ।

अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यं तु केवलम् ॥

आनृशंस्यमर्मायित्वम् । ब्राह्मणस्यापि पैशाचमनुजानाति वत्सः—

सर्वोपायैरसाध्या स्यात्सुकन्या पुरुषस्य या ।

चौरेणापि विवाहेन सा विवाह्या रहःस्थिता ॥ इति ।

विवाहमध्ये स्त्रीणां रजोदर्शने विशेषमाह यज्ञपाशर्वः—

विवाहे कन्या- विवाहे वितते तन्ने होमकाल उपस्थिते ।
रजोदर्शने कर्त- कन्याया ऋतुरागच्छेत्कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ॥
व्यन् । स्नापयित्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा यथाविधि ।

युञ्जानामाहुतिं हुत्वा ततस्तन्त्रं प्रवर्तयेत् ॥ इति ।

इति विवाहभेदाः ।

अथकालः । अत्र गृहम्—‘उदगयन आपूर्यमाणपक्षे कल्याणे नक्षत्रे
चौलकमोपनयनगोदानविवाहाः’ इति । यत्तु ‘सार्वकालमेके विवाहम्’

इति तदक्षिणायनप्राप्त्यर्थमिति धर्मप्रकाशे पितृमहचरणाः । आसुरादि-
विवाहविषयमिति केचित् । नारदः—

मापफाल्गुनैश्वशसज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः ।

मध्यमः कार्तिको मार्गशीर्षको निन्दिताः परे ॥

त कदाचिद्दक्षेणु भानोराद्राप्रवेशनात् ।

विवाहं देवतानां च प्रतिष्ठां नोपनायनम् ॥

अत्र यद्यपि शेषा निन्दितास्तथापि 'भानोराद्राप्रवेशनात्' इति पुनः
श्रुत्याऽऽपादोऽभ्यनुज्ञातः स च, 'आद्राप्रवेशनात्पूर्वमिति । अत्र च विधि-
निषेधाः सौरमानाभिप्रायेण । यथोक्तं गर्गण—

— सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ साधनः स्मृतः । इति ।

कथयेन चान्द्रमानमप्युक्तम्—

ज्येष्ठमासस्तोद्वाह्यान्नाक्षौरोपनायनम् ।

तिथिवर्षादि निखिलं चान्द्रमानेन गृह्यते ॥ इति ।

मदनरत्ने निहितः ज्येष्ठमासं प्रकन्य—

ज्येष्ठस्य ज्येष्ठकन्याया विवाहो न प्रशस्यते ।

तयोरन्यतरे ज्येष्ठे ज्येष्ठमासो न शस्यते ॥

द्वौ ज्येष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तावेकज्येष्ठं शुभावहम् ॥

ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहे सर्वसंमतम् ।

ज्येष्ठा कन्या वरोऽपि ज्येष्ठः ज्येष्ठमासश्चेति त्रिज्येष्ठम् । ज्येष्ठानक्षत्रेण
चा त्रिज्येष्ठम् । ज्येष्ठानक्षत्रं ज्येष्ठमासः ज्येष्ठा कन्येत्यपि त्रिज्येष्ठम् । चतुर्ज्येष्ठे
त्रिज्येष्ठस्य सद्भावान्निपेक्षप्रवृत्तिरस्त्येव । ज्येष्ठशब्देन त्वाद्यगर्भोत्पन्नमपत्यं,
तदाह श्रीपतिः—

आद्यगर्भदुहितुः सुतस्य वा ज्येष्ठमासि न तु जातु मङ्गलम् । इति ।

तथा षष्ठोऽपि पूर्वमापूर्वमाण उक्तः । गृह्यसूत्रिः कृष्णमप्याह—

शुक्रपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णोऽप्यन्यत्रिकं विना । इति ।

जन्मपञ्चस्तु निषिद्धः—

विवाहे चोपनयने जन्ममासं विवर्जयेत् ।

विशेषाज्जन्मपक्षं तु वसिष्ठाचैरुदाहृतम् ॥ इति ।

तिथ्यादिप्राशस्त्यनिषेधादि ज्योतिःशास्त्राद्वगन्तव्यम् ।

इति विवाहकालनिर्णयः ।

अथ विवाहकालः । बौधायनः—

दद्याद्गुणवते कन्यां नम्रिकां ब्रह्मचारिणे ।

विवाहकालः । अपि वा गुणहीनाय नोपरुन्ध्याद्रजस्वलाम् ॥ इति ।

उपरोधनेन रजस्वलाप्रयोजको न भवेदित्यर्थः । पुराणेऽपि—

यावन्न लज्जया याति कन्या पुरुषसन्निधौ ।

योन्यादीन्नाश्वरूहेत तावद्भवति कन्यका ॥

यमः—अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी ।

दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ इति ।

ऊर्ध्वं द्वादशे वर्षे इत्यर्थः । उक्तं च संवर्तेन—

अष्टमे तु भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी ।

दशमे कन्यका प्रोक्ता द्वादशे वृपली भवेत् ॥

वृपली रजस्वला । यथोक्तं देवलेन—

कन्या च वृपली ज्ञेया वृपली च मृतप्रजा ।

अपरा वृपली ज्ञेया कुमारी या रजस्वला ॥ इति ।

यमस्तु दोषमाह—

विवाहे दोषाः । प्राप्ते द्वादशके वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति ।

मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिबति शोणितम् ॥

द्वादशवर्षप्रहर्षं प्रायिकम् । कस्याश्चित्तत्रापि तद्दर्शनाभावात् । अतो रजोदर्शनं विवाहात्पूर्वं यथा न भवति तथा कुर्यादित्युक्तं भवति । अतश्च—

त्रिंशद्वर्षो बहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ।

इत्यादिमनूक्तिः संगच्छते । अस्याश्च ग्रहणेऽपि दोषमाह यमः—

यस्तां समुद्रहेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः ।

असंभाष्यो ह्यपाङ्गेयः स विप्रो वृपलीपतिः ॥

यत्तु मनुः—काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमन्यपि ।

नत्वेपैतां प्रयच्छेत् गुणहीनाय कर्हिचित् । इति ।

तदपि शब्दात्कामशब्दाच्च न स्वार्थपरम् । किंतु गुणवते दानप्रशंसार्थम् । अग्रे स्वयमेव बाहुल्येन दोषाभिधानात् । कन्यादाने फलमाह मनुः—

नामिहोत्रादिभिस्तत्स्याद्रक्षातो ब्राह्मणस्य वा ।

यत्कन्यां विधिवदत्त्वा फलमाप्नोति मानवः ॥ इति ।

सालंकृतिकन्यादाने विशेषमाह संवर्तः—

अलंकृत्य तु यः कन्यां भूषणाच्छादनादिभिः

दत्त्वा स्वर्गमावाप्नोति पूज्यत वासवादिभिः ॥

कूपदध्नाश्वमेधी च प्राणदाता भयेषु च ।

समं यान्ति रथा एषां त्रयो वै नात्र संशयः ॥ इति ।

‘सलंकृत्यालंकृतां कन्यां यो ददाति स कूपदः’ इति कोशः । कचि-
त्कूलुद इति पाठः । न चेदं फलश्रवणात्काम्यमेवेति वाच्यम्, अप्रदाने
दोषश्रवणान् । अतो जातेष्टिवन्नित्यं काम्यं च । तथा कालान्तरमपि—

वैयाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः परः । इति ।

ये उपनयने कालाः पञ्चमवर्षादयस्त एव कन्याविवाहे । मनुविशेषमाह—

वत्कृष्टायानुरूपाय वराय सद्गृहाय च ।

अप्राप्तमपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्विचक्षणः ॥

अप्राप्तां कालमप्राप्तमित्यर्थः । वरानुरोधेन देयेत्यर्थः ।

इति विवाहकालः ।

अथ दातृकर्मः । याज्ञवल्क्यः—

पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा ।

कन्यादा- कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतित्वः परः परः ।

पृक्तमः । अप्रयच्छन् समाप्नोति भूणहत्यामृतावृत्तौ ॥

नारदेन त्वन्येऽप्युक्ताः—

पिता दद्यात्स्वयं कन्यां भ्राता वानुमेवे पितुः ।

मातामहो मातुलश्च सकुल्यो वान्धवस्तथा ॥

माता त्वभाये दातृणां प्रकृतौ यदि वर्तते ॥

तस्यामप्रकृतिस्थायां कन्यां ददुः स्वजातयः ॥

प्रकृतित्व उन्मादादिदोषशून्यः । बयोविशेषेण फलमाह मरीचिः—

कन्यावयो- गौरीं ददन्नाकपृष्ठं वैकुण्ठं रोहिणीं ददत् ।

विशेषण दान- कन्यां ददद्ब्रह्मलोकं रौरवं तु रजस्वलाम् ॥ इति ।

फलविशेषः ।

गौर्यादिवस्वरूपमुक्तं प्राक् । यदि ऋतुदर्शनेऽपि चेन्न ददाति तदा

कन्या वर्षत्रयं प्रतीक्ष्य स्वयमेव वरयेत् । तदाह बौधायनः—

स्वयंवरणम् । त्रीणि वर्षाण्यनुमती काङ्क्षेत् पितृशासनम् ।

ततश्चतुर्थं वर्षं तु विन्देत्तु सद्दर्शं पतिम् ॥

यत्तु विष्णुः—ऋतुत्रयमुपास्यैव कन्या कुर्यात्स्वयंवरम् । इति ।

तद्गुणवद्भरविषयम् । इयं प्रतीक्षा दातृसद्भावे । यदा तु कोऽपि दाता नास्ति तदा राजा दद्यात् । यथाह नारदः—

यदा तु कश्चिन्नैव स्यात्कन्या राजानमाव्रजेत् । इति ।

यदा राजाऽपि न ददाति तदा स्वयंवरं कुर्यात् । याज्ञवल्क्यः—

गम्यं त्वभावे दातृणां कन्या कुर्यात्स्वयंवरम् । इति ।

गम्यं गमनार्हम् । तथा पित्राज्ञयाऽपि स्वयंवर उक्तो भारते सावित्र्युपाख्याने—

पुत्रि प्रदानकालस्ते न च कश्चिद्गृणोति माम् ।

स्वयमन्विच्छ भर्तारं गुणैः सदृशमात्मनः ॥

तथा नलोपाख्यानेऽपि—

स समीक्ष्य महीपालः स्वां सुतां प्राप्तयौवनाम् ।

अपश्यदात्मनः कार्यं वमयन्त्याः स्वयंवरम् ॥ इति ।

स्कान्दे विशेषः—भेलंकृत्य सुवर्णेन परकीयां तु कन्यकाम् ।

धर्मेण विधिना दातुमसंगोत्रोऽपि युज्यते ॥ इति ।

तत्फलं तत्रैव—अनाथां, कन्यकां दृष्ट्वा सदृशाभ्यधिके वरे ।

द्विगुणं फलमाप्नोति कन्यादाने यदीरितम् ॥ इति ।

अतोऽन्यकन्याऽन्येनापि धर्मार्थं देया । इति दातृस्वयंवरनिर्णयः ।

अथ दत्तापहारः । तत्र दत्तापहारे दण्डमाह याज्ञवल्क्यः—

सकृत्प्रदीयते कन्या हरस्तां चौरदण्डभाक् । इति ।

दत्तकन्या-
पहारविषये
दण्डादि ।

नारदोऽपि—दत्तां न्यायेन यः कन्यां वराय न ददाति ताम् ।

अदुष्टश्चेद्भारो राज्ञा न दण्ड्यस्तत्र चोरवन् ॥

दत्तां वाग्दत्ताम् । अदुष्टश्चेदित्यनेन दुष्टाय न देयेति गम्यते । उक्तं च गौतमेन—‘प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात्’ इति । याज्ञवल्क्योऽपि—

दत्तामपि हरेत्पूर्वाच्चेत्याश्चेद्भार आव्रजेत् । इति ।

यत्तु मनुनोक्तम्—एतत्तु न परे चतुर्नापरे जातु साधवः ।

यदन्यस्याभ्यनुज्ञाय नरस्यान्यस्य दीयते ॥

यश्च—सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते । इति ।

तदोपवर्जितविषयम् । दुष्टेनापि यदि पाणिप्रहणसमयाद्यन्तं क्रियते ततो नैव प्राप्ता । अत एव नारदः—

स्त्रीपुंसयोस्तु संवन्धाद्वरणं प्राग्विर्भाव्यते ।

वरणाद्ग्रहणं पाणेः स संस्कारो विलक्षणः ।

तयोरनियतं प्रोक्तं वरणं दोषदर्शनात् ॥ इति ।

तयोर्वरणपाणिग्रहणयोर्मध्ये वरणमनियतं यतो तदोषदर्शनात्पत्याव-
र्तत इत्यर्थः ।

यमोऽपि—नोदकेन न वाचा वा कन्यायाः पतिरुच्यते ।

पाणिग्रहणसंस्कारात्पतिः स्यात्सप्तमे पदे ॥ इति ।

अनेन च सप्तपद्याः प्राम्बरसरणे न वैवर्ध्यामिति गम्यते । वसिष्ठेनाप्युक्तम्—

अग्निर्वाचा च दत्तायां त्रियेताऽऽदौ वरो यदि ।

न च मन्त्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा ॥ इति ।

वरणोत्तरं देशान्तरगमन आह कात्यायनः—

शुल्कदानुद्देश्या- वरयित्वा तु यः कश्चित्प्रणश्येत्पुरुषो यदा ।

नारगमनाविपुक्त-
श्च यम् ।

अत्वागमांस्त्रीनतीत्य कन्याऽन्यं वरयेत्पतिम् ॥ इति ।

प्रणश्येद्देशान्तरं गच्छेदिति साधकः । अन्यथा प्रतीक्षाचैयर्ध्यात् । एवं च

प्रतिगृह्य तु यः कन्यां वरो देशान्तरं श्रजेत् ।

त्रीनृतून्समतिरुम्य कन्याऽन्यं वरयेद्द्वारम् ॥

इति नारदीयेनाप्येकार्थता भवति । शुल्कदानुद्देशान्तरगतौ कात्या-
यन आह—

प्रदाय शुल्कं गच्छेद्यः कन्यायाः स्त्रीभूतं तथा ।

धार्या सा कर्ममेकं तु देवाऽन्यस्मै विधानतः ॥ इति ।

शुल्कवमरणे मनुराह—

कन्यायां दत्तशुल्कायां त्रियेत यदि शुल्कदः ।

देवराय प्रदातव्या यदि कन्याऽनुमन्यते ॥

यदिकन्यानुमन्यते इत्यनेन कन्यानुमतौ देवराय यदि तु देवराति-
रित्तमेवानुमन्यते तदा तस्मा एव ।

बहुभिर्निर्दोषैर्वरणे कृते विशेषमाह कात्यायनः—

अनेकेभ्यो हि दत्तायामनूढायां तु तत्र वै ।

पूर्वागतश्च सर्वेषां लभेताद्यवरः सुताम् ॥

पश्चाद्द्वारेण यद्वत्तं तस्याः प्रतिलभेत सः ।

अयागच्छेत्त वोढायां दत्तं पूर्ववरो हरेत् ॥

अन्यस्मै दत्तायां तस्यां यच्छुल्कं तदेव लभेतेत्यर्थः । सदोपाय प्रथमं प्रति-
श्रुताऽपि न देया—

दत्तामपि हरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वर आत्रजेत् । इति स्मृतेः ।

वसिष्ठस्तु पाणिग्रहणोत्तरमपि ग्राह्येत्याह—

पाणिग्रहे कृते कन्या केवलं मन्त्रसंस्कृता ।

सा चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति ॥

नारदोऽपि—उद्वाहिताऽपि सा कन्या न चेत्संप्राप्तमैधुना ।

पुनः संस्कारमर्हत्सा यया कन्या तथैव सा ॥

अयं चोद्वाहोत्तरमपहारः कलौ निषिद्धः । कलिनिषिद्धानि च सम-
यमयूखे वक्ष्यन्ते । वाग्दानोत्तरं तु कन्यादोषोपलम्भे गृहीताया अपि
त्यागमाह मनुः—

विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम् । इति

विगर्हितां दुष्टाम् । नारदः—

नादुष्टां दूषयेत्कन्यां नादुष्टं दूषयेद्वरम् ।

दोषे सति न दोषः स्यादन्योन्यं त्यजतोर्द्वयोः ॥

कन्यादोषा नारदेन दर्शिताः—

कन्या- दीर्घकुत्सितरोगार्ता व्यङ्गा संस्पृष्टमैधुना ।

दोषाः । धृष्टाऽन्याहितभावा वा कन्या दुष्टा प्रकीर्तिता ॥ इति ।

अन्यस्मिन्पुरुषान्तरे आहितः कृतो भावो मानसाभित्तापो यया सा तथोक्ता ।

अदुष्टात्पागे दोषमाह याज्ञवल्क्यः—

अदुष्टां च त्यजन्दण्ड्यो दूषयंस्तु सृपा शतम् । इति ।

कन्यादोषमनाख्याय ददत्तित्रादिरपि दण्ड्य इत्याह स एव—

अनाख्याय दददोषं दण्ड्य उत्तमसाहसम् । इति ।

इतिदत्तापहारनिर्णयः ॥

अधिवेदने निमित्तान्याह याज्ञवल्क्यः—

अधिवेदननि- सुरापी व्याधिता धूर्ता वध्यार्थेभ्यःप्रियंवदा ।

निशानि । स्त्रीप्रसूत्राधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा ॥

धूर्ता त्रिसंवादशीला । अधिवेदनं भार्यान्तरपरिग्रहः । विशेषमाह मनुः—

मशपाऽस्त्यवृत्ता च प्रतिलूत्र्य च या भवेत् ।

व्याधिता चाधिवेत्तव्या हिंसाऽर्थेप्री च सर्वदा ॥

कन्याऽष्टमेऽधिवेद्याऽन्दे दशमे तु मृतप्रजा ।

एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥

एतेषु निमित्तेष्वधिवेत्तव्येत्यभ्यनुज्ञासामात्रं नत्वधिवेदनाकरणे प्रत्यवायः ॥

चाज्ञवत्यः—

अधिविज्ञा तु भर्तव्या महदेनोऽन्यथा भवेत् ।

अधिविज्ञस्त्रियै देयमाधिवेदनिकं समम् ।

न इत्तं स्त्रीधनं यासां वृत्ते त्वर्थं प्रवर्त्ययेत् ॥ इति ।

इत्यधिवेदनम् ।

अथ विवाहोपनयनादौ निषेधास्त उच्यन्ते । सारावल्याम्—

विवाहोपनय- एकमातृप्रसूतानामेकस्मिन्वत्सरे यदि ।

नादौ निषेधाः । विवाहं नैव कुर्वन्ति कुर्वन्ति तु ततोऽन्यथा ॥

(ततोऽन्यथा) भिन्नामातृकयोर्वत्सरभेदेन वा । प्रयोगपारिजाते स्मृत्यन्तरे—

विवाहसंश्लेषकजन्यानामेकस्मिन्वदये कुले ।

नाहं करोत्येकवर्षे स्यादेका विधवा तयोः ॥

उदयो लसम् । कचिदपवादस्तत्रैव—

एकोदरीकरतलग्रहणं यदि स्यादेकोदरस्थवरयोः कुलनाशनं च ।

एकावदके तु विधवा भवतीति कन्या नयन्तरे तु शुभदं पृथुशैलरोधे ॥

विशेषमाह नारदः—

पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये ।

न कार्यं व्रतमुद्वाहान्मङ्गले नाप्यमङ्गलम् ॥

विवाहश्चैव कन्यानां पण्मासाभ्यन्तरे यदि ।

असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत् ॥ इति ।

मङ्गले विवाहादौ । अमङ्गलं व्रतादि । अनुकल्पमाह नारदः—

पुत्रीपरिणयादूर्ध्वं यावद्दिनचतुष्टयम् ।

पुत्र्यन्तरस्य कुर्वीत नोद्वाहमिति सूरयः ॥

अनुकल्पान्तरमाह स एव—

भ्रातृयुग्मे स्वसृयुग्मे भ्रातृस्वसृयुगे तथा ।

न जालु मण्डनं कार्यमेकस्मिन्मण्डपेऽहनि ॥ इति ।

भ्रातृयुग्मस्य स्वसृयुग्मस्य भ्रातृस्वसृयुग्मस्य चैकस्मिन्मण्डपेऽहनेकस्मिन्मण्डपे मण्डनं न कुर्यात् । पृथगर्थं निषेधः । समुच्चये भावाभावात् । इदं

च वचनद्वयं भिन्नमातृजविषयमिति केचित् । तत्र सानाभावान् ।
एकोदराहितैकशुक्रजन्यापत्ययोर्मुख्यस्य भ्रातृशब्दस्यान्यत्र गौणत्वाच्च ।

अन्यं विशेषमाह नारदः—

प्रत्युद्वाहो नैव कार्यों नैकस्मै दुहितृद्वयम् ।

न चैकजन्मनोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके ।

नूनं कदाचिदुद्वाहौ नैकदा मुण्डनद्वयम् ॥ इति ।

नूनं कदाचिदुद्वाहौ इति सापत्नपरम् । मुण्डनद्वयं सापत्नयो-
रपि न भवति । दुहितृद्वयं न देयमित्यध्याहारः । कन्यके न देये इति
च । विशेषान्तरं संहितासारावल्याम्—

सापत्नयोर्मुण्डनमूर्ध्वमिष्टं न पुत्रयोर्मुण्डनमेकवर्षे ।

न पुंविवाहोर्ध्वमृतपुत्रयेऽपि विवाहकार्यं दुहितुः प्रकुर्यात् ॥

अत्रापवादः—

न मण्डनाद्यापि हि मुण्डनं तु गोत्रैकतायां यदि नादभेदः ।

इत्यपि कचिन् । मुण्डनं चोलम् ।

मुण्डनं चोलमित्युक्तं प्रतोद्वाहौ तु मण्डनम् । इति ।

अत्रिः—कुले ऋतुत्रयादर्वाङ्मण्डनादपि मुण्डनम् ।

प्रवेशाग्निर्गमं चैव न कुर्यान्मण्डनत्रयम् ॥

पुत्रीपरिणयादूर्ध्वं पुत्रस्योद्वाहनक्रिया ।

न दुष्टा स्थान्मातृभेदे गृहभेदेऽपि चैव हि ॥

पुरुषत्रयपर्यन्तं प्रतिकूलं सगोत्रिणाम् ।

प्रवेशनिर्गमौ तद्वत्तथा मण्डनमुण्डने ॥ इति ।

ऋतुत्रयापवाद उक्तः सारावल्याम्—

फाल्गुने चैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहोपनायने ।

भेदादब्दस्य कुर्वीत नर्तुत्रयविलङ्घनम् ॥ इति ।

यमल्योर्विशेषः—

एकस्मिन्वत्सरे चैव वासरे मण्डपे तथा ।

कर्तव्यं मङ्गलं स्वस्रोर्भ्रात्रोर्यमलजातयोः ॥ इति ।

पुत्रोद्वाहः प्रवेशाख्यः कन्योद्वाहस्तु निर्गमः ॥

इति मण्डनमुण्डनविचारः ।

हारीतोऽन्यं विगेपमाह—

स्पर्शिता स्याद्यदा कन्या वार्चाऽपि हुद्केन च ।

अन्तरा प्रातिकूल्यं चेत्पूर्वोदा विववा भवेत् ।

अचिरेणैव कालेन पशुमृत्यधनक्षयः ॥ इति ।

प्रातिकूल्यं मरणम् । दक्षः—

दम्पत्योः पितरौ भ्राता सोपनीतः सहोदरः ।

पितृन्व्यसदृशश्चैव पितामहपितामही ।

एषामन्यतमे नष्टे नोद्वेहेत्तां यधूं वरः ॥

ज्योतिःप्रकाशे—प्रतिकूलेऽपि कर्तव्यो विवाहो मासतः परम् ।

क्षान्तिं विवाय गां दत्त्वा वाग्दानादि चरेत्पुनः ॥ इति ।

शान्तिर्नवग्रहयज्ञादिः । इति प्रतिकूलविचारः ।

इति निषेधाः ।

[अथ विवाहाग्न्यनुगमनादौ प्रायश्चित्तम् । तत्र गृहप्रवेशनीयहोमात्पूर्वं द्वादशरात्रमध्ये विवाहाग्न्यनुगमने श्रोत्रियागारादग्निमानीयाऽऽयतने स्थापयित्वा परिसमूहनादि कृत्वाऽऽज्यं संकृत्य 'अयाश्च' इत्येकामाहुतिं हुत्वा नित्यहोमं कुर्यात् । द्वादशरात्रोत्तरमाज्याहुतयो लाजाहुतयश्चाऽऽवर्तनीयाः । इदं च 'नित्यानुगृहीतः स्यात्' इति सूत्रन्यास्यावसरे देवस्वामिभाष्ये द्रव्यमुक्तम् 'उपशान्तेऽन्यमग्निमाहृत्य होमकार्यं आहरणप्रायश्चित्तं कृत्वा परिचरणं स्यात्' इति । नारायणेन वृत्तिकृता तु 'यदि विवाहाग्निर्नष्टः स्यान्नष्टाहरणप्रायश्चित्तं कृत्वा परिचरेत्' इत्युक्त्वा 'यदि तूपशाम्येत्सन्तु-प्रसेदित्येके' इति सूत्रव्याख्यावसरे पुनरेवमुक्तम् । अत्र एकेग्रहणाद्य-जमानो वेत्येके 'अयाश्च' इत्येकामाहुतिं जुहुयादित्यन्ये । कुतः शास्त्रान्तरे दर्शनात् इति । अत्र शास्त्रान्तरम् 'उपवासश्चान्यतरस्य भार्यायाः पत्युर्वाऽनु-गतेऽपि वोत्तरया जुहुयात्रोपवसेत्' इत्यापस्तम्बसूत्रम् । अन्यतरस्य कालस्य अन्तो रात्रेर्वा संवन्धादुपवासोऽनशनम् । 'उत्तरया' 'अयाश्च' इत्येतयाऽऽ-व्येन जुहुयात्' इति सुदर्शनभाष्ये स्थितम् । इदमेव देवस्वामिभाष्ये स्पष्टी-कृतम् । गृहप्रवेशनीयहोमोत्तरं द्वादशरात्रमध्येऽनुगमने उक्तप्रायश्चित्तमेव । तदुध्वैतु विवाहहोमस्य गृहप्रवेशनीयहोमस्य चाऽऽवृत्तिरिति वृत्तिग्रन्थे स्प-

१ वाचा वाऽप्युद्केन च इति पाठ्ये के । २ पितृन्व्यस्तादृश इति ड. । ३ अयं कृष्णलिखितः ग्रन्थः च. पुस्तक एव दृश्यते । स च यद्यपि वपुःप्रवेशानन्तरं निवेशयितुमुचितस्तथा-प्यादर्शपुस्तकेऽत्र दृष्टत्वात्तत्रैव स्थापितः ।

ष्टम् । तथाहि गृहप्रवेशनीयसूत्रे 'विवाहाग्निमुपसमाधाय' इत्यत्र विवाहाग्नि-
ग्रहणान्न विवाहहोममात्रेणाग्नेर्गृह्यत्वसिद्धिः, किं तर्हि विवाहहोमगृह-
प्रवेशनीयहोमाभ्यामेवेत्युक्त्योपसंहृतम् । तेनाग्निनाशे होमद्वयं कार्य-
मिति सिद्धमिति । तदनन्तरं पाणिग्रहणसूत्रे नष्टाहरणप्रायश्चित्तमुक्त्वा
मतान्तरमुक्तम् । यदि वैशाख्यो न गृहीतः दायविभागकाले गृह्यते गृहीतो
विनष्टः द्वादशरात्रमतिक्रान्तस्तत उक्तया क्रियया पश्चाद्गृहीतो भवति ।
तत्र विवाहाज्याहुतयो लाजाहुतयो गृहप्रवेशनीयाहुतयश्च हृदयाञ्जनं च
भवति नान्यत् । कन्यासंस्कारत्वाद्धोमद्वयं चात्र समानतन्त्रं स्यादिति । अत्र
सर्वत्र मूलं चतुरध्यायात्मकाश्चलायनगृह्यपरिशिष्टम् । तत्र प्रथमाध्याये
सप्तदशः खण्डः—अथ पुनराधानमनुगतेऽग्निं शिष्टागारादानीयोक्तव्य-
दुपसमाधाय परिसमुह्य परिस्तीर्य पर्युक्ष्याऽऽज्यमुत्पूयायाश्चाग्नि इत्येकामा-
व्याहुतिं हुत्वा यथापूर्वं परिचरेदेवमाद्वादशरात्रादत उर्ध्वं विवाहगृहप्रवेशनी-
यहोमाभ्यामेकतन्त्राभ्यामादध्यात्तत्र विवाहाज्याहुतयो लाजाहुतयो गृह-
प्रवेशनीयाहुतयो हृदयाञ्जनं भवति । कर्तव्यं लाजानावपत्येतत्पुनराधानम् ।
नित्यहोममतीत्य मनस्वत्या चतुर्गृहीतं जुहुयादाद्वादशरात्रादूर्ध्वं पुनराधान-
मेवं कुर्यादिति । गृह्यसप्तगृह्यपरिशिष्टमूलिकाश्चात्र गृह्यकारिकाः ।

औपासनोऽनुगच्छेच्चदुपलेपादि पूर्ववत् ।

आहृत्य श्रोत्रियागाराप्रतिष्ठाप्य हविर्भुजम् ।

अन्यस्माद्धोमकालात्स्त्री नाभीयाद्यदि वा गृही ।

पर्युक्षणादिकं कृत्वा संस्पृश्याऽऽज्यं च पूर्ववत् ।

अयाश्चेत्येतया हुत्वा यथापूर्वं जुहोत्यथ ॥ इति ।

तथा—उपलेपादिकं कुर्यादाधारान्तं विवाहवत् ।

विवाहाज्याहुतीर्हुत्वा लाजहोमो भवेदथ ।

गृहप्रवेशनीयाश्च हुत्वाऽस्या हृदयाञ्जनम् ।

परिणीत्यादि नान्यत्स्याद्वाजानावपते स्वयम् ।

समानतन्त्रकं चेह होमद्वयमिदं भवेत् । इति ।

अस्याग्नेर्नाशापहारयोरिदमेव प्रायश्चित्तं 'यदि तूपशाम्येत्' इति
सूत्रस्य नाशापहारयोः प्रदर्शनार्थत्वात् । अत्र प्रयोगपारिजातग्रन्थ
इत्यम्—'एवं हि रक्षितोऽग्निर्गृहप्रवेशनीयहोमादव्यागनुगतश्चेत्तदा विवाहहोमः
पुनः कार्यः । गृहप्रवेशनीयहोमानन्तरमुपगतश्चेत्तर्हि होमद्वयमपि पुनः कर्त-

व्यमिति गृहप्रवेशनीयहोमसूत्रे वृत्तिकारेणोक्तत्वात्तद्वादशरात्रादावनुसन्धे-
यमिति । अस्माद्विवाहहोमोत्तरं गृहप्रवेशनीयहोमात्पूर्वं द्वादशरात्रमभ्येप्य-
ग्न्यनुगमने विवाहहोमावृत्तिं मन्यन्ते यथाश्रुतमादिष्टः । तद्वृष्टान्ताज्ञान-
विभ्रम्भितम् । यतो गृहप्रवेशनीयहोमोत्तरं द्वादशरात्रोत्तरमेव होमद्वयावृत्ति-
वृत्तिकारादीनामिष्टेत्युक्तमेव । अतस्तद्वादशरात्रीत्यनेनापि द्वादशरात्रोत्तरं
गृहप्रवेशनीयहोमात्पूर्वमग्न्यनुगमने विवाहहोमावृत्तिरिति तद्वन्यार्थो ज्ञेयः ।
न च नित्यहोमारम्भात्पूर्वमग्न्यनुगमने तदावृत्तिः होमारम्भोत्तरं तु प्राय-
श्चित्तमिति शङ्क्यम् । गृहप्रवेशनीयहोमोत्तरं नित्यहोमारम्भात्पूर्वमपि हो
मद्वयावृत्तिप्रसङ्गात्प्रमाणाभावाच्च ।

यत्तु औपासनात्पूर्वं यदि विवाहाग्निः शान्येत तदा प्रायश्चित्तमुक्तं
विश्वादेशै-

उद्वाहोपासनात्पूर्वमनले शान्तिमागते ।

स्थालीपाकं ततः कृत्वा औपासनमथाचरेत् ।

नवनाडीभ्य ऊर्ध्वं चेत्स्थालीपाको भवेन्न वै ।

औपासनं तदा कुर्यात्परशुः सायमेव च ।

इति विधानपारिजात उक्तं तदाश्रयलायनान्यपरम् । आश्रयलायनानां
प्रायश्चित्तार्थं स्थालीपाकाभावात् । वस्तुतस्तु विश्वादर्शप्रत्येऽवर्शनाग्निर्मूल-
मेव । यत्तु आपस्तम्बीयाश्रयलायनीयपद्धतिकारौ सिंगाभट्टकृष्णभट्टौ विवाह-
होमोत्तरमेवाग्निनाशे पुनर्विवाहहोमप्रतिपादकम्-

उद्वाहोपासनात्पूर्वमनले शान्तिमागते ।

पुनर्होमान्तरं कृत्वा फर्मशेषं समापयेत् ।

इत्यापस्तम्बवचनमिति लिखित्तुः तत्प्रवरदेवस्यैकादशाध्यायालाकाप-
स्तम्बस्मृतौ नियन्त्रान्तरे चादर्शनाद्बहुसंग्रहकारप्रयोगपारिजातकारेणालि-
खनास नाऽऽश्वासनीयम् ।

इत्यग्न्यनुगमनप्रायश्चित्तनिर्णयः ।]

अथाशौचनिर्णयः । याज्ञवल्क्यः-

आशौचनि- दाने विवाहे यज्ञे च संप्राप्ते देशविप्लवे ।
र्णय । आपद्यपि च कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते ॥

विष्णुः-त्रतयज्ञविवाहेषु आद्ये होमेऽर्चने जपे ।

प्रारब्धे सूतर्कं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥

प्रारम्भमाह सः—

प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः ।

नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥ इति ।

बृहस्पतिः—

‘ विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके ।

पूर्वसंकल्पितार्थेषु न दोषः परिकीर्तितः ॥ इति ।

पार्श्वशन्मते—

विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके ।

परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः ॥

परैरसगोत्रैः ।

भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके ।

अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे ते शुचयः स्मृताः ॥ इति ।

अन्नं त्याज्यं । तथाच ग्राह्ये—

भोजनाद्वे तु संभुक्ते विप्रे सूतिर्विपद्यते ।

यदि कश्चित्तदोच्छिष्टं शेषं त्यक्त्वा समाहितः ।

आचम्य परकीयेन तोयेन शुचयो द्विजाः । इति ।

आवश्यकत्वे नान्दीश्राद्धावधिरुक्तः स्मृत्यन्तरे—

एकविंशत्यह्यज्ञे विवाहे दश वासराः ।

त्रिपदचौलोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते ॥ इति ।

आरम्भाभावेऽप्यग्रे कालान्तराभावे आशौचाभाव उक्तो विष्णुना—

अनारब्धविशुद्धपर्यं कूटमाण्डैर्जुहुयाद्भूतम् ।

गां दद्यात्पश्चगव्याशी ततः शुध्यति सूतकी ॥

सूतकीर्तिं जननाशौचं प्रत्येवेदं प्रवर्तते । वहुनां संभाराणां संपादितानां

भारणास्तत्तत्राह विष्णुः—

‘ ॥ देवप्रतिष्ठाविवाहयोः पूर्वसंभृतयोरपि ’ इति । आशौचं नेत्यर्थः ॥

इत्याशौचानिर्णयः ।

रजोदोषे वृद्धमनुः—विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला ।

तदा न मङ्गलं कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभेच्छुभिः ।

गर्गः—यस्योद्वाहादिमङ्गल्ये माता यदि रजस्वला ।

तदा न तद्वक्तव्यमायुःश्रयकरं यतः ॥ इति ।

मेधातिथिः—

चौले च व्रतयन्त्रे च विवाहे यज्ञकर्मणि ।
 रजोशेषे भायां रजस्वला यस्य प्रायस्तस्य न शोभनम् ॥
 विधानादि । वधूवरान्यतरयोर्जननी चेद्रजस्वला ।
 तस्याः शुद्धेः परं कार्यं माङ्गल्यं मनुरध्वीत् ॥

वृद्धस्पतिः—वैभ्रज्यं च विवाहे स्याज्जडत्वं व्रतयन्त्रे ।
 चूडायां च शिशोर्मृत्युर्विघ्नं यात्राप्रवेशयोः ॥
 अथ वेदिः ।

तथा—सूतिकोदययोः शुद्धयै गां दद्याद्धोमपूर्वकम् ।
 प्राप्ते कर्मणि शुद्धिः स्वावितरस्मिन्न शुभ्यति ॥
 अस्त्राग्रे मुमुहूर्तस्य रजोदोषे च सङ्गते ।
 द्वियं संपूज्य तत्कुर्याद्वृत्रहत्याभयं नहि ॥
 हैमीं मापमितां पद्मां श्रीसूक्तविधिनाऽर्चयेत् ।
 प्रत्युचं पायसं हुत्वा अभिषेकं समाचरेत् ॥ इति ।

अस्य मूलं मृम्यम् ।

विवाहवेदिमाह नारदः—

हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तैश्चतुरस्तां समन्ततः ।
 रत्नमैश्चतुर्भिः सुहृद्गणैर्वाभगते स्वसन्ततः ॥
 विचित्रितां चित्रकुम्भैर्विविधैस्तोरणाङ्कुरैः ।
 एतद्विवामारोहयेन्मिथुनं सामि श्रेयिकाम् ॥ इति ।
 इतिवेदिः ।

अथ कन्यादानार्थं रात्रावपि स्नानमाह वृद्धयासुबलक्यः—

कन्याया- महणोद्वाहसंग्रान्तियात्रार्तिप्रसवेपु च ।
 नार्थं रात्रावपि स्नानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तदिष्यते ॥
 स्नानागुप्ता ।

विवाहेऽपि रात्रिस्तुजानात्यत्रिः—

मुख्यो विवाहः पूर्वोद्धे मथ्याद्धे चोत्तमोत्तमः ।
 निशायां मथ्यमः प्रोक्तस्त्वपराद्धे तु गर्हितः ॥ इति ।

विवाहश्च कन्यापितरं प्रति दानम् । वरं प्रति पाणिग्रहणादि । कन्या
 मुक्तवताऽपि प्रतिग्राह्येत्याह व्यासः—

भुक्त्वा समुद्रहेत्वन्यां सावित्रीग्रहणं तथा ।

उपोषितः सुतां दद्यादर्चिताय द्विजाय तु ॥ इति ।

सर्वेषु दानेषु प्राङ्मुखो दातोदङ्मुखः प्रतिग्रहीता । कन्यादानं उदङ्मुखो दाता प्राङ्मुखं संप्रदानम्' इति वक्ष्यते दानमयूखे ।

मधुपर्कमाहाऽऽश्वलायनः—

अस्त्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेत्स्नातकायोपस्थिताय' इति उपस्थिताय मधुपर्कः । कन्याप्रतिग्रहार्थमागताय । अस्मिन्मधुपर्के गवालम्भः कलौ न कार्यः पादप्रक्षालने मधुपर्कविशेषेण विशेषमाहाऽऽश्वलायनः—'दक्षिणमग्रे ब्राह्मणाय प्रयच्छेत्सव्यं शूद्राय' इति । अग्रे प्रथमम् । एवं च क्षत्रियवैश्ययोरनियमः । ब्राह्मणग्रहणं द्विजोपलक्षणमिति केचिन् । मधुपर्कश्च भोजनम् । तथाच नारायणेन 'नामांसो मधुपर्को भवति' इति सूत्रव्याख्यान उक्तम् । 'मांसस्य लोके व्यञ्जनस्थानीयत्वात्तत्सहितो मधुपर्को भोजनम्' इति । अयं चार्च्यशाखया कार्यः । तदुक्तं परिशिष्टे—

अर्च्यस्य यस्य या शाखा तच्छाखागृह्यचोदितः ।

मधुपर्कः प्रदातव्योऽप्यन्यशाखेऽपि दातरि ॥ इति ।

याज्ञिकास्तु ज्योतिष्टोमादावन्यशाखीयोऽपि यच्छाखायमात्विज्यं करोति तच्छाखया कुर्वन्ति । तत्संप्रदायमात्रम् । कन्यादानं तु दानमयूखे वक्ष्यते ।

इति मधुपर्कः ।

अथ बधूप्रवेशः । मिहिरः—

बधूप्रवेशः—
विवाहस्य निवृत्तिस्तु चतुर्थेऽहनि रात्रिषु ।
तासु नागवलिः कार्यो विप्राशीर्वाचनं तथा ॥

नागानां हस्तिनां वलिः पूजा । विधिमाह यज्ञपार्श्वः—

चतुर्थे दिवसे रात्रौ लिखेन्मानःसरोवरम् ।

द्विरप्यगर्भं तन्मध्ये गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥

संपूज्याप्सरसश्चैव सोमगन्धर्वपावकान् ।

संपूज्य वाऽश्वहस्तादीनारोप्य स्वगृहं प्रति ॥

संवेशनादिकं कर्म अन्यथा तु व्रजेद्भयम् ।

संवेशनं गृहप्रवेशः । कालदीपे—

शुभकाले गृहे प्राप्तावर्धन्ते संपदः सदा ।

असत्काले गृहप्राप्तौ सर्वनाशो गृहे भवेत् ॥

नारदः—आरभ्योद्वाहदिवसात्पष्ठे वाऽप्यष्टमे दिने ।

वधूप्रवेशः संपत्स्ये दशमेऽथ समे दिने ॥

तथा—‘समवर्षे समे मासि यदि नारी गृहं व्रजेत् ।

आयुष्यं हस्ते भर्तुः सा नारी मरणं व्रजेत् ॥ इति ।

तथा—वधूप्रवेशः प्रथमे तृतीये शुभप्रदः पञ्चमकेऽथवाऽष्टि ।

द्वितीयके वाऽथ चतुर्थके वापठे वियोगामयदुःखदः स्यात् ॥ इति ।

तथा ज्योतिःप्रकाशे—

वामे शुके नवोढायाः सुखं हानिश्च दक्षिणे ।

भनं भान्यं च पृष्ठस्थे सर्वनाशः पुरः स्थिते ॥

नवोढायास्तु वैधव्यं यदुक्तं संमुखे भृगौ ।

तदेवं विबुधैर्ज्ञेयमन्यथा तु द्विरागमे ॥ इति ।

अन्यत्समुद्भूतादि दैवज्ञोदितं ग्राह्यम् ।

इति वधूप्रवेशः ।

मण्डपोद्वासनकालः प्रयोगरत्ने—

समे च दिवसे कुर्यान्मण्डपोद्वासनं बुधः ।

पष्ठं च विपसं नेष्टं मुक्त्वाप । श्वमसप्तमौ ॥

पष्ठं नेष्टमित्यर्थः । विपममपि नेष्टं पञ्चमसप्तमे दिने मुक्त्वा ।

इति मण्डपोद्वासनम् ।

अथ तृतीयमानुषीविवाहनिषेधो मात्स्ये—

तृतीयां मानुषीं नैव चतुर्थीं यः समुद्बहेत् ।

तृतीयमानु- पुत्रपौत्राविसंपन्नः कदुम्बी साम्रिकोऽज्वरः ॥

पौविवाहनिषेधः उद्बहेद्रतिसिद्धयर्थं तृतीयां न कदाचन ।

मोहादज्ञानतो वाऽपि यदि गच्छेत्तु मानुषीम् ॥

नश्यत्येव न संदेहो गर्गस्य वचनं यथा ॥ इति ।

संग्रहे—चतुर्यादिविवाहार्थं तृतीयोऽर्कं समुद्बहेत् ॥ इति ।

अर्कविवाहप्रकारः शान्तिमयूसे वक्ष्यते ।

ज्येष्ठे भ्रातर्यैकतविवाहे कनिष्ठो न विवहेदित्युक्तं चतुर्विंशतिमते—

अनृदज्येष्ठस्य जीवत्पितरि नादध्यादाद्वितामिः स नो यदि ।

विवाहनिषेधः तथैव भ्रातरि ज्येष्ठे न यजेन्न विवाहयेत् ॥

सायबादः । ज्येष्ठभ्रात्रा त्वनुज्ञातः कुर्यादग्निपरिग्रहम् ।

अनुज्ञातोऽपि सन्पित्रा नादध्यान्मनुरब्रवीत् ॥

कचिददोष इत्याह कात्यायनः—

देशान्तरस्थकृवैकवृषणानसहोदरान् ।
 वेश्याभिसक्तपतितशूद्रकल्पातिरोगिणः ।
 जडमूकान्धवधिरकुञ्जवामनकुण्डकान् ॥
 अतिवृद्धानभार्याश्च कृपिसक्तानृपस्य च ।
 धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतोऽकारिणस्तथा ।
 कुहकांस्तस्करांश्चापि परिविन्दन्न दुष्यति ॥

अभार्यान्नैष्ठिकादीन् । अन्यथा दोष इति गम्यते ।

यमलयोर्मध्ये जन्मनैव ज्येष्ठता । वेचिदाधानक्रमेण ज्येष्ठं वर्णयन्तः

यमलयो- पश्चाज्जातस्य पूर्वमाधानं भवतीति तस्यैव ज्येष्ठतामाहुः ।
 ज्येष्ठनिर्णयः । तन्न । आधानप्राथम्येन ज्येष्ठतायां मानाभावात् । अन्यथा
 पत्नीनां पूर्वापरभावे नाधाने जाते उत्तराहितस्य प्रथमोत्पत्तौ ज्येष्ठता न
 स्यात् । आधाने जन्मशब्दाभावाच्च । अतएवाह मनुः—

यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मनो ज्येष्ठता मता ॥ इति ।

मेधातिथिनाऽपि जन्मत एव ज्येष्ठमिति युक्तमस्मिन्विषये । तथाऽप्ये-
 दिधिपूर्वविषये भूयान्प्रपञ्चः प्रायश्चित्तमयूखे निरूपयिष्यते ।

पुनर्विवाहेऽग्निमाह कात्यायनः—

सदारोऽन्यान्पुनर्दारानुद्बोद्धुं कारणान्तरात् ।
 यदीच्छेदग्निमान्कुर्वन्क होमोऽस्य विधीयते ॥
 स्वाप्नावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन ॥ इति ।

इदं चाग्निसन्निधाने । अग्निसंनिधानाभावे तु लौकिके कृत्वाऽग्निद्वयसं-
 सर्गं कुर्यात् । संसर्गं चाह शौनकः—

अधाग्न्योर्गृह्ययोर्योगं सपत्नीभेदजातयोः ।
 सहाधिकारसिद्धयर्थमहं वक्ष्यामि शौनकः ॥
 पृथक्स्यण्डिलयोरग्निं समावाय यथाविधि ।
 तन्त्रं कृत्वाऽऽज्यभागान्तमन्यावानादिकं ततः ॥
 जुहुयात्पूर्वपत्न्यग्नौ तथाऽन्वारब्ध आहुतीः ।
 अग्निमीळे पुरोहितं सूचेन नवर्चेन तु ॥
 समिधैर्न समारोप्यार्यं ते योनिस्तित्वा ।
 प्रत्यरोहेत्यनया कनिष्ठाग्नौ विधीयते ॥
 आज्यभागान्तनन्त्रादि कृत्वाऽऽरभ्य तदादिनः ॥

अग्निद्वय-
 समर्गः ।

समन्वारब्ध एताभ्यां पत्नीभ्यां जुहुयाद्दृतम् ।
 चतुर्गृहीतेनैताभिर्कर्मभिः पड्विधाक्रमम् ॥
 अग्रायग्निश्चरतीति, अग्निनाग्निः समिष्यते ।
 अस्तादिमिति तिसृभिः पादिनो अग्न एक्या ॥
 ततः स्विष्टकृदारभ्य होमक्षेपं समापयेत् ।
 गौयुग्मं दक्षिणा देया ओत्रियायाऽऽहिताप्रये ॥
 पत्न्योरेका यदि मृता दग्ध्याऽनेनैव तां पुनः ।
 आददीतान्यया सार्द्धमाग्नानविधिना गृही ॥ इति ।
 इत्यग्निद्वयसंसर्गः ।

अथ सायंप्रातर्होमः । तत्र सायंकालादारम्भः । तत्कर्तृनाहाश्वलायनः—
 ‘पाणिग्रहणादि गृह्यं परिचरेत्स्वयं पत्न्यपि वा पुत्रः कुमार्यन्ते-
 वासी वा’ इति ॥

दक्षः—ऋत्विक् पुत्रो गुरुभ्राता भागिनेयोऽथ विद्वपतिः ।
 एतैरेव हुतं यत्तु तद्धुतं स्वयमेव तु ॥ इति ।

एतैश्च यजमानस्य पत्न्या वा अनुहया तत्सन्निधौ च होतव्यं नान्यथा ।
 पर्वणि तु सायंहोमः स्वयमेव कायों नान्येन । तत्र प्रादुष्करणकालमाह
 कात्यायनः—

सूर्ये तु शैलमप्राप्ते पड्विद्विहिरिहाकलैः ।
 प्रादुष्करणमग्नीनां प्रातर्भासामदर्शने ।

उक्तकालातिक्रमे व्याहृतिभिरेकाज्याहुतिः । होमकालमाह मनुः—
 लेखामात्रस्तु दृश्येत रश्मिभित्तु समन्वितः ।

होमकालः । उद्धृतं तं विजानीयात्तत्र होमं प्रकल्पयेत् ॥

अनुकल्पोऽपि—‘प्रदोषान्तो होमकालः सङ्गवान्तः प्रातस्तमतिर्नाथ
 चतुर्गृहीतमाज्यं जुहुयाद्याहुतिभिः’ ।

‘होमद्रव्याणि गृह्यपरिशिष्टे—‘पयो दधि सर्पिर्यवागूरोदनं तण्डुला-
 सोमस्तैलमापो व्रीहयो यवास्तिलाः’ इति । होम्यानि

सङ्गदे—द्रवं हविः सुवेणैव पाणिना कठिनं हविः ।

अहुत्यग्नैर्न होतव्यं न कृत्वाऽगुलिभेदनम् ॥ इति ।

आयतनं चोक्तम्—अरलिमात्रमन्यर्थं कार्यमायतनं तुषैः ।

पशीलमात्रमित्येके तदप्यल्पान्तरं भवेत् ॥ इति ।

अपत्नीकोऽपि पूर्वमृतायै पत्न्या अर्द्धार्धं दत्त्वाऽवशिष्टार्द्धार्धौ पूर्ववत्स-
 यंप्रातर्होमौ कुर्यादिष्टि तु न इति । इति नित्यहोमः ॥

स्त्रीधर्माः ।

अथ स्त्रीधर्माः । मनुः—

स्त्रीधर्माः ।
 बाल्या वा युक्त्या वा वृद्ध्या वाऽपि योषिता ।
 न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेऽपि ॥
 पित्रा भर्त्रा सुतैर्वाऽपि नेछेद्विरहमात्मनः ।
 एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्यं कुर्यादुभे कुले ॥

याज्ञवल्क्यः—

संयतोपस्कृता दक्षा हृष्टा व्ययपराऽमुर्खी ।
 कुर्याच्छुश्रूषुरयोः पादवन्दनं भर्तृवत्परा ॥
 नास्ति स्त्रीणां जपो यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् ।
 पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गो महीयते ॥
 पाणिप्राहस्य सार्धं स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा ।
 पतिलोकमभीप्सन्ती नाहितं किञ्चिदाचरेत् ॥

स्कान्दे—प्रसुप्तं तु सुखासीनं रममाणं यदृच्छया ।

आतुरेष्वपि कार्येषु पतिं नोत्थापयेत्कचित् ॥
 स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं तु स्वमुखं नैव दर्शयेत् ।
 स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नाता विशुद्धयति ॥
 सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेन्नान्यस्य कस्यचित् ।
 अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत् ॥
 न रजक्या न कारुक्या न च श्रमणयाऽपि च ।
 न च दुर्भगया वाऽपि सखित्वं कुरुते तु सा ॥
 भर्तृविद्वेषणी नारी न संभाषेत कर्हिचित् ।

तथा—उक्ता प्रत्युत्तरं दद्याद्या नारी क्रोवतत्परा ॥

सा शुनी जायते ग्रामे शृगाली निर्जने वने ।

पतिं या ताडितुं चेच्छेत्सा व्याघ्री वृषपदशिका ॥ इति ।

शङ्खः—‘नानुक्त्वा गृहान्निर्गच्छेन्नानुत्तरीया न त्वरितं व्रजेन्न परपुरुषं
 भाषेतान्यत्र वणिक्प्रव्रजितवृद्धवैद्येभ्यो न नाभिं दर्शयेद्दगुल्फाद्वासः परि-
 दध्यान्न स्तनौ विवृतौ कुर्यान्न हसेदनपावृतं न भर्तारं तद्धन्धून्वा द्विष्यात्’ ।

मनुः—‘तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत् ।

मुक्ते भुक्ते पतौ या तु ह्यासीना वाऽपि वाऽऽसिते ॥

‘विनिद्रे च विनिद्रा या प्रथमं प्रतिबुध्यते ।

अनलंकृतमात्मानं पत्युर्नो दर्शयेत्कचित् ॥
आकुप्य वाऽपि नाक्रोशेत्ताडिवाऽपि प्रसीदति ।
सेवते भर्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नं फलादिकम् ॥
महाप्रसाद इत्युक्त्वा पतिदत्तं प्रतीच्छेति ।

एते पूर्वोक्ता नियमा विवाहोत्तरमेव ।

अथ प्रोषितपतिकाधर्माः । याज्ञवल्क्यः—

प्रोषितपति- क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् ।
नाधर्माः । हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥

तथा—‘प्रोषिते मलिना कृशा ’ इति ।

अथ विधवाधर्माः । मनुः—

विधवाधर्माः । कामं तु क्षपयेदेहं पुष्पमूलफलैः शुभैः ।
न तु नामापि गृहीयात्स्थौ प्रेते परस्य तु ॥
आसीताऽऽमरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी ॥

तथा—विधवाकवरीकन्धो भर्तृयन्त्राय जायते ।
शिरसो वपनं तस्मात्कार्यं विधवया सदा ॥
एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन ।
कृच्छ्रं पराकं कुर्याच्च तप्तकृच्छ्रमथापि वा ॥
यवाग्नेन फलाहारैः शाकाहारैः पयोव्रतैः ।
प्राणयात्रां प्रकुर्वति यावत्प्राणः स्वयं व्रजेत् ॥
पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् ।
नरमाद्रूयानं कार्यं पतिसौख्यसमीहया ॥
नैवाद्भोदूर्त्तनाभ्यङ्गं स्त्रिया विधवया क्वचित् ।
तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुः कुशतिलोदकैः ॥

तर्पणं पुत्रपौत्राभावे ।

नाभिरोहेदनद्वाहं प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
कञ्चुकं न परीदध्याद्वासो न विभुतं वसेत् ॥
एवं धर्मसमायुक्ता विधवाऽपि पतिव्रता ।

पतिलोकमवाप्नोति न भवेत्काऽपि दुःखिता ॥ इति ।

यत्तु ब्रह्मचर्येण सह वैकल्पिकं सहगमनमुक्तं तद्विस्तरेण शुद्धिमयूखे
प्रपञ्चयिष्यामः । इतिस्त्रीधर्माः ॥

१ हे पुस्तके ‘ विस्तरेण ’ अस्यामे ‘ इतिस्त्रीधर्माः । आषानादि तु वैवर्णिकानां नित्यम् ।
यथाऽऽह वसिष्ठः । इतिपाठः पितृगमनरजैर्ममप्रकाशे उच्यमिति मेव विस्तृतः । इति च. पाठः ।

अथ विवाहोत्तरं पञ्चयज्ञानुष्ठानमुक्तमाचारमयूखे दर्शयिष्यामः
अष्टकादिश्राद्धज्ञानं श्राद्धमयूखे । सप्त पाकसंस्था नित्याः । आधानादीनि
तु त्रैवर्णिकानां नित्यानि । यथाऽऽह वसिष्ठः—‘अवश्यं ब्राह्मणोऽर्पनादधी-
ताग्निहोत्रदर्शपूर्णमासाप्रयणोष्टिपशुसोमांश्च यजेत । इति ॥’ याज्ञवल्क्योऽपि—

सप्तपाकसंस्था प्रतिसंवत्सरं सोमः पशुः प्रत्ययनं तथा ।
आधानादीनि । कर्तव्याऽऽप्रयणोष्टिश्च चातुर्मास्यानि चैव हि ॥ इति ।

तथा नित्यानि कर्माण्युक्त्वा बौधायनेनोक्तम्—

तस्मात्कन्दैः फलैर्मूलैर्मधुनाऽऽज्यरसेन वा ।

नित्यं नित्यानि कुर्वीत न तु नित्यानि लोपयेत् ॥

यानि तु—भवेन्नैवार्पिकानां यः स हि सोमं पिबेद्विजः ।

प्राक्सौमिकीः क्रियाः कुर्याद्यस्यान्नं वार्षिकं भवेत् ॥

तथा—पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्धावानो जितेन्द्रियः ।

नत्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजेताथ कथंचन ॥

अन्नहीनो दहेद्वाष्ट्रं मन्त्रहीनस्त्वथर्विजम् ।

आत्मानं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥

इत्यादीनि तानि कान्यपराणि । नित्येषु यथाशक्त्यङ्गहीनेनाधि-
कारस्य पक्षे स्थितत्वात्, कन्दैर्मूलैरित्यादि च संगच्छते । ‘नित्येष्वपि
देवताभिश्चदक्रियाणां प्रतिनिधिर्नास्ति तथाऽनुपादेयानां कालादीनां न
त्यागः’ इत्यादि स्थितं पक्षे ।

इति संस्काराः ।

वर्णजातिविवेकः ।

ब्राह्मणस्य चतस्रो भार्या क्षत्रियस्य तिस्रो वैश्यस्य द्वे शूद्रस्यैकेति
स्थितम् । तत्र समानजातिभ्यां पितृभ्यां ज्ञातानामपत्यानां समानजत
तित्वं मातापित्रोर्वैजात्याज्जात्यन्तरं च भवतीति स्पष्टम् । लोके ता
जातीराह याज्ञवल्क्यः—

सवर्णभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातयः ।

अनिन्द्येषु विवाहेषु पुत्राः सन्तानवर्द्धनाः ॥

विप्रान्मूर्द्धावसिक्तो हि क्षत्रियायां विशः स्त्रियाम् ।

अम्बष्ठः शूद्रांजातो निषादः पारशवोऽपि वा ॥

१ ‘अम्बष्ठः शूद्रां निषादो जातः पारशवोऽपि च’ इति मूलस्मृतौ पाठः । २ शूद्रा ए. पाठः ।

एकस्यैव नामद्वयम् ।

वैश्याशूद्रोस्तु राजन्यान्माहिष्योऽग्नौ सुतौ स्मृतौ ।

वैश्यास्तु करणः शूद्रां वित्रास्तेषु विधिः स्मृतः ॥

प्रतिलोमजा अप्युक्तास्तेनैव—

‘ ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सुतौ वैश्याद्वैदेहकस्तथा ।

शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः सर्वधर्मवहिष्कृतः ॥

क्षत्रिया भागध्वं वैश्याच्छूद्राब्धत्तारमेव च ।

शूद्रादायोगार्त्तं वैश्याज्जनयामास वै सुतम् ॥

साहिष्येण करण्यां तु रथकारः प्रजायते ।

असत्सन्तस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ इति ।

प्रतिलोमा असन्तोऽनुलोमाः सन्त इत्यर्थः । एतेषां संकीर्णसंकरे भेदादि-
कमनुपयोगाद्विस्तृतिभयाच्च नोक्तम् । एतासां च जातीनां गोत्वादिजाति-
व्यत्ययकृतेति स्थितं धार्तिके । कचिज्जातेः शास्त्रगम्यताऽपि । यथोक्तं
याज्ञवल्क्येन—

जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः सप्तमे पञ्चमेऽपि वा ।

व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तरम् ॥ इति ।

अस्यार्थो मिताक्षरायां—सप्तमेऽपि वा शब्दात्पष्ठे पञ्चमे युगे जन्मनि
जातेरुत्कर्षः । पूर्वजात्यपगमोऽन्यजातिप्राप्तिश्च यथा—ब्राह्मणेन शूद्रा-
यामुत्पादिता निपादी । सा ब्राह्मणेनोढा तस्याः कन्याऽपि ब्राह्मणेनोढा
कन्यां जनयति । जनेन प्रकारेण पृष्टी सप्तमं ब्राह्मणं जनयति । एवं
ब्राह्मणेन वैश्यायामुत्पादिताऽब्रह्म । सा ब्राह्मणेनोढेत्येवं परंपरया पष्ठे
ब्राह्मणं जनयति । एवं क्षत्रियायामुत्पादिता मूर्धावसिका । सा ब्राह्मणेनोढा ।
तत्कन्याऽप्येवमिति पञ्चमे ब्राह्मणं जनयति । एवमुक्ता क्षत्रियोढा साहिष्या
च यथानुक्रमं पष्ठं पञ्चमं क्षत्रियं जनयति । तथा करणी वैश्योढा पञ्चमं
वैश्यमिति । इयं च दिक् । वदन्त्या मूर्धावसिक्तेन क्षत्रियोढा तत्पुत्रेणा-
ऽपि क्षत्रियेत्येवं क्रमेण पञ्चमं क्षत्रियं जनयति । एवमम्बुष्टेनोढा वैश्या
तत्पुत्रेणापि सेत्येवं क्रमेण पष्ठं वैश्यं जनयति । एवं निपादेन शूद्रोढा
तत्पुत्रेणापि शूद्रेत्येवं क्रमेण सप्तमे शूद्रं जनयति । एवं मूर्धावसिकादि-
प्यपि योज्यम् । तेषां कर्मणां व्यत्ययानामपठ्यकर्मणां व्यत्यये साम्यं च-
जातीयवृत्तिपरिग्रहसंज्ञातिप्राप्तिरित्यर्थः । तद्यथा ब्राह्मणः स्ववृत्त्याऽर्जी-

वत्रापदि क्षत्रघृत्तिं करोति गतायामप्यापदि तां न जहाति तत्पुत्रोऽप्ये-
वमिति क्रमेण पथ्यमः क्षत्रिय एव जायते । तथा विप्र आपदि वैश्यघृत्त्या
जीवंस्तस्यां गतायामपि तां घृत्तिं न जहात्येवं तत्पुत्रोऽर्षित्येवं क्रमेण पष्ठो
वैश्य एव जायते । एवं शूद्रघृत्त्याऽपि जीवतः । एवं क्षत्रियवैश्ययोरपि योज्यम् ।
अस्मिन्व्याख्यानेऽपि शब्दस्य पष्ठपरत्वे मूलं मृग्यम् । एतेषां घृत्तयस्त्वनु-
पयोगान्नोक्ताः ॥

इति वर्णजातिविवेकः ।

वर्णधर्माः ।

अथ साधारणा वर्णधर्माः । तत्र ब्राह्मणस्य पद् कर्माणि यजनाध्य-
यनदानयाजनाध्यापनप्रतिग्रहाख्यानि । तेषु त्रीणि घृत्त्यर्थानि ।
यथाऽऽह मनुः—

साधारणा वर्णधर्माः । पण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका ।
याजनाध्यापने चैव विशुद्धाश्च प्रतिग्रहः ॥ इति ।

यजनं तत्र तत्र स्पष्टम् । याजनं केषांचित्प्रतिपिद्वम् । यथाऽऽह देवलः—

यः शूद्रान्पतितांश्चापि याजयेदर्थकारणात् ।

याजितो वा पुनस्ताभ्यां ब्राह्मणोऽयाज्ययाजकः ॥ इति ।

सुमन्तुरप्यथाज्यानाह—‘अभिशास्तपतितपौनर्भवभ्रूणहपुंश्चल्यशुचिवस्त्र-
कारतैलिकचाक्रिकध्वजिसुवर्णकारचर्मकारवेधकिगणगणकगणिकसौनिक-
व्याधनिपादरजकयुरुडचर्मकारा अभोज्यान्ना अप्रतिग्रहा अयाज्याश्चेति ।
तथाऽभिचारयाजनमपि प्रतिपिद्वम् । यथाऽऽह मनुः—

ब्राह्मणानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च ।

अभिचारमहीनं वा त्रिभिः कृद्भैर्यपोहति ॥ इति ।

इति याजनम् । दानप्रतिग्रहौ दानमयूखतो ज्ञेयौ । अध्ययनाध्यापने
पूर्वमुक्ते ।

आपत्कल्पाः ।

अथ ब्राह्मणस्यापत्कल्पः—तत्र पूर्वोक्तघृत्तित्रयासंभवे मनुः—

अजीवंस्तु स्वधर्मेण ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा ।

जीवेत्क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥ इति ।

पुनः स्वकर्मेग्रहणं विगुणकर्मसंग्रहार्थम् । एतदुक्तं भवति—यथोक्तैः

ब्राह्मणः
स्वापत्कल्पः

प्रतिमहादिभिरजीवन्मुष्प्रतिमहादिकमपि कुर्यात् । न त्वन्य-
वृत्तिम् । यथोक्तं भगवता—

त्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥ इति ।

मनुरपि—यं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः ।

परधर्माश्रयाद्विप्रः सद्यः यतति जातितः ॥ इति ।

तेनाप्यजीवन्मुष्प्रवृत्त्या तथाप्यजीवन्वैश्यवृत्त्या । तथोक्तं याज्ञवल्क्येन

'विशां वाऽप्यापदि द्विजः' इति ।

वैश्यवृत्तावपि कृषिः कारणीया स्वयं न कार्या । यथोक्तं बृहस्पतिना—

कुसीदकृषिवाणिज्यं प्रकुर्वीताऽस्वयंकृतम् ।

आपत्काले स्वयं कुर्यान्नैनसा युज्यते द्विजः ॥ इति ।

तत्रापि नीलीकृषिर्वर्ज्या ।

नीलीकर्षणकर्ता तु चण्डालसदृशो हि सः ।

इत्यापत्तन्मेन निन्दितत्वात् । कृषिधर्मानमे वक्ष्यामः । वाणिज्येऽपि

विशेषमाह याज्ञवल्क्यः—

ब्राह्मणस्य
वाणिज्ये विशेषः

फलोपलक्ष्यमसोममनुष्यापूपवीरुधः ।

तिलौदनरसक्षारान्दधि क्षीरं घृतं जलम् ॥

रसासवमधूच्छिष्टमधुलाक्षाः सर्वहिपः ।

मृषमपुष्पफलपक्वैश्चैव विपक्षितीः ॥

कौशेयनीलीलवणमांसैकशफसीसकान् ।

शाकाद्रौप्यविप्याकपशुगन्धास्तथैव च ॥

वैश्यवृत्त्याऽपि जीविनो विक्रीणीति कदाचन ॥ इति ।

मनुरपि—अदमनो लवणं चैव पशवो ये च मानुषाः ।

सर्वे च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाक्लितानि च ॥

अपि चेत्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः ।

अयः शस्त्रं विपं मांसं सोमं गन्धाश्च सर्वशः ॥

क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ।

आरण्याश्च पद्मस्तर्जान्दंष्ट्रिणश्च वयांसि च ॥

मद्यं नीलीं च लाक्षां च सर्वाश्चैकशफस्तथा ।

न विक्रीर्णायादिति शेषः । तथा—

भोजनाभ्यञ्जनात्पोनाद्यदन्यत्पुरुषे तिलैः ।

कृमिभूतः श्रविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति ॥

सद्यः पतति मांसेन लाक्ष्या लवणेन च ।

त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥

इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः ।

ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं नियच्छति ॥

इतरेषां पूर्वोक्तानां क्षीरव्यतिरिक्तानाम् । इदमनापदि । रसेषु विशेष-
पमाह स एव—

रसा रसैर्निमातव्या न त्वेव लवणं रसैः ।

कृत्तान्नं चोऽकृत्तान्नेन तिला धान्येन तत्समाः ॥ इति ।

वाणिज्यमप्यस्ययंकृतमित्याह गौतमः—‘वाणिज्यं कृषिवदेव’ इति ।
अत्यन्तापदि तु स्वयमपि कुर्यात् । सर्वासंभवे सेवामप्यनुजानाति प्रचेताः—

महदापद्रुतो विप्रः क्षत्रसेवां समाश्रयेत् ।

शूद्रसेवा न कर्तव्या प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥

शूद्रसेवायां प्रायश्चित्ताभ्यानादत्यन्तापदि सापि कार्येत्येवं गम्यते । तथा
अत्यन्तापदि चौर्यमनुजानाति याज्ञवल्क्यः—

बुभुक्षितरुयहं स्थित्वा धान्यमब्राह्मणाद्धरेत् ।

प्रतिगृह्य तदाख्येयमभियुक्तेन धर्मतः ॥

अब्राह्मणादिति शूद्राद्धरेत्तदलाभे वैश्यात्तदलाभे क्षत्रियादिति निबन्धकृतः ।

मनुः—द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके ।

आददानः परक्षेत्रात्र दण्डं दातुमर्हति ।

तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि पठनश्रुता ॥

अश्वस्तनविवानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥ इति ।

राजानं प्रत्याह मनुः—

तस्य वृत्तं कुलं शीलं श्रुतमध्ययनं तथा ।

ज्ञात्वा राजा कुटुम्बं च धर्म्या वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥ इति ।
राज्ञे निदेशः । एवं क्षत्रियस्यापि वैश्यवृत्तिः । शूद्रवृत्तिस्तदसंभवे । वैश्य-
स्यापि शूद्रवृत्तिः क्षत्रवृत्तिर्वा ननु ब्राह्मणवृत्तिः । शूद्रस्यापि वैश्यवृत्ति-
स्तदसंभवे क्षत्रवृत्तिः । न तु विप्रवृत्तिः । यथोक्तम्—

सत्कृष्टं वाऽपकृष्टं वा तयोः कर्म न विद्यते ।

मध्यमे कर्मणि हित्वा सर्वसाधारणे हि ते ॥

प्राख्यणस्यापकृष्टं सेवादि नास्ति शूद्रस्योत्कृष्टमध्ययनादि नास्ति ।
एवं चात्यन्तापदि क्षत्रियवैश्ययोर्प्राख्यणकर्मानुज्ञातं भवति । एवं यथाकथं-
चिदप्यापदं हित्वा प्रागश्वित्तं कर्मात् । यथोक्तं । याज्ञवल्क्येन—

निस्तीर्य तामथात्मानं पावयित्वा न्यसेत्पथि ॥

पराशरोऽपि—अशक्तो निन्दितं कुर्यात्प्रायश्चित्तं पुनश्चरेत् ॥ इति ।

अतो ज्ञायतेऽनुज्ञानेऽपीपदोपोऽस्त्येव ।

यस्तु—आपदतः संग्रहन्मुञ्चानो वा यतस्ततः ।

न लिप्येतैनसा विप्रो ज्वलनार्कसमो हि सः ॥ इति ।

तत्र सर्वथा दोषाभावप्रतिपादनपरम् । किंतु सर्वत एवात्मानं
गोपयेत् ' इति गोपनस्य पापाभावाद्यदेनावश्यकत्वार्थम् । अग्रे प्राय-
श्चित्ताभ्यानात् । एतावान्परं विशेषो यदनापदि कृतानां निन्दितानां
कर्मणां बहुप्रायश्चित्तमापदि त्वल्पमिति ॥ इत्यापत्कल्पनिरूपणम् ॥

क्षत्रियधर्माः ।

क्षत्रियधर्मा अपि गीतायाम्—

शौर्यं तेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाऽव्यपलायनम् ।

दानमीश्वरभावश्च क्षत्रकर्म स्वभावजम् ॥ इति ।

अन्ये चोक्ताः, नीतिमयूखादौ विस्तरेण वक्ष्यन्ते च ।

वैश्यधर्माः

वैश्यधर्मा उक्ता याज्ञवल्क्येन—

कुसीदकृषिवाणिज्यं पाशुपाल्यं विशः स्मृतम् ॥ इति ।

भारते वैश्यवाक्यम्—

यददामि न तज्यूनं यदृद्धामि न चाविकम् ।

विक्रीणांमि रसांश्चाहं मद्यवर्जमभायया ॥ इति ।

कृष्युपयुक्तहले विशेषमाह हारीतः—

उभ्या निषेधानि । अष्टगवं धर्म्यहलं पट्गवं जीवितार्थिनाम् ।

चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं ब्रह्मघातिनाम् ॥ इति ।

द्विगवं ब्रह्मघातवञ्जितमित्यर्थः । इदं च कठिनभूमिपिपयत्नेन यो-
ज्यम् । योज्यवृषान्पराशर आह—

स्थिराङ्गं नीरुजं तृप्तं सुनर्दं पण्डवर्जितम् ।

वाहयेद्विवसस्यार्द्धं पश्चात्स्नानं समाचरेत् ॥

सुनर्दोऽश्रान्तः । स्नानं घृपाणाम् । वर्ज्यानाह स एव—

धुधितं तृपितं श्रान्तं क्लीवर्दं न योजयेत् ।

हीनाङ्गं व्याधितं क्लीबं घृपं विप्रो न वाहयेत् ॥ इति ।

विप्र इत्युपलक्षणम् । भारते—

वाहयेद्विकृतेनैव शास्त्रया वा सपत्नया ।

न दण्डेन न यष्ट्या वा न पाशेन न दारुणा ॥

खलयज्ञमाह पराशरः—

घृक्षं छित्त्वा महीं भित्त्वा हत्वा च कृमिकीटकान् ।

कर्पकः खलयज्ञेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

खलयज्ञः खलस्थधान्यदानम् । धान्यभाग उक्तः शैवपुराणे—

राज्ञे दत्त्वा तु पद्भ्यां देवानां चैकविंशकम् ।

विप्राणां त्रिंशकं भागं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

‘देवग्रहणं पितृणामुपलक्षणम्’ इति धर्मप्रकाशे । एतददाने दोष उक्तस्तत्रैव—

अदत्त्वा कर्पको देवि यस्तु धान्यं प्रवेशयेत् ।

मरुदेशे भवेद्वृक्षः स पुण्यफलवर्जितः ॥ इति ।

एतादृशस्य फलमुक्तं भारते—

वणिग्धर्मममुञ्चन्तै देवग्राहणपूजकः ।

स वणिक् स्वर्गमाप्नोति पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ॥

वैपरीत्ये दोषस्तत्रैव—

यः करोति जनान्साधून्वणिक्कर्मणि बन्धनम् ।

स याति नरकं घोरं धनं तस्यापि ह्रीयते ॥

साधूजनान्प्राप्येत्यर्थः । उक्ता वक्ष्यमाणाश्च साधारणधर्माः वैश्यस्य भवन्त्येवेति ॥ इति वैश्यधर्माः ॥

शूद्रधर्माः ।

शूद्रधर्ममाह मनुः—

विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कथ्यते ॥ इति ।

विष्णुपुराणे—

द्विजशुश्रूषयैवैष प्रक्षयज्ञाधिकारवान् ।

निजाश्रयति वै लोकान् शूद्रो धन्यतरः स्मृतः ॥ इति ।

द्विजैश्च शूद्रवृत्तिः कार्येत्युक्तं भारते—

यश्च कश्चिद्विजातीनां शूद्रः शुश्रूषुरावनेत् ।

कल्या तस्य वनैराहुर्वृत्तिं धर्मविदो जनाः ॥

गौतमः—' जीर्णान्युपानच्छत्रवासांसि कूर्चानीति ' देयानीति शेषः ।
कूर्चं तृणमयमासन्म । उपलक्षणं चेद्भूम् । अतश्चापेक्षितं जीर्णं शय्याकम्ब-
लाद्यपि देयम् । वृत्त्यन्तरमाह याज्ञवल्क्यः—

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तयाऽजीवन्वणिग्भवेत् ॥

शिल्पैश्च विविधैर्जीवेद्विजातिहितमाचरन् ॥ इति ।

शूद्रस्य वाणिज्ये प्रसक्ते पूर्वोक्तानां फलोपलब्धीनां विक्रये न दोषः ॥

लवणं मधु तर्कं च तैलं दधि घृतं पयः ।

न दुष्येच्छूद्रजार्तानां कुर्यात्सर्वेषु विक्रयम् ॥

इति बृहत्पराशरौक्तेः । कचिद्विशेषमाह स एव—

विक्रीणन्मद्यामांसानि शम्भदयस्य च मक्षुणम् ।

कुर्वन्नगम्यागमनं शूद्रः पतति तत्क्षणात् ॥

कपिलस्त्रीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च ।

वेदाक्षरविचारेण शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत् ॥ इति ।

एवं च मद्यामांसातिरिक्तं विक्रयमिति । पुराणविग्रहणे शूद्रस्याधि-
कारो नाभ्ययते । तथा च भारते—

क्षीशूद्रद्विज्यन्धूनां श्रद्धा स सुस्तिमोचरा ।

तेन भारतमाख्यानं मुनिना कृपया कृतम् ।

आवयेच्चतुरो वर्णान्कृत्वा ब्राह्मणमप्रतः ॥ इति ।

शूद्रं प्रति विशेषमाहाङ्गिराः—

तस्माच्छूद्रं समासाद्य सदा धर्मपथे स्थितम् ।

प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं जपहोमविवर्जितम् ॥ इति ।

स्वयंकर्तृकयोर्जपहोमयोर्निषेधः । अतो ब्राह्मणेन जपे होमे वा
कारिते न दोषः । तदुक्तं धर्मविधृतौ—

उपवासो व्रतं होमन्तीर्थस्नानजपादिकम् ।

विप्रैः संपादितं यस्य संपन्नं तस्य तत्फलम् ॥ इति ।

शूद्रस्य पञ्चगव्याशनमाह पराशरः—

शूद्रस्य पञ्चग- स्त्रीशूद्रस्य विशुद्धार्थं प्राजापत्यं समाचरेत् ।
व्याशनम् । पञ्चगव्यं तु कुर्वीत स्नात्वा पीत्वा शुचिर्भवेत् ॥ इति ।

यत्त्वत्रिणोक्तम्—

पञ्चगव्यं पिवेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तु सुरां पिवेत् ।

उभौ तौ पापकर्माणौ पूयाख्ये नरके वसेत् ॥ इति ।

तद्विकल्पार्थमिति केचित् । प्रायश्चित्ताङ्गं पञ्चगव्यं प्राश्यमनङ्गं तु नेति व्यवस्थेति धर्मप्रकाशे । युक्तं तु—कलौ पराशरी स्मृतिरित्यनेनान्यस्मृति- विरोधे कलौ पराशरस्मृतिर्वलीयसीत्युच्यते । अतः कलौ प्राशनमेव । युगान्तरे तु विकल्प इति । शूद्रस्य सर्वसंस्कारप्राप्तौ केषांचिद्बाधः । तत्र गर्भाधानप्रभृत्यन्नप्राशनान्ताः संस्काराः शूद्रस्य भवन्ति । यत्तु— ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां गर्भाधानसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणान्नप्राशन- चूडोपनयनप्रतर्चयाध्ययनसमावर्तनविवाहयज्ञदानानि समानानि इति- सुमन्तुवाक्यम् । तत्रयाणां मन्त्रवत्संस्कारपरं न शूद्रपरिसंख्यार्थम् । तथासति तस्य विवाहाप्रसक्तेः । चूडाकरणं तु—

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।

इति मनुवचने द्विजातिग्रहणात् शूद्रस्य नेति मेधातिथिः । अपरार्कस्तु चूडाकरणं मन्त्रसहितं न भवतीत्याह । वसिष्ठस्तु स्पष्टं विकल्पमाह— ‘परिचर्या तु शूद्रस्यानियतः केशवेशः’ इति । अस्यार्थो धर्मप्रकाशे— केशवेश एका शिला सोऽनियतो वैकल्पिकः । तस्माच्छिखामात्रधारणं मुण्डनं वेत्यर्थ इति । उपनयनं त्वध्ययनाभावास्ति । मनुरपि—‘चतुर्थ एकजातिस्तु’ इति । एकैव जातिर्जननं यस्येत्यर्थः । शूद्रस्य पञ्चमहायज्ञ- मन्त्रमाह याज्ञवल्क्यः—

नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापयेत् । इति ।

स्वाहास्थाने नमःशब्दः प्रयोक्तव्य इत्यर्थः । देवताभ्यः पितृभ्यश्चेति वा

शूद्रस्य पञ्चम- नमस्कारमन्त्र इति विज्ञानेश्वरः ।
हायशः ।

भारते तु—

स्वाहाकारो नमस्कारो मन्त्रः शूद्रे विधीयते ।

इति स्वाहाशब्दस्यापि विधानाद्विकल्पः । अत्र च ‘शूद्रा वाजसनेयिनः’ इति वसिष्ठवाक्याद्यानि तेषां कर्माणि तानि कार्त्वीयसूत्रानुसारेण कार्या-

णीति । वैश्वदेवादौ लौकिकाग्निर्हेयः । तथा शुद्रस्याऽऽगमोक्ता दीक्षा पूजा च भवति । वराहपुराणे त्रैवर्णिकानां दीक्षाविविधमुक्त्वा—

शुद्रस्यापि प्रवक्ष्यामि मन्त्रकस्य वराहने ।

यां तु दीक्षा समासाद्य मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥

इत्युक्तत्वात् । सूतसंहितायामपि त्रैवर्णिकानां मन्त्रपूजायुक्त्वा संन्यासिना प्रणवेन पूजायुक्त्वा—

नमोन्तेन शिवेनैव स्त्रीणां पूजा विधीयते ।

शिवमन्त्रेण शुद्राणामेवं पूजा प्रकीर्तिता ॥ इत्युक्तम् ।

तत्रैव—शुद्रः कर्मरतस्तेन सुश्रयमानो द्विजन्मनाम् ।

हृष्याम्यहं च सुतरां पूजमानश्च सुन्दरि ॥

कर्मत्रयस्य शुश्रूषां शुचिः शुद्रः करोति यः ।

स्वधर्मस्य स्थितिं ज्ञात्वा तस्य गृह्याम्यहं वलिम् ॥ इति ।

भविष्यत्पुराणे—

ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं कुलीनं शुद्रमेव तु ।

पुरुषं वा स्त्रियं वाऽपि दीक्षयेत्सूर्यमण्डले ॥

आराध्यदेवता सूर्यमण्डले त्वया ध्येया पूज्या वेलुपदिश्य दीक्षयेदित्यर्थः । वराहपुराणे—

ब्राह्मणक्षत्रियविदां पञ्चरात्रं विधीयते ।

शुद्रादीनां च तच्छ्रोत्रपञ्चमीगुपयात्यति ॥

इति पञ्चरात्रश्रवणविधानाथ सौरवैष्णवशैवशाक्तवैनायकमन्त्रैष्यधिकारः सिद्धः । यत्तु पूर्वं सूतसंहितायां पूजनं स्पर्शनं चोक्तं तत्त्वकृतपार्थिवादिविषयम् ।

यश्च—केशवं वा शिवं वाऽपि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते ।

इति निषेधः सोम्यस्याप्तिपरः स्थावरपरो वा । दीक्षिमानां स्थावरेष्वपि ब्राह्मणद्वारा पूजा भवतीति । स्थावरे स्फाटिके । विशेषस्त्याचारमश्रूते कथ्यते । तथा शुद्रस्य ज्ञानेऽधिकारो महाभारते—

प्राप्य ज्ञानं ब्राह्मणात्क्षत्रिया वा

वैश्याः शुद्रा अपि नांवा अभीक्ष्णम् ।

अद्यात्कन्यं अद्यानेन नित्यं

न अद्यालुं जन्ममृत्यू विशेषाम् ॥ इति ।

यत्तत्तर्मासायामप्यशुद्राधिकरणे शुद्रस्य ब्रह्मविद्यानधिकार उक्तः

स त्रैवर्णिकादिबहुपनिपच्छ्रवणादिना न भवतीत्येवंपरः । पुराणादिश्रवणेन तु ब्रह्मज्ञानं केन धार्येत । तेन ' सर्वं ब्रह्मण उत्पन्नं ब्रह्मण्यध्यस्तं मिथ्या ब्रह्मैव सत्यम् ' इत्येवंरूपेण निदिध्यासनेन ज्ञानं संपादनीयम् ।

अत एव गीतायाम्—

मामुपाश्रित्य कौन्तेय येऽपि स्युः पापयोनयः ।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ इत्युक्तम् ।

तथा शूद्रेण क्रियमाणे श्राद्धे ब्राह्मणेन मन्त्राः पठनीयाः ।

अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते ॥ इति वाराहोक्तेः ।

यत्तु मात्स्ये—

शूद्रोऽप्यमघ्नवत्कुर्यादनेन विधिना ततः ॥ इति ।

तत्त्वयं मन्त्रप्रयोगो न कर्तव्य इत्येवंपरम् । सर्वश्राद्धानि चाऽऽमेन भवन्ति ' शूद्रः कुर्यात्सदैव हि ' इत्युक्तेः । यत्तु वाराहे श्राद्धं प्रकृत्य—

त्रिषु वर्णेषु कर्तव्यं पाकभोजनमेव तु ।

शुश्रूषामभिपन्नानां शूद्राणां च वरानने ॥

इति पाकश्राद्धमुक्तं तच्छूद्रायां द्विजोत्पन्नविषयमिति केचित् । युक्तं तु—तस्मिच्छूद्रत्वाभावात् ' शूद्राश्च पाककर्तारः ' इत्यापस्तम्बोक्तपाककर्तृगोपालादिसच्छूद्रपरमिति । तच्च कलियुगातिरिक्तयुगविषयमिति वक्ष्यते । यत्तु भविष्यपुराणे—

आवाहनादि कर्तव्यं यथा शूद्रेण तच्छृणु ।

देवानां देवानाम्ना तु पितॄणां नामगोत्रतः ॥

पिण्डांश्च निर्वपेद्वीर नामतो गोत्रतस्तथा ॥

इति शूद्राणां गोत्रमुक्तं तत्र केचिद्वदन्ति—'तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्यः' इति सामान्यदर्शनात्सर्वशूद्राणां काश्यपं गोत्रम् । तस्य च श्राद्ध एवोत्कीर्तनं नान्यत्र ' यावद्वचनं वाचनिकम् ' इति न्यायात् । अन्यथा सर्वशूद्राणामेकगोत्रत्वादविवाहः प्रसज्येतेति । अन्ये तु मुख्यशूद्रस्य सप्तर्ष्यन्यतमापत्यत्वाभावाच्छूद्रायामुत्पन्नः पारसवो गृह्यत इत्याहुः । युक्तं तु ब्राह्मणेनोत्पादितः पारसवस्तेन शूद्रोऽढा तदुत्पन्नेन पुनः शूद्रोऽढेत्येवं सप्तमे शूद्रो भवति । तस्य परंपरया सप्तर्ष्यन्यतमापत्यत्वेन गोत्रसत्वान्तत्परमेवेति । अन्ये शूद्रधर्मा आशौचादयस्तत्र तत्र वक्ष्यन्ते शान्तिकादावप्यधिकारः शान्तिमयूखे स्थापयिष्यते । अन्ये च—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥
इति साधारणधर्मा अपि ज्ञेयाः । इति शूद्रधर्माः ।

आश्रमधर्माः

अथाश्रमधर्माः । तत्र ब्रह्मचारिधर्मा उक्ताः । गृहस्थो द्विविध उक्तो देवलेन—‘द्विविधो गृहस्थो यायावरः शालीनश्च । तयोर्यायावरः प्रवरो याजनाध्यापनप्रतिग्रहवर्जनादिति । तस्य जीवनोपायमाह याज्ञवल्क्यः—
'जीवेद्वापि शिलोच्छेदेन' इति । गृहीतधान्ये क्षेत्रे पतितमश्वरीग्रहणं शिलम् । एकैककणग्रहणमुच्छ्रम् । धान्यस्य संचय उक्तस्तेनैव—

कुशूलकुन्भीधान्यो वा आहि कोऽधस्तनोऽपि वा । इति ।

स्वकुटुम्बपोषणपरिमितं द्वादशदिनपर्याप्तमन्नं यः संगृह्णाति स कुशूल-
आश्रमधर्माः । धान्यः । पङ्क्तिपर्याप्तसंमर्हता कुन्भीधान्यः आहिकाऽधस्तनौ स्पष्टौ । ययां मध्ये परः परः श्रेष्ठः । शालीनमाह देवलः—‘पट्कर्माधिष्ठितः प्रेष्यचतुष्पदगृहप्राप्तमधनधान्यस्युक्तो लोकानुवर्त्ती शालीनः’ इति । स चतुर्विधः । यथोक्तं मनुना—

पट्कर्माको भवत्येषां त्रिमिरन्यः प्रवर्तते ।

द्वाभ्यामन्यश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसन्नेष जीवति ॥ इति ।

अस्यार्थः—कश्चिद्याजनाध्यापनप्रतिग्रहकृपिवाणिज्यपाशुपालैः पद्भि-
र्जीवति । अन्यस्त्रिभिः प्रतिग्रहाध्यापनयाजनैः । तृतीयो द्वाभ्यां याज-
नाध्यापनाभ्यां चतुर्थस्त्वध्यापनेनैवेति । एतेष्वपि परः परः श्रेष्ठः । अन्ये
गृहस्थधर्मा उक्ता वक्ष्यन्ते च ॥

इति गृहस्थधर्माः ।

तृतीयाश्रममाह याज्ञवल्क्यः—

सुतविन्यस्तपनीकस्तया वाऽनुगतो वनम् ।

वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साभिः सोपासनो व्रजेत् ॥ इति ।

भार्यायां तिष्ठन्त्यामपि ब्रह्मचारी । तत्कालमाह मनुः—

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।

अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ इति ।

सुतनिक्षेपादि पत्न्यां विद्यमानायाम् । तत्र कृत्यमाह मनुः—

तृताया-
थमः

पैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ॥
दर्शमस्कन्दयन्पर्व पूर्णमासं च योगतः । इति ।

याज्ञवल्क्यः—अफालकृष्टेनार्घ्याश्च पितृन्देवातिथीनपि ॥

भृत्यांश्च तर्पयेच्छमश्रुजटालोमभृदात्मवान् ।

मनुः—संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् । इति ।

अत्र संचयमाह याज्ञवल्क्यः—

अहो मासस्य पण्णां वा तथा संवत्सरस्य वा ।

अर्घ्यस्य संचयं कुर्यात्कृतमाभ्युज्जे त्यजेत् ॥

दान्तस्त्रिपयणद्वार्या निवृत्तश्च प्रतिग्रहात् ।

स्वाध्यायचान्दानशीलः सर्वसत्त्वहिते रतः ॥

दन्तोत्सृज्यलिकः कालपकाशी वाऽश्मकुट्टकः ।

श्रौतं स्मार्तं फलस्नेहैः कर्म कुर्यात्क्रियास्तथां ॥

वितुपीकरणसाधनं दन्ता एवेत्यर्थः । कालेन पक्वमभर्ताति
कालपकाशी । फलमिह्नुदादि तस्य स्नेहैः । कर्म श्रौतादि । क्रियाः
प्रतार्चनादयः । तथा—

चान्द्रायणैर्नयेत्कालं कृच्छ्रैर्वा वर्तयेत्सदा ।

पक्षे गते वाऽप्यश्रीयान्मासे वाऽहनि वा गते ॥

स्वप्याद्रूमौ शुची रात्रौ दिवंसं प्रपदैर्नयेत् ।

स्थानासनविहारैर्वा योगाभ्यासेन वा तथा ॥

रात्राविति दिवसव्यावृत्त्यर्थम् । प्रपदैरटनैः ।

मीप्से पञ्चामिप्रमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः ॥

पञ्चामिप्रकारश्च चतुर्दिक्षु चत्वारोऽप्रयः एकः सूर्य इति पञ्च । अन्यत्र
द्वादशामिप्रकारोऽपि । तद्यथा—स्वस्य परितः एकादशान्यायतनान्येकः
सूर्यश्चेति । स्थण्डिलेशय इति आवरणरहिते देशे स्थेयमित्यर्थः । शयन-
मुपलक्षणम् । तेनोपवेशनाद्यपि ग्राह्यम् ।

आर्द्रवासास्तु हेमन्ते शक्त्या वाऽपि तपश्चरेत् ।

कण्टकैर्यश्च तुदति चन्दनैर्यश्च लिम्पति ॥

अक्रुद्धोऽपरितुष्टश्च समस्तस्य च तस्य च ।

संन्यासः ।

पूर्वं वन्याहारतोक्ता । इदानीं ग्रामादाहृत्याप्याहारं कुर्यादित्याह
स एव—

ग्रामादाहृत्य वा ग्रामानश्रौ मुञ्जीत वाग्यतः ।

वायुभक्षः प्रागुदीचीं गच्छेद्वाऽऽवर्ष्मसद्वयात् ॥ इति ।

प्रागुदीचीं पेशानी । इति वानप्रस्थधर्माः ।

संन्यासः ।

संन्यासमाह याज्ञवल्क्यः—

वनाद्वृहाद्वा कृत्वेष्टिं सार्ववेदसदक्षिणाम् ।

प्राजापत्यां तदन्ते तान्मनीनारोप्य चात्मनि ॥

अधीतवेदो जपकृत्पुनवानन्नदोऽग्निमान् ।

शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनः कुर्यात्तु नान्यथा ॥ इति ।

अग्नारोपादि गृहात्संन्यासे । वैराग्यं चाभिकारिविशेषणम् । 'यदह-

रेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' इति श्रुतेः । याज्ञवल्क्यः—

अवेक्ष्या गर्भवासाश्च कर्मजा गतयस्तथा ।

आधयो व्याधयः क्लेशा जरा रूपविपर्ययः ॥

भवो जातिसहस्रेषु प्रियाप्रियविपर्ययः । इति ।

एतद्विचारे क्रियमाणे वैराग्यं भवतीति । अस्य चातुर्विध्यमाहात्रिः—

चतुर्विधो भिक्षुकः स्यात्कुटीचरयद्दकौ ।

हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात्स उत्तमः ॥

कचिल्लुटीचक इति पाठः । तत्राद्ययोर्द्वयोः शिखासूत्रधारणं पुत्रद-
त्तान्नभोजनं भवति । परंतु सर्वव्यासङ्गान्विहायाध्यात्मविद्याऽभ्यसनीया ।

हंसस्तु पुत्रादीनां त्यागं कृत्वा वनादौ वसेत् । शिखासूत्रे वैकल्पिके । पर-

महंसो मुण्डः सूत्ररहितश्च । सर्वेषां ब्रह्मविद्याभ्यासस्तुल्यः । अस्माभिरु-

प्रायशः परमहंसधर्मा एवोच्यन्ते त उक्तः श्रुतौ—सोऽयं परिव्राडेकशती-

परिहितो मुण्डो दारुपात्रोरण्यनित्यो भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशेदासायं प्रदक्षि-

णेनाऽविचिकित्सन्सार्ववर्णभैक्षचर्यममिशस्तपतित्वजर्मयज्ञोपवीतो शौच-

निष्ठः काममेकं वैष्णवं दण्डमाददीत' इति । 'सार्ववर्णमापदि' तत्र शूद्रादाम-

ग्रहणम् । काममिति वैकल्पिकदण्डग्रहणम् । परमहंसस्यायमेक एव दण्डः ।
त्रिदण्डादिकं हंसादीनाम् । अत एव परमहंससंन्यासग्रहणे तेषां त्याग-
उक्तः । अत ऊर्ध्वं यज्ञोपवीतमासनं शिखां यष्टयः शिष्यमित्येतानि वर्ज-

यित्वाऽथ दण्डमादत्ते 'सखा मां गोपायति' इति । संन्यासश्च ज्ञान-
प्रतिबन्धकदुरितनाशद्वारा ज्ञानसाधनमिति स्थितमुत्तरमीमांसायाम् ।
क्वचिज्जन्मान्तरीयः संन्यासोऽन्यजन्मन्युपयुज्यते । तथाच श्रूयते—
'यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत्' इति । अयं च संन्यासो
न पूर्वसंन्यासापेक्षया कर्मान्तरम् । पूर्वस्योपस्थितत्वादौरवात्प्रमाणा-
भावाच्च । अतः पूर्वोत्पन्नस्य संन्यासस्य यदि 'प्राज्ञणो यजेत' इत्यादि-
वद्यातुरकर्तृकप्रयोगान्तरं विधीयते तत्रापि वैराग्यमपेक्षितमेव । न
चातुरस्य वैराग्यसत्त्वे 'यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' इत्यनेनैव
प्राप्तेरनर्थकं पुनर्विधानमिति वाच्यम् । संन्यासस्य काम्यत्वेन सर्वाङ्गो-
पसंहारासमर्थमातुरं प्रत्यप्राप्तेः । अतोऽर्थवद्वचनमिति । विस्तरस्तु दुर्गमत्व-
भिया नेह प्रतन्यते । अद्विरा अपि—

अन्धः पङ्कुर्दरिद्रो वा विरक्तः संन्यसेद्विजः ।

सर्वेषामेव वैराग्यं संन्यासे तु विधीयते ॥ इति ।

सुमन्तुः—आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया ।

प्रेषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र कारयेत् ॥ इति ।

तत्र संन्यासाङ्गभूतं आर्द्धं आर्द्धमयूखे वक्ष्यते ।

गोभिलः—ततः समाचरेत्तानां हेमरूप्यकुशाम्भसा ।

कृत्वा तु वपनं विद्वान्भवेन्मुण्डोऽथवा शिली ॥

यद्वृचगृह्यपरिशिष्टे—'अथ पुत्रान्सुहृदो वन्धून्प्रत्याह न मे कश्चिन्नाहं कस्य-
चित्' इति । ततः 'पुत्रेपणायाश्च वित्तेपणायाश्च लोकेपणायाश्च व्युत्थितो-
ऽहम्' इति अपः पाणिना हुत्वा शिखार्थं रक्षितान्केशानुत्पाट्याथ यज्ञोपवीतं
भूमावप्सु वा निक्षिपेत् । ततः प्राङ्मुखस्तिष्ठन्नूर्ध्वबाहुर्धूयात् 'संन्यस्तं मया'
इति त्रिः ॥ 'अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः' इति उदकपूर्णमञ्जलिं निनयेत् ।

यतिनामानि ।

अथ नामानि—तीर्थोश्रमवनारण्यगिरिपर्वतसागराः ।

सरस्वती भारती च पुरी नाम यतेर्दश ॥ इति ।

ततो गुरुद्वैतब्रह्मोपदेशं कुर्यात् । ततो नम्र उदीची दिशं गच्छेत् ।
यदि विविदिपुस्ततः श्रवणार्थं गुरुसमीपमागच्छेत् । उक्तं च—'तद्वि-
ज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' इति ।
ततः कौपीनं कटिसूत्रं चोपाददीत । अत्रिर्विशेषमाह—

कौर्षनाच्छादनं वासः कन्था र्शितनिवारिणी ।

पादुके चापि गृहीयात्कुर्यान्नान्यस्य संप्रहम् ॥ इति ।

गुरोश्च सेवा कायवाङ्मनोभिः कार्या । एवंसंन्यस्तस्य धर्मानाह
पराशरः—

एकाकी निस्पृहस्तिष्ठेन्न केनापि सहालपेत् ।

दद्यान्नारायणेत्येवं प्रतिवाक्यं सदा यतिः ॥

दक्षः—एको भिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वौवेव भिक्षुनं स्मृतम् ।

त्रयो ग्रामः समाख्यात ऊर्ध्वं तु नगरं स्मृतम् ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः—

अग्रमत्तश्चरेन्नैक्षं सायाह्ने नाभिलक्षितः ।

रहिते भिक्षुकैर्मामे यात्रामात्रमलोलुपः ॥

यात्रामात्रं कुर्यात् प्राणयात्रां, अतिनृत्पा न मुञ्चतिस्वर्थः ।

वसिष्ठः—‘ सप्तागाराण्यसंकल्पितानि चरेन्नैक्षमेकवारम् ’ इति ।

तत्कालमाह मनुः—

विधूमे सन्नमुशले व्यङ्गारे भुक्तवज्जते ।

वृत्ते शरावस्तपाते नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत् ॥ इति ।

तथाष्टौ मासान् कारं(?) कल्पयिष्येत् । चतुरो चार्पिकान्मासानेकत्र तिष्ठेत्
इति । चत्वारः श्रावणादिकार्तिकान्ताः । तत्र च मासचतुष्टयपर्यन्तं केश-
सखादिधारणम् । अन्यत्र तु ‘ ऋतुसन्धिषु वापयेत् ’ । इति मासद्वयोक्त-
रम् । केचित्तत्रापि पक्षा वै मासा इति लिङ्गदर्शनान्मासमात्रमेवाहुतिष्ठन्ति ।

यतिपात्राणि ।

पात्राण्याह याज्ञवल्क्यः—

यतिपात्राणि गुह्येणुदार्क्येणवुमयानि च ।

सलिलैः शुद्धिरेतेषां गोघातैश्चावर्षणम् ॥ इति ।

यतेस्ताम्वूलं निपिष्टं वायुपुराणे—

द्वौवेतौ समवीर्यौ तु सुराताम्वूलमेव च ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ताम्वूलं वर्जयेद्यतिः ॥

तथा सर्वदा प्रणवजपपूर्वं ब्रह्मातृभ्यान्नरतो भवेत् । गयायां यतिविशेषः—

गयायां मुण्डपृष्ठे च कूपे यूपे वटे तथा ।

दण्डं प्रदर्शयेद्भिः पितृभिः सह मुच्यते ॥

प्रदर्शयेत्स्पर्शयेत् । एवं संन्यासपूर्वकं जातस्य ज्ञानस्यफलमुक्तं श्रुतौ—

‘ ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति ’ इति । जावालश्रुतौ—

शतं कुल्यानां पुरतो वभूव तथा पराणां त्रिशतं समग्रम् ।

एते भवन्ति सुकृतस्य लोके येषां कुले संन्यसतीह विप्रः ॥ इति ।

यतिमरणे विशेषः—

सर्वसङ्गनिवृत्तस्य ध्यानयोगपरस्य च ।

न तस्य दहनं कार्यं नाशौचं नोदकक्रिया ॥

निदध्यात्प्रणवेनैव ध्यायन् भिक्षोः कलेवरम् ।

प्रोक्षणं स्नानं चैव सर्वं तेनैव कारयेत् ॥ इति ।

एते च संक्षेपेणोक्ता यति धर्माः । विस्तरस्तु विश्वेश्वरनिबन्धादौ द्रष्टव्यः ।

इति श्रीसैमरवंशावतंसमहाराजाधिराजभोगवन्तदेवादिष्टश्रीजगद्गुरुभट्टनारायण-

सूरिदनुपण्डितशिरोरत्नमीमांसापारिवारपारीणधुरीणभट्टशंकरात्मज-

भट्टनीलकण्ठामजभट्टशूरकृतौ संस्कारभास्करः समाप्तः ।

कातीयसूत्रानुसारिप्रयोगः ।

अथ पूर्वोद्दिष्टानां संस्काराणां कातीयसूत्रानुसारेण प्रयोगा लिख्यन्ते ।

तत्र परिभाषासूत्रम् । ‘ अथातो गृह्यस्थालीपाकानां कर्म परिसमुद्घोषलि-
प्योद्धिख्योद्धृत्याभ्युक्ष्याग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य प्रणी-
य परिस्तीर्यार्थवदासाद्य पवित्रे कृत्वा प्रोक्षणीः संस्कृत्यार्थवत्प्रोक्ष्य निरु-
प्याज्यमभिधित्य पर्यग्निं कुर्यात् । सुवं प्रतप्य संसृज्याभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य
निदध्यादाज्यमुद्रास्योत्पूयावेक्ष्य प्रोक्षणीश्च पूर्ववदुपयमनान् कुशानादाय
समिधोऽभ्याधाय पर्युक्ष्य जुहुयादेव एव विधिर्यत्र कचिद्धोमः ’ इति ।
ब्रह्मासने ब्रह्मोपवेशनीयः ।

अथ सर्वत्रोपयुक्तः स्थालीपाकप्रयोगः ।

तत्र प्रथमारम्भे पुण्याहमातृपूजाभ्युदयिकानि कृत्वा देशकालौ
स्मृत्वा ‘ अमुकस्थालीपाकेन यक्ष्ये ’ इति संकल्प्य ‘ अमुककर्मणि
कृताकृतप्रत्यवेक्षणार्थं ब्रह्माणं त्वां वृणे ’ इति ब्रह्माणं वृत्वा शुद्धायां भूमौ
दर्भेऽग्निः परिसमुद्घोषलिप्य रस्येनोद्धिख्यानानामिकाङ्क्षेनोद्धृत्याद्भिरभ्यु-
क्ष्याग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य तत्र ब्रह्माणमुपवेश्य

प्रणीताः प्रणयेत् । तद्यथा—वामहस्ते वारुणं चमसमादाय दक्षिणेन जलं संपूर्यान्नेरुत्तरतो निधाय जलं स्पृष्ट्वाऽग्नेरीशान्यां स्थापयेत् । ततः प्रागग्रैः कुशैः परिस्तरणम् । तत उत्तरतोऽग्नेरर्थवतां पात्राणामासादनम् । तद्यथा । पवित्रलेदनकुशाः पवित्रे द्वे प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली चरुस्थाली संमार्गकुशा उपयमनकुशाः समिवस्तिन्नः प्रादेशमाज्यः स्वादिरः सुवः आज्यं तण्डुलाः पूर्णपात्रं चेत्येतान्यासादयेत् । ततस्त्रिभिः कुशैः कुशद्वयं छिन्वा प्रादेशमात्रं स्थापयेत् । ततः प्रोक्षणीपात्रे प्रणीतोदकमासिच्य पवित्राभ्यामुत्पवनम् । तदेव पात्रं सव्यहस्ते निधाय सव्यहस्तस्थितस्यैव दक्षिणेनोदिङ्गन्तम् । ततो भूमौ निधाय प्रणीतोदकेन प्रोक्षेत् । तत आसादितानामेकैकस्य प्रोक्षणं प्रोक्षण्युदकेन । ततः प्रणीताद्योर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रस्य निधानम् । तत आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः । चरुस्थाल्यां तण्डुलप्रक्षेपः । त्रिः प्रक्षालनम् । आज्याधिश्रयणम् । आज्यादुत्तरतश्चरोरधिश्रयणम् । उभयोः पर्याग्निकरणम् । उदकोपस्पर्शनम् । चरुश्रयणं कृत्वाऽर्धशृते चरौ सुवप्रतपनं संमार्गकुशैः संमार्जनम् । अग्रैरग्रं मूलेर्मूलं प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य निदधाति । आज्योद्भासनम् । ततश्चरोरुद्भासनम् । शृतानां तु पूर्वैणोद्भासितानां तु पृष्ठतः । पवित्राभ्यामाज्योत्पवनम् । ततोऽवेक्षणम् । तत आज्यमध्ये पतितापद्रव्यनिरसनम् । प्रोक्षण्युत्पवनम् । उपयमनकुशादानम् । ततस्तिष्ठन्समिधोऽभ्याधाय प्रोक्षण्युदकेनाग्निं पर्युक्षेत् । पवित्रयोः प्रणीतामध्ये निधानम् । ततो दक्षिणं ज्ञान्वाज्यं सुवेणाज्यमादाय जुहोति ' प्रजापतये स्वाहा ' इति पश्चिमत आरभ्य पूर्वपर्यन्तमाचारयेत् । इदं प्रजापतये न मम इति त्यागः । संस्मर्य प्रोक्षणीमध्ये स्थापयेत् । एवं सर्वत्र ॥ ' इन्द्राय स्वाहा ' इति तथैव इन्द्रमिन्द्राय न मम इति । एतावापारौ ॥ ' अग्नयेस्वाहा ' इति पूर्वोत्तरतः । ' सोमाय स्वाहा ' इति पूर्वदक्षिणतः । एतावाज्यमागौ ॥ ततः प्रधानहोमः ॥ ततः ' अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ' इति स्विष्टकृत् ॥ आज्यहोमे स्विष्टकृत् सर्वहोमान्ते मवति ॥ ततो व्याहृतिभिराज्यं जुहुयात् । ' मूःस्वाहा ' इदमग्नये । ' सुवःस्वाहा ' इदं वायवे । ' स्वःस्वाहा ' इदं सूर्याय । ' मूर्मुवःस्वःस्वाहा ' इदं प्रजापतये ॥ ततः ' त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोअवया सिसीप्ताः । यजिष्ठो वहितमः शोशुचानो विश्वा द्वेपांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ' इदमग्नीवरुणाभ्याम् । ' स त्वं नो अग्ने वमो भवोती नेदिष्ठो अस्या

उपसो व्युष्टौ । अत्र यक्ष्यन्तो वरुण ऋराणो वीहिमृडीक सुहवो न
 एधि स्वाहा ' इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम । ' अयाश्चाग्नेऽस्यनभिदास्ति-
 पाश्च सत्यमित्वमया असि । अयानो यज्ञं वहस्ययानो धेहि भेषजं
 स्वाहा ' इदमग्नेये अयसे । ' ये ते शतं वरुणं ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा
 वितता महान्तः । तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुश्वन्तु मरुतः स्वर्काः
 स्वाहा ' इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यो न
 मम । ' उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यम ऋत्रथाय । अथावयमा-
 दित्य ऋते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ' इदं वरुणायादित्यायादितये ।
 ' प्रजापतये स्वाहा ' इदं प्रजापतये । एता आज्याहुतीर्गृह्यणाऽन्वा-
 रब्धो जुहोति ॥ ततः संस्त्रवप्राशनम् । पवित्रे अग्नौ प्रहरति । ब्रह्मणे पूर्ण-
 पात्रं दक्षिणा । प्रणीताविमोक्तः । उपयमनस्याग्नौ प्रक्षेपः । यत्र ब्राह्मणभो-
 जनमात्रातं तत्र तत्कुर्यात् । इति सकलस्थालीपाकेतिकर्तव्यता । आज्य-
 होमे चरुसंवद्धपदार्थनिवृत्तिः । अन्यत्समानम् ॥

पुंसवनम् ।

अथपुंसवनम् । गर्भाधानोत्तरं द्वितीये तृतीये वा मासि पूर्वो-
 क्तकाले कर्ता शुचिर्गर्भिणीमुपवासं कारयित्वा स्नापयित्वाऽह्ने वाससी
 परिधाप्य कालाशुल्लिख्य ' अस्य गर्भस्य बीजगर्भसमुद्भवैर्नोनिवर्हणार्थं
 पुंसवनं करिष्ये ' इति संकल्प्य पुण्याहमातृपूजाभ्युदयिकानि कृत्वा न्यमो-
 धाऽवरोहामपह्नवानुदकेन पिष्ट्वा ' हिरण्यगर्भोऽद्भ्यः संभूत- ' इति द्वाभ्यामृ-
 गभ्यां पश्या नासिकादक्षिणपुटे आसिञ्चेत् । अत्र यदि मे वीर्यवान् पुत्रो
 भवत्विति कामना तत उदकपूर्णं शरावं बध्वा उपस्थे स्थापयित्वा ' सुपर्णो-
 ऽसि ' इति विकृतिच्छन्दस्कया ' स्वःपत ' इत्यन्तया गर्भाशयं स्पृष्ट्वा
 अभिमन्त्रयेत् ॥ इति पुंसवनम् ॥

सीमन्तोन्नयनम् ।

अथ सीमन्तोन्नयनम् । कर्ता शुचिर्दर्भपाणिर्देशकालौ स्मृत्वा ' बीज-
 गर्भसमुद्भवैर्नोनिवर्हणार्थं परमेश्वरप्रीत्यर्थं सीमन्तोन्नयनं करिष्ये ' इति संकल्प्य पुण्याहवाचनमातृपूजाभ्युदयिकानि कृत्वा पञ्च भूसंस्का-
 रान्कृत्वा लौकिकगामिमुपसमाधायाऽऽज्यभागान्तं कृत्वा तिलमुद्गमिश्रेण
 चरुणा ' प्रजापतये स्वाहा ' इति जुहुयात् । इदं प्रजापतये इति त्यागः

तत् उत्तरार्धात्स्विष्टकृतं हुत्वा व्याहृत्यादिनवाहुर्ताहुत्वा संश्रवं प्राश्य
ब्रह्मणे पूर्णपात्रं वरं वा दत्त्वाऽग्नेः पश्चात्कोमलासने भद्रपीठाख्ये गर्भिणीं
स्नातामद्वतवस्त्रासुषवेदय औदुम्बरेण युग्मफलवताऽपक्वस्तवकेन अश्वत्थ-
शङ्कुना त्रिभिश्च दर्भपिञ्ज्रलैस्त्रेभ्यः शलल्या सूत्रकर्तनार्थया च सूत्र्या
इत्येतैरेकीकृतैस्ततः सीमन्तं विनयति 'भूर्भुवःस्वर्विनयामि' इति मन्त्रेण ।
यद्वा 'भूर्विनयामि भुवर्विनयामि स्वर्विनयामि' इति त्रिभिर्मन्त्रैस्त्रिवि-
नयति । ततस्तत्सर्वं वेण्यां वध्नाति । 'अपमूर्जाक्तो वृक्ष उज्जीव फलितो
भक्ष' इति मन्त्रेण । ततो वीणागायिनीं प्रति 'राजानं संगायिताम्'
इति प्रैषं ददाति । यद्वा 'सोमं राजानं संगायिताम्' इति प्रैषः । तौ च
प्रेषितौ 'सोम एव नो राजेमा मानुषीः प्रजाः । अविमुक्तचक्र आसीर-
स्तीरे तुभ्यमसौ' इति गाथां गायतः असौस्थाने समीपावस्थिताया गङ्गा-
प्रमुख्या नद्या नाम गृह्णाति स्त्री ॥ इति सीमन्तः ॥

सोप्यन्तीकर्म ।

अथ सोप्यन्ती कर्ता शुचिः प्रसूतिशूलवती स्त्रियं 'एजतु दशमास्यः'
इत्युक्त्वा 'अस्रज्जरायुणा सह' इत्यन्तयाऽद्भिरभ्युक्षति । ततः स्त्रीसमीपे
'अथैतु पृथिशेवल५ शुने जरा गृत्तवे । नैव मा५ सेन पीवरी न कस्मिन्
नायतनमवजगयु पद्यताम्' इति मन्त्रं जपेत् ॥

जातकर्म ।

अथ कुम्भारे जाते नालच्छेदात्पूर्वं स्नात्वा पुण्याहवाचनवृद्धिश्राद्धादि
कृत्वा 'जातकर्म करिष्ये' इति संकल्प्य भेदाजननायुष्ये कुर्यात् । भेदाजननं
यथा । अनामिकया सुवर्णान्ताहृतया मधुघृते मिश्रयित्वा केवलं वा घृतं
'भूर्स्त्वयि दधामि भुवस्त्वयि दधामि स्वस्त्वयि दधामि भूर्भुवःस्वःसर्वं त्वयि
दधामि' इति मन्त्रेण सकृत्प्रादयेत् । आयुष्यं यथा । कुमारस्य नाभिसमीपे
कर्णसमीपे वा 'अग्निरायुष्मान्' इत्यष्टौ मन्त्रान् त्रिजपेत् । ते यथा ।
'अग्निरायुष्मान्स वनस्पतिमिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ।
सोम आयुष्मान्स ओषधीभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ।
ब्रह्माऽऽयुष्मन्तद्वाङ्मनैरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि । देवा आ-
युष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि । ऋषय आयु-
ष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि । पितर आयु-
ष्मन्तस्ते स्वर्गाभिरायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि । यज्ञ आयु-

पमान्स दक्षिणाभिरायुष्मास्तेन त्वाऽऽयुपाऽऽयुष्मन्तं करोमि । समुद्र
 आयुष्मान्स स्रवन्तीभिरायुष्मास्तेन त्वाऽऽयुपाऽऽयुष्मन्तं करोमि । ततः त्र्यायुषं
 जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषं यदेवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुष्म' इति मन्त्रं ज-
 पति । यदि पिता कामयेताऽयं कुमारः सर्वमायुरिय्यादिति तदा कुमारमभिसृ-
 शेत् 'दिवस्परि—' इत्यनुवाकेन । अथ चतुरो ब्राह्मणान् कुमारस्य चतुर्दिक्षु एकं
 च मध्ये स्थापयित्वा इममनुप्राणितेति तान् प्रेष्यति । ततः पूर्वादिदिगवस्थिता
 ब्राह्मणाः क्रमेणैव कुमारं लक्ष्मीकृत्य चतुरो मन्त्रान्पठन्ति 'प्राणः व्यानः अपान
 उदानः' मध्यस्थः पथम उपरिष्ठाद्वेक्षमाणो ध्रूयात् 'समानः' इति । ब्राह्मणा-
 भावे स्वयमेव तस्यां दिशि स्थित्वा मन्त्रान्ध्रूयात् । तदा तु प्रैषाभावः । ततो
 यस्मिन्देहे कुमारो जातस्तं देशं 'वेदते भूमि हृदयं द्विवि चन्द्रमासि श्रितम् ।
 वेदाहं तन्माता विश्वात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः
 शतम्' इति मन्त्रेण कुमारमभिमृशति । ततः कुमारस्य मातरम् 'इडाऽसि
 मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः । सात्वं वीरवती भव यास्मान्वीरवतो-
 करत्' इति मन्त्रेणाभिमन्त्रयेत् । अथ सूतिकाया दक्षिणं स्तनं प्रक्षाल्य
 'इमं स्तनम्' इत्युच्चा कुमाराय प्रयच्छति । ततो 'यस्ते स्तनः—' इत्युच्चा-
 द्वयेन वामं प्रक्षाल्य प्रयच्छति । ततः कुमारस्य शिरःप्रदेशे जलपूर्णं
 पात्रम् 'आपो देवेषु जाग्रथ यथा देवेषु जाग्रथ । एवमस्याः सूतिकायां
 सपुत्रिकायां जाग्रथ' इति मन्त्रेण स्थापयेत् । तदुदपात्रं यावत्सूतिकोत्थानं
 तावत्तिष्ठेत् । ततः सूतिकागृहद्वारे पूर्वोक्तान्पथभूसंस्कारान्कृत्वाऽग्निं स्थाप-
 येत् । ततः तण्डुलकणमिश्रान्सायं प्रातर्जुहोति । सायमाहुतिद्वयं प्रातश्चेति ।
 तथा—'शण्डामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उल्लसलः । मलिम्लुचो द्रोणास-
 श्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा ॥ १ ॥ आलिखन्ननिमिषः किंवदन्त उपश्रु-
 तिः । हर्यक्षः कुम्भीशत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्पपारुणश्च्यवनो
 नश्यतादितः स्वाहा ॥ २ ॥ 'इदमग्नये' इत्युभयत्र त्याग इति हरिहरः ॥

नैमित्तिकम् ।

अथ नैमित्तिकं यदि कुमारग्रहो वाल्मभिभवत्तदा मत्स्यग्रहणजालेनो-
 त्तरीयेण वा तं प्रच्छाद्याङ्गे गृहीत्वा वक्ष्यमाणं जपेत्—'कूर्कुरः सकूर्कुरः
 कूर्कुरो वाल्वन्धनः । चेबेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरोलपेतापह्वर
 तत्सत्यम् । यत्ते देवावरमददुः स त्वं कुमारमेवावृणीयाः । चेबेच्छुनक
 सृज नमस्ते अस्तु सीसरोलपेतापह्वर तत्सत्यम् ॥ यत्ते देवा वरम-

ददुः स त्वं कुमारमेवावृणीथाः । चेबेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरो
लपेतापहर तत्सत्यम् ॥ यत्ते सरमा माता सीसरः पिता श्यामशत्रुलौ
भ्रातरौ । चेबेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरो लपेतापहर ' इति ॥
ततो न नामयति न रुदति न हृष्यति न ग्लायति । यत्र वयं वदामो
यत्र चाऽभिमृशामसि ' इत्यनेन बालमभिमन्त्रयेत् ॥ इति जातकर्मादि ॥

नामकरणम् ।

सूतकान्ते सूतिकासुत्याप्य नामकरणाद्वृतया त्रान्द्राक्षणाभोजयित्वा ।
शुचिर्देशकालौ स्मृत्वा ' बालस्य वीजगर्भसमुद्भवैनोनाशार्थं नाम करिष्ये '
इति संकल्प्य पुण्याहवाचननान्दीश्राद्धादि कृत्वा नाम कुर्यात् । अत्रायं
शिष्टाचारः । पिण्डलपत्रादौ करिष्यमाणन्ताम लिखित्वा संपूज्य ब्राह्म-
णानुद्वातो बालस्य दक्षिणे कर्णे कथयेत् ' वैश्रनामासि ' इति ॥

निष्क्रमणम् ।

अथ निष्क्रमणम् । चतुर्थे मासि शुभे दिने शुचिर्नान्दीश्राद्धे कृत्वा
बालकं ' तवसुः ' इति मन्त्रेण सूर्यं दर्शयति । यदि पिता प्रोषितः पुत्र-
जन्मोत्तरं गृहे आगच्छति तदा गृहोपस्थानं कुर्यात् । ' गृहा मा वि-
भोत ' इति । ततः पुत्रं दृष्ट्वा ' अद्वाद्वात्संभवसि हृदयादधिजायसे ।
आत्मा वै पुत्र नामाऽसि स जीव शरदः शतम् ' इति जपेत् । ततः ' प्र-
जापतेष्व हिंकारेणावजिघ्रामि । सहस्रायुषाऽमुकशर्मन् स जीव शरदः
शतम् ' इति मन्त्रेण कुमारस्य मूर्धनं जिघ्रेत् । ततः पुनः ' गवां त्वाहिंकारे-
णावजिघ्रामि सहस्रायुषाऽमुकशर्मन् जीव शरदः शतम् ' इति मन्त्रेण सकृ-
न्मूर्धनमवजिघ्रति द्विस्तूर्णाम् । ततो बालस्य दक्षिणे कर्णे ' अस्मे प्रयन्धि
मप्यवृज्जीपित्रिन्द्र रायो विश्वधारस्य भूरेः । अस्मे शतं शरदो जीव-
सेधा अस्मै वीराञ्छत इन्द्र शिप्रिन् ' इति मन्त्रं जपेत् । ततः सव्ये
' इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चिप्तिं दक्षस्य सुमन्त्रमस्मे । पोषं रया-
णामरिष्टं तनूनां स्वात्मानं वाचः सुदिनत्वमहाम् ' इति जपेत् । कन्या-
यास्तु मूर्धोवघ्राणमात्रं न मन्त्रजपः ॥

अन्नप्राशनम् ।

अथान्नप्राशनम् । पूर्वोक्ते देवशोदिते मुहूर्ते ' शिशोरस्य वीजगर्भस-
मुद्भवैनोनिवर्धनार्थमन्नप्राशनमहं करिष्ये ' इति संकल्प्य पुण्याहवाचमुद-

यिकान्तं कृत्वा पञ्चभूसंस्कारचरुश्रपणाद्याज्यभागान्तं पूर्ववत्कुर्यात् । तत्र प्रधानम् । 'देवा वाचमजयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति । सा नो मन्त्रेण मूर्जे दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसृष्टुतैतु स्वाहा' इदं देव्यै वाचे । देवीं वाचमिति मन्त्रं पुनः पठित्वा वाज इत्यमरा त्रिष्टुप् छन्दः अन्नदेवहोमे विनियोगः । 'वाजो नो अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाः ऋतुभिः कल्पयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयं स्वाहा' इदं वाचे वाजाय इति स्त्रागः । इदमाहुतिद्वयभाज्येन । ततः स्थालीपाकेन जुहुयात् । तद्यथा—'प्राणेनान्नमशीय स्वाहा । इदं प्राणाय । अपानेन गन्धानशीय स्वाहा । इदमपानाय । चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा । इदं चक्षुषे । श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा । इदं श्रोत्राय ॥ एवं चतस्र आहुतीर्हुत्वा स्विष्टकृदादिदक्षिणान्तं समाप्यैकस्मिन्पात्रे सर्वाङ्गरसान्समुद्धृत्य सकृत्तूर्णीं प्राशयेत् 'हन्त' इति मन्त्रेण वा । तत्र कान्यता—तत्र यदि बालस्य वाग्मिस्त्वमिच्छेत्तदा भरद्वाजपक्षिविशेषमांसं प्राशयेत् । यद्यन्नाद्यत्वं तर्हि कपिश्लमांसम् । यदि जवत्वं तदा मत्स्यमांसम् । यदि दीर्घायुष्यं तर्हि कुकपामांसम् । कुकपा गृहगोधिका । यदि सर्वाणि तदा सर्वमांसानि प्राशयेत् । ततः कर्मसमृद्धयर्थं ब्राह्मणभोजनम् ।

इत्यन्नप्राशनम् ॥

चूडाकरणम् ।

अथ चूडाकरणम् । तत्र कर्तोक्तान्यतमकाले मातृपूजाभ्युदयिके कृत्वा श्रीन्ब्राह्मणान्संभोज्य 'अस्य कुमारस्य धीजगर्भसमुद्भवैनोनिवर्हणबलायुर्वचोभिवृद्धयर्थं चौलकर्म करिष्ये' इति संकल्प्य शुद्धभूमौ लौकिकाग्निं संस्थाप्य मात्रङ्के कुमारमग्नेः पश्चिमत उपवेश्य ब्रह्मोपवेशनाद्याज्यभागान्तं कृत्वा । शीतोष्णोदके नवनीतघृतदध्यन्यतमं त्रिवेतां शल्लर्क्षं पृथक् पृथक् निवद्धानि त्रीणि त्रीणि कुक्षतरुणानि ताम्रपरिष्कृतमायसं भुरमान्डुहं गोमयं चेत्युपकल्प्य पवित्रकरणादिपर्युक्षणान्तं कृत्वा आधारादिस्विष्टकृदन्तं होमं विधाय संस्त्वान्प्राश्य पूर्णपात्रवरयोरन्यतरं ब्राह्मणे दत्त्वा 'उष्णेन वाय उदकेनेहादिते केशान्वप' इत्यनेन मन्त्रेण शीतास्वप्सु उष्णा अप आसिच्य नवनीताद्यन्यतमं च तामु प्रक्षिप्य तदुदकमादाय 'सवित्रा प्रसूता देव्या आप उन्दतु वे तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चसे' इत्यनेन मन्त्रेण दक्षिणं निरःप्रदेशं हेदयित्वा त्रेण्या शल्लत्या केशान्विनाय 'ओषधे

त्रायस्व । इति मन्त्रेण कुशतरुणान्यन्तर्धाय 'शिवो नामासि स्वधितिस्ते
 पिता नमस्ते अस्तु मामा हिंसीः' इत्युपकल्पितक्षुरमादाय कुशतरुणा-
 न्तर्हितेषु निर्वर्तयाम्नायुपेक्षायाय प्रजननाय गद्यस्थोपाय मुप्रगात्वाय
 सुधीर्याय' इत्यनेन मन्त्रेण क्षुरमभिनिधाय 'येनावपत्सविता क्षुरेण
 सोमस्य राक्षो वरुणस्य विद्वान् । तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्यायुष्यं जरम्ष्टि-
 र्यथास्तत्' इत्यनेन मन्त्रेण सकेशानि कुशतरुणानि प्रच्छिद्यानहुहे गोम-
 यपिण्डे उत्तरतो ध्रियमाणे प्रक्षिप्य एवमेव तूर्णीं धारद्वयं कुर्यात् । एवमेव
 पश्चिमोत्तरयोः शिरःप्रदेशयोः सकृत्समन्त्रं द्विस्तूर्णीं कुर्यात् । पश्चिमे
 'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् यद्वेपु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्'
 इति छेदनम् । उत्तरतो 'येन भूरिश्चरादिवं ज्योक् पश्चाद्वि सूर्यम्' । तेन ते
 वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये' इति छेदनम् ।
 अन्यदविशिष्टम् । ततो 'यक्षुरेण मज्जयता मुपेशसा वस्वावावपति केशा-
 ञ्छिन्धि शिरो मास्यायुः प्रमोषीः' इत्यनेन मन्त्रेण शिरःसमन्ताद्वदक्षि-
 णं क्षुरं ध्रामयेद्विस्तूर्णीम् । तनस्तेनैवोदकेन समस्तं शिर आग्राव्या-
 क्ष्ण्वन् परिबध' इत्यनेन मन्त्रेण नापिताय क्षुरं प्रयच्छेत् । ततो नापितः
 केशान्वपन्ययोक्तं केशशेषकरणं कुर्यात् । अथ सकेशं गोमयपिण्डमुदकादौ
 प्रक्षिप्याचार्याय वरं दद्यादिति । इयमेवेतिकर्तव्यता केशान्तेऽपि ज्ञेया ।
 इयौस्तु विशेषः । उष्णोदकासैकमन्त्रे 'उष्णेन घाय उदकेनेत्यादिते केश-
 श्मश्रु' वपनार्थं क्षुरपरिहरणे गुह्यसहितं शिरः परिहरेत् । मन्त्रे च 'यक्षु-
 रेण मज्जयता' इत्यादि 'मास्यायुः प्रमोषीर्मुखम्' इति । स्वाचार्याय च
 गौर्देयेति ॥

उपनयनम् ।

अथोपनयनम् । यथोक्तकाले मातृपूजाप्युदधिके कृत्वा कुमारं
 वापयित्वा त्रीन्ब्राह्मणान्संभोज्य पञ्चमसंस्कारान्विधाय लौकिकाग्निं
 संस्थाप्य कुमारमाचार्यसमीपमानीय तदक्षिणतोऽवस्थाप्याचार्येण 'ब्रह्म-
 चर्यमागामिति श्रूहि' इत्युक्तो बटुः 'ब्रह्मचर्यमागामिति श्रूयात् । ततो
 ब्रह्मचार्यसानीति श्रूहि' इत्युक्तो 'ब्रह्मचार्यसानीति' श्रूयात् । अथ येने-
 न्द्रायेति वासः परिधाप्य 'इयं दुरुक्तं परिवाधमाना वर्णं पवित्रं पुनर्ताम
 आगात् । प्राणापानाभ्यां बलमादवाना स्वस्ता देवी सुमगा मेखलेयम्'
 इति मन्त्रं 'युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति

जायमानः । तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्वो ३ मनसा देवयन्तः' इति वा मन्त्रं पठति । तूष्णीं वा वटोः कटिप्रदेशे मेखलामाग्र्य 'यज्ञो-
पवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः' इति मन्त्रं पठतो यज्ञोपवीतं निवेश्य तूष्णीमजिनं
परिधाप्य दण्डं दद्यात् । ततो वटुः 'यो मे दण्डः परापतद्वैहायसोऽधि-
भूम्यां तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ' इत्यनेन मन्त्रेण दण्डं
परिगृह्णीयात् । अथाचार्यः स्वाञ्जलिं जलेनापूर्य 'आपो हिष्टा' इति तिसृभिः
माणवकाञ्जलिं तेनैव पूरयित्वा 'सूर्यमुदीक्षस्व' इति वटुं वदेत् । वटुश्च
'तच्चक्षुः' इति मन्त्रेण सूर्यमुदीक्षेत । अथाचार्यो वटोर्दक्षिणां सोपरि स्व-
दक्षिणहस्तं नीत्वा 'मम व्रते हृदयं ते ददामि । मम चित्तमनु चित्तं ते
अस्तु । मम वाचमेकमना जुपस्व । बृहस्पतिष्ट्वा नियुक्तु मह्यम्' इति
मन्त्रेण हृदयमालभ्य वटोर्दक्षिणं हस्तं साङ्गुष्ठं गृहीत्वा 'को नामासि'
इति वदेत् । वटुः 'अमुकशर्माहं भोः' इति प्रतिवदेत् । ततः 'कस्य-
ब्रह्मचार्यसि' इत्युक्तो वटुः 'भवतः' इति ब्रूयात् । अथाचार्य 'इन्द्रस्य
ब्रह्मचार्यस्यन्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तवामुकशर्मेन्' इति पठित्वा 'प्रजा-
पतये त्वा परिददामि देवाय त्वा सवित्रे परिददामि अद्भ्यस्त्वौपवीभ्यस्त्वा परि-
ददामि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि
सर्भेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददामि अरिष्टा' इति मन्त्रेण 'भूतेभ्यो घटुं त्वा
ददामि' प्रवक्षिणीकृत्य स्वेत्तरतो यटावुपविष्टे ब्रह्मोपवेशनादिपर्युक्षणान्तं
कृत्वा आद्याः स्विष्टकृदन्ताश्चतुर्दशाज्याहुतीर्हुत्वा हुतशेषं प्राश्य पूर्णपात्रं
वरं वा ब्रह्मणे दद्यात् । अथाचार्येण 'ब्रह्मचार्यसि' इत्युक्तो वटुः 'अस्तानि'
इति ब्रूयात् । 'अपोऽज्ञान' इत्युक्तः 'अज्ञानि' इति । 'कर्म कुरु' इत्युक्तः
'करवाणि' इति । 'मा दिवा सुपुण्याः' इत्युक्तो 'न स्वपानि' इति । 'वाचं यच्छ'
इत्युक्तो 'यच्छानि' इति । 'समिधमाधेहि' इत्युक्त 'आदधानि' इति ।
'अपोऽज्ञान' इत्युक्तः 'अज्ञानि' इति ब्रूयात् । अथाचार्योऽग्रेरुत्तरतो
दक्षिणतो वा प्रत्यङ्मुखायोपविष्टाय तिष्ठते वा पादोपसंग्रहपूर्वकमुपसन्ना-
याचार्यमीक्षमाणाय स्वयमीक्षिताय वटवे ॐकारव्याहृतिपूर्वकं प्रथमं
पच्छः, द्वितीयमर्धचक्षः, तृतीयं सर्वामृचं च पठन् सावित्रीमुपदिशेत् ।
अथ वटुः पूर्वाभिमुखो दक्षिणहस्तेन 'अग्रे सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु यथा
त्वमग्रे सुश्रवः सुश्रवा असि । एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु । यथा त्वमग्रे

देवानां यज्ञस्य निधिषा असि । एषाहं मनुष्याणां वेदस्य निधिषो भूया-
सम् । इत्येतैः पञ्चभिर्मन्त्रैः परिसमिन्वन्प्रक्षेपेणाग्निं संधुक्ष्याऽग्निः पर्युक्ष्य
तिष्ठन् 'अग्नये समिधमाद्वार्षं बृहते जातवेदसे । यवा त्वमग्ने समिधा
समिध्वस एषमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्भक्षवर्चसेन समिन्वे
त्रविपुत्रो ममाचार्यो मेधाज्यहमसान्वनिराकरिण्युर्यदास्वीवेजस्वी ब्रह्मवर्च-
स्व्यघ्रावो भूयास' स्वाहा ' इत्यनेन मन्त्रेणोक्तदृष्ट्यामेघं समिधमप्रा-
वाद्ध्यादनेनैव द्वितीयां तृतीयां चादध्यात् । ' एषा ते अग्ने समिन् ' इत्या-
दिना वा मन्त्रेण । ' अग्नये समिधमाद्वार्षम् ' इति ' एषा ते अग्ने समिन् ' इत्येताभ्यां समुहिताभ्यां मन्त्राभ्यां वा एकैकशस्तिम्नः समिध आदध्यात् ।
अथोपविश्य पूर्वैकं ' अग्ने सुभ्रवः ' इत्यादिगिरभिं संधुक्ष्य पर्युक्ष्य तूष्णीं
पाणीं प्रक्षाप्य ' तनूषा अग्नेऽसि तन्नं मे पादि । आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि ।
वर्चांदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि । अग्ने यन्मे तन्वा ऊर्तं तन्म आपृण । मेधां
मे देवः सयिता आदधातुमेधां मे देवी सरस्वती आदधातु । मेधां मे अश्विनौ
देवावायतां पुष्करलजौ ' इति सप्तभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं मुरं निर्माष्टि । ततः
शिष्टाचारान् ' अह्नाग्निं च म आप्यायताम् ' इत्यनेन शिरः प्रभृतिपादानं
सर्वाङ्गानि स्पृशेत् । ' वाक्च म आप्यायताम् ' इति मुरम् । ' प्राणश्च म
आप्यायताम् ' इति नासारन्त्रे युगपत् । ' चक्षुश्च म आप्यायताम् ' इति
चक्षुर्पां युगपत् । ' श्रोत्रं च म आप्यायताम् ' इति शृङ्गिणां श्रोत्रं ततोऽनेनैव
वामम् । ' यशो वलं च ॥ आप्यायताम् ' इति मन्त्रं पठित्वा युगपद्वा स्पृशेत् ।
' अथ तन्नो अस्तु श्यामुषम् ' इति हृदि स्पृशेत् ॥ ततः ' अमुकगोत्रोऽमुक-
प्रवरोऽमुकदामार्हं भो अमुकदामैस्त्वासभिवादये ' इत्युक्त्वा गुणादिकम-
भिवादयेत् । ततो गुर्वादिः ' आयुष्मान्भवामुकदामैर् भो ३ ' इति प्रत्यभिवाद्-
येत् ॥ ततः ' भवति भिक्षां देहि ' इति ब्राह्मणो भिक्षेत् । ' भिक्षां भवति देहि ' इति
राजन्यः । ' भिक्षां देहि भवति ' इति वैश्यः । एवं भिक्षित्वा भैक्षं
गुरुवे निवेद्याहःशेषं वाग्यतस्त्रिष्टेदासीत् वेति नियमः । ततः उपास्तमयं
संभ्यामुपास्य पूर्वैकद्वितीयं कृत्वा वार्चं विसृजेत् ॥ इत्युपनयनम् ॥

समावर्तनम् ।

अथ समावर्तनम् । तत्राचार्यो मातृपूजाभ्युदयिके कृत्वा वटुना ' भो-
आचार्याऽहं स्नास्ये ' इत्युक्त्वा ' द्वाहि ' इत्युक्त्वा पञ्चमूसंस्कारान्कृत्वा लौ-

किंकार्षिं संस्थाप्य प्रक्षोषवेशनाद्याज्यभागात् कृत्वा 'ऋग्वेदमर्धत्वा स्नाति'
तदा 'पृथिव्यै स्वाहा । अग्नये स्वाहा' इति द्वे आज्याहुती जुहुयात्-यदि
यजुर्वेदं तदा 'अन्तरिक्षाय स्वाहा । वायवे स्वाहा' इति द्वे । यदि साम-
वेदं तदा 'दिवे स्वाहा । सूर्याय स्वाहा' इति द्वे । यद्यथर्ववेदं तदा 'दिग्भ्यः
स्वाहा' 'चन्द्रमसे स्वाहा' इति द्वे । यद्येकदा वेदचतुष्टयं त्रयं द्वयं वा तदा
तद्वेदाहुतीर्हुत्वा 'ब्रह्मणे' । 'छन्दोभ्य' इति वा द्वे हुत्वा 'प्रजापतये'
इत्याद्याः सप्त मन्त्रेण जुहुयात् । ततो 'ब्रह्मणे, छन्दोभ्यः' इत्याद्या नवाहुती-
र्हुत्वा महाव्याहृत्यादिसिष्टकृदन्ता दशाहुतीर्हुत्वा संस्तवान्प्राश्य पूर्णपात्र-
वरयोरन्यतरं ब्रह्मणे दक्षिणा दद्यात् । ततो ब्रह्मसंप्रहणपूर्वकं गुरुं नमस्कृत्य
परिसमूहनादिव्यायुष्करणात् तस्मिन्नग्नौ समिदाधानं धुर्यात् । ततोऽग्ने-
रुत्तरतोऽष्टौ कलशान् दक्षिणोत्तरायतान्संस्थाप्य तत्पूर्वभागे प्रागप्रक्षुशेपू-
दङ्मुखः स्थित्वा । 'येऽप्स्वन्तरमयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूपो मनोहा
स्त्वलोऽविरुजस्तनूदुपुरिन्द्रियहातान्विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि'
इति मन्त्रेणाद्यकुम्भादुदकमादाय 'तेन मामभिपिबामि अथै यशसे ब्रह्मणे
ब्रह्मवर्चसाय' इति मन्त्रेणात्मानमभिपिच्यैवमन्येभ्यः प्रत्येकं समन्त्रकं जल-
मादाय 'येन श्रियमकण्ठतां येनावमुशतां सुराम् । येनाक्ष्यावभ्यपिब्यतां
यद्वा तदग्निना यशः' इति । आपो हि घ्रा मयोभुवः । यो वः शिवतमो रसः ।
तस्मा अरं गमाम वः' इत्येतैश्चतुर्भिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रमात्मानमभिपिच्य त्रिस्तु-
ष्णीमभिपिबेत् । तत 'उदुत्तमम्' इति मन्त्रेण मेखलां शिरोमार्गेण निःसार्य
भूमौ निधायाऽन्यद्वातः परिधायाऽऽचम्य 'उद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो महद्भिर-
स्थात्प्रातर्यावभिरस्थादशसनिरसि दशसर्नि मा कुर्वाविदन्मा गमय' इत्यने-
नादित्यमुपस्थाय दधि वा तिलान्वा दक्षिणहस्तमध्यगतसोमतीर्थेन प्राश्य जटा-
लोमनखानि वापयित्वा स्नात्वाऽऽचम्योक्तलक्षणेनौदुम्बरकाष्ठेन 'अन्नाद्याय
व्यूह्य' सोमो राजाय मागमत् समे मुखं प्रमार्क्षीद्यशसा च भगेन च'
इत्यनेन मन्त्रेण दन्तान् क्षालयित्वाऽऽचम्य सुगन्धिद्रव्यमिश्रितं यवादि-
चूर्णेन तैलसर्नीतेन शरीरमुद्बल्य पुनः सशिरस्कं स्नात्वाऽऽचम्य चन्दना-
द्यनुलेपनं पाणिभ्या गृहीत्वा मुखं नासिकां च 'प्राणापानौ मे तर्पय
चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पय' इत्यनेन मन्त्रेणालभ्य पाणौ प्रक्षाल्य तदु-
दकमञ्जलिनादायापसव्यं कृत्वा दक्षिणमुखो भूत्वा 'पितरः शुन्धध्वम्'
इत्यनेन मन्त्रेण पितृतीर्थेन निपिच्य यज्ञोपवीती भूत्वोदकमुपस्पृश्य

चन्दनादिना 'सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासं सुवर्चा मुरेन शुश्रुल्कर्णाभ्यां भूयासम्' इति मन्त्रेणात्मानमनुलिप्य 'परिधास्ये यशो धास्ये दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि । शतं च जीवामि शरदः मुखी रायस्योपमभिसंव्यविष्ये' इति मन्त्रेणादृतं धौतं वासः परिधाय पूर्वधृतगुणयुक्तमुत्तार्य जले प्रक्षिप्य पदं नवमुक्तलक्षणमुपवीतं 'यज्ञोपवीतं' इत्यादिना मन्त्रेण परिधाय 'यशसा मा दावापृथिवी यशसेन्द्रावृहस्पती । यशो भगवमाविन्दयशो मा प्रतिपद्यतामिति । एकं चेत्यूर्ध्वस्थोत्तरवर्गेण प्रच्छादयति । सुमनसः प्रतिगृह्णाति । या आहरज्जमदग्निः अद्वायै मेधायै कामायेन्द्रियाय । ता अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च' इति पुण्याप्यतः प्रतिगृह्य 'यद्यशोप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु । तेन संप्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशोमयी' इति मन्त्रेण शिरसि वद्धा 'युवा सुधासाः' इत्यनयचौष्णीपेण शिरो वेष्टयित्वा 'अलंकरणमसि भूयोऽलंकरणं भूयात्' इति मन्त्रेण दक्षिणकर्णे कुण्डलं कृत्वा तेनैव वामकर्णे धृत्वा 'वृत्रस्यासि कर्तनीफश्च खं विलोक्य' 'वृहस्पतेरुच्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्द्वेहि तेजसो यशसो नामन्तर्द्वेहि' इत्यन्यस्माच्छत्रं प्रतिगृह्य 'प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम्' इत्युपानदौ युगपत्यादयोः प्रतिमुच्य 'विधाभ्यो मानाद्राभ्यस्परिपाहि सर्वतः' इति वैणवं दण्डमादद्यात् । अथाचार्यः स्नातकस्य यमान् त्रिरात्रप्रतानि च आवयेत् । स च तानि यथोक्तानि कुर्यात् ॥

इति समावर्तनम् ॥

विवाहप्रयोगः ।

अथ विवाहः । तत्र पुण्येऽहनि वरपिता मातृपूजाभ्युदयिके कृत्वा सुतं कन्यापितृगृहमानयेत् । ततः कन्यापिता मातृपूजाभ्युदयिके कृत्वा गृहागतं वरं मधुपर्केणार्चयेत् । तत्रार्च्योन्तिकम्पानीय 'विष्टरो विष्टरो विष्टरः' इत्यन्येन आविते 'प्रतिगृह्यताम्' इत्यर्च्यहसो विष्टरं दद्यात् । अथार्च्यः 'वर्ष्मोऽस्मि समनानामुद्यतामिव सूर्यः । इदं तमाभितिष्ठामि योमाकश्चाभिदासति' इत्यनेन मन्त्रेणासनाधो विष्टरं कृत्वा तत्रोपविशेत् । ततोऽर्चकः 'पाद्यं पाद्यं पाद्यम्' इत्यन्येन आविते 'प्रतिगृह्यताम्' इति पाद्यार्धोदकमर्च्याय समर्पयेत् । ततोऽर्च्यस्तत्पात्रं भूमौ निधावाजलिना जलमादाय 'विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशयि मयि पाद्यायै विराजो दोहः' इति मन्त्रेण दक्षिणं पादं प्रक्षाल्य तेनैव मन्त्रेण वामं

प्रक्षालयेद्वाहणः । क्षत्रियवैश्यौ ॥ पूर्वं सव्यं ततो दक्षिणमिति विशेषः
ततोऽर्चकेन पुनः पूर्ववदत्तं विष्टरमर्च्यः 'वप्सोसि' इत्यादिमन्त्रेण पाद-
योरधस्तान्निदध्यात् । ततोऽर्चकः 'अर्घोऽर्घोऽर्घेः' इत्यन्येन श्राविते
'प्रतिगृह्यताम्' इत्युक्त्वा 'आपः स्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नुवामि'
इति मन्त्रमुत्तवतेऽर्च्यार्यार्थं प्रयच्छेत् । ततोऽर्च्योऽर्घं प्रतिगृह्य मूर्धपर्यन्तमा-
नीय 'समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत । अरिष्टा अस्माकं वी-
रा मापरासेचिमत्पयः' इत्यनेन मन्त्रेण निनयन्नाभिमन्त्रयेत् । ततोऽर्चकः
'आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम्' इत्यन्येन श्राविते 'प्रतिगृह्यताम्'
इत्युक्त्वाऽर्च्यहस्ते आचमनीयं प्रयच्छेत् । अथार्च्यः प्रतिगृह्य 'आमाग-
न्यशसा स१ सृज वर्चसा । तं मा कुरु प्रियं प्रजानामभिपतिं पशूनामरिष्टिं
तनूनाम्' इति मन्त्रेण सकृदाचम्य स्मार्तमाचमनं कुर्यात् ॥ ततोऽर्चको
'मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः' इत्यन्येनोक्ते 'प्रतिगृह्यताम्' इति धूयात् । ततो-
ऽर्च्योऽर्च्यहस्तस्थितमुद्गादितं मधुपर्कं 'मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे' इति मन्त्रे-
णावेक्ष्य 'देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रति-
गृह्णामि' इति मन्त्रेण सकृदालोड्य तूर्णान् सकृदनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामादाय
वहिर्निक्षिप्य पुनर्द्विरालोड्य निरीक्ष्य 'यन्मधुनो मध्व्यं परम१ रूपम-
न्नाद्यम् । तेनाहं मधुनो मध्व्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मध्व्यो
श्रावोऽसानि' इति मन्त्रेणानामिकाङ्गुष्ठाभ्यामादाय त्रिः प्राश्नीयात् ।
'मधु वाता ऋता यत' इत्यादिभिस्त्रिभिर्ऋग्भिः प्रत्यृचं त्रिः प्राश्नीयाद्वा-
शेषं शिष्यादिभ्यो दद्यात्सर्वं वा भक्षयेत् प्राकृदिश्यसञ्चरे वा प्रक्षिपेत् ।
अथाचम्य 'वाङ्म आस्येऽस्तु' इति कराग्रेण मुखं स्पृशेत् । 'नसोमं प्राणो-
ऽस्तु' इति दक्षिणवामनासारन्त्रे । 'अक्षोमं चक्षुः' इति दक्षिणोत्तरे चक्षु-
षी । 'कर्णयोमं श्रोत्रमस्तु' इति मन्त्रावृत्त्या दक्षिणोत्तरौ कर्णौ स्पृशेत् ।
एवं 'वाहोमं वल्मस्तु' इति दक्षिणोत्तरौ बाहू । 'ऊवोमं ओजोऽस्तु' इति
युगपदूरु । 'अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु' इति शिरःप्रभृ-
तिपादान्तं सर्वाङ्गमुभाभ्यां हस्ताभ्यां स्पृशेत् । ततः स्वङ्गहस्तोऽर्चकः 'गौ-
गौर्गौरालभ्यताम्' इति धूयात् । अथार्च्यो 'माता रुद्राणां-' इत्यादि
'पाप्माहतः ॐ' इत्युपांशुक्त्वा 'उत्सृजत तृष्णान्यत्तु' इत्युच्चैः प्रतिधूयात् ।
ततो वर ईशान्यां दिशि चतुर्हस्तायां वेदिकायां लौकिकं निर्मन्थ्य वाऽग्निं
स्थापयित्वा पश्चादग्नेस्तृणतूलकं कटं वा स्थापयेत् ॥ ततः कन्यापिता वस्त्र-

चतुष्टयं वराय प्रयच्छेत् । वरश्च तेषु मध्ये 'जरां गच्छ परिधत्स्व वासो
भवाकृष्टीनामभिदास्तिषा वा । शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च
पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः' इति मन्त्रेणैकं 'वा अकृन्तन्नवयं
या अतन्वत । याश्च देवास्तन्तूनभितो ततन्व । तास्त्वा देवीर्जरासे संव्यय-
स्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः' इत्यपरमिति वासोयुगं कुमारीं परिधाप्य
'परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरश्मिदशतं च जीवामि शरदः
पुरुषी रायस्योपमभिसंव्ययिष्ये' इत्यनेनैकं 'यशसा मा द्यावापृथिवी
यशसेन्द्रयहस्पती । यशा भगश्च माविदद्यशो मा प्रतिपद्यताम्' इत्यपरमिति
वासोयुगं परिदध्यात् । अथ वधूपिता 'परस्परं समञ्जेषाम्' इति संप्रेष्य
वधूवरौ समञ्जयति । ततो वरः 'समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ ।
संमातरिन्धा संधाता ससुदेष्ट्री दधातु नौ' इति पठेत् । अथ कन्यापितोद-
ङ्मुखः कुदाजलाक्षतपाणिः 'अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्याऽमुकशर्मणः प्रपौत्रा-
यामुकशर्मणः पौत्रायामुकशर्मणः पुत्राय' इति वरपक्षे । 'अमुकगोत्रस्यामुकप्रव-
रस्यामुकशर्मणः प्रपौत्रीममुकशर्मणः पौत्रीममुकशर्मणः पुत्रीम्' इति कन्या-
पक्षे । एवं पुनर्वारद्वयमुक्त्वा 'प्राङ्मुखोपविष्टायामुकगोत्रायामुकप्रवरायाऽ-
मुकशर्मणे प्रत्यङ्मुखोपविष्टाममुकगोत्राममुकप्रवराममुकनाम्नीमिमां कन्यां
सालंकारां प्रजापतिदेवत्यां पुराणोक्तदशगुणीकृतज्योतिष्ठोमातिरात्रसमफल-
प्राप्तिकामो भार्यात्वेन तुभ्यमहं संप्रदे' इत्युक्त्वा सकुशाक्षतजलं कन्या-
हस्ते वरदक्षिणहस्ते वा दद्यात् । वरश्च 'द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा प्रति-
गृह्णातु' इति मन्त्रेण तां प्रतिगृह्य 'कोऽदात्' इत्यादि कामस्तुतिं पठे-
त् । अथ कन्यापिता कन्यादानप्रतिष्ठासिद्धयर्थं सुवर्णं गोमिधुनं च
दक्षिणां दत्त्वा यौतकत्वेन गा महिषींश्च ग्रामादि यथासंभवं दद्यात् ॥ ततो
वरः । 'यदैपि मनसा दूरं विशोऽनु पवमानो वा । हिरण्यपर्णो वैकणः स त्वा
मन्मनसां करोत्वमुकि' इत्यनेन मन्त्रेण प्रतिग्रहस्यानाद्यूं गृहीत्वा निष्क-
न्याप्रिसर्मापमागच्छेत् । अत्रावसरे कश्चिज्जलपूर्णं कुम्भं स्कन्वे निधायाभे-
र्दक्षिणत उत्तरतो वाऽभिपेक्षपर्वन्तं वाग्यत ऊर्ध्वं तिष्ठेत् ॥ ततो वधूपित्रा
'परस्परं समीक्षेषाम्' इति प्रेषितो वरः समीक्षमाणः समीक्षमाणः 'अघो-
रचक्षुरपनिष्कन्यधि क्षिप्वा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसुर्देवकामास्योना
शत्रो भव द्विपदे शं चतुष्पदे । सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः
मृतीयोऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजः ॥ सोमोऽददद्गन्धर्व्य गन्धर्वोऽददद-

मये । रविं च पुत्रांश्चादादभिर्महामयो इमाम् । सा नः पूषा शिवतमा मेरय सा न
 ऊरु उशती विहर । यस्यामुशन्तः प्रहराम शेषं यस्यामु कामा वह्यो निविष्टे'
 इति पठित्वा प्रदक्षिणमग्निं परीत्य पश्चादग्नेः पूर्वस्थापिततेजनीकटयोरन्यतर-
 स्मिन्दक्षिणपादमग्नेः कृत्वोपविशेत् । स्वदक्षिणतो वधूं चांपदेभ्यः ब्रह्मोपवे-
 शनादिचरुवर्जं पर्युश्रणान्तं कर्म कुर्यात् ॥ इयांस्तु विशेषः ॥ शमीपलाश-
 मिथ्या लाजा अश्मा लोहितमानडुहं चर्म वधूधाता शूर्प दृढपुरुष आ-
 चार्याय वरद्वन्वमित्येतावन्ति यस्तून्युपकल्पयेत् । न प्रोक्षेत् । ततः सुव-
 मादाय दक्षिणं जान्वाच्य ब्रह्मणान्वारच्यः 'प्रजापतये स्वाहा' इदं प्रजाप-
 तये । 'इन्द्राय स्वाहा' इदमिन्द्राय । इत्याचारौ ॥ 'अग्नेये स्वाहा' इदम-
 ग्नेये । 'सोमाय स्वाहा' इदं सोमाय । इत्याज्यभागौ ॥ ॐ 'भूः स्वाहा'
 इदमभ्ये । ॐ 'भुवः स्वाहा' इदं वायवे । ॐ 'स्वः स्वाहा' इदं सूर्याय ।
 'त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो अक्या सिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नि-
 तमः शोशुचानो विश्वा द्वेपा० सि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा' इदमग्नीवरुणा-
 भ्याम् । 'सत्त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उपसो व्युष्टौ । अव
 यक्ष्व नो वरुण० रराणो वीहि मृडीक० सुहवो न एधि स्वाहा' इदमग्नीव-
 रुणाभ्याम् । 'अयाश्वाग्ने स्यनभिदास्तिपाश्च सत्यामित्वमया असि । अया नो
 यज्ञं बहास्यया नो धेहि भेषज० स्वाहा' इदमभ्येऽभ्यसे । 'येते० स्वाहा'
 इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुभ्यः स्वर्केभ्यः । 'उदुत्तमं
 वरुण पाशमस्मदबाधमं विमध्यम० अथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवाना-
 गसो अदितये स्याम स्वाहा' इदं वरुणाय । ब्रह्मणान्वारच्यो हुत्वा । ततो
 राष्ट्रभृतो यथा—'ऋतापाडृतधामाग्निर्गन्धर्वः स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै
 स्वाहावाद्' इदमृतासाहे ऋतवाग्नेऽभ्ये गन्धर्वाय । 'ऋतापाडृतधामाग्नि-
 र्गन्धर्वस्तस्यौपवयोप्सरसो मुदो नाम ताभ्यः स्वाहा' इदमोषधिभ्योऽप्स-
 रोभ्यो मुद्गः । 'स० हितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः ॥ न इदं ब्रह्म क्षत्रं
 पातु तस्मै स्वाहा वाद्' इदं स० हिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गंधर्वाय ।
 'स० हितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम
 ताभ्यः स्वाहा वाद्' इदं सुपुष्णे सूर्यरश्मये चन्द्रमसे गन्धर्वाय ।
 'सुपुष्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम
 ताभ्यः स्वाहा' इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः । 'इपिरो विश्वव्यचा
 वातो गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाद्' इदमिपिराय

विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय । 'इपिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो-
 ऽप्सरस ऊर्जो नाम ताभ्यः स्वाहा' इदमग्न्योऽप्सरोभ्य ऊर्भ्यः । 'भुज्युः
 सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहावाद' इदं
 भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय गन्धर्वाय । 'भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य
 दक्षिणा अप्सरसस्तावानाम ताभ्यः स्वाहा' इदं दक्षिणाभ्योऽप्सरोभ्य-
 स्तावाभ्यः । 'प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु
 तस्मै स्वाहावाद' इदं प्रजापतये विश्वकर्माणे मनसे गन्धर्वाय ।
 'प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम
 ताभ्यः स्वाहा' इदमृक्सामभ्योऽप्सरोभ्य एष्टिभ्यः ॥ अथ जयाहोमः ॥
 'चित्तं च स्वाहा' इदं चित्ताय । 'चितिश्च स्वाहा' इदं चित्यै । 'आकूतं च
 स्वाहा' इदमाकूताय । 'आकूतिश्च स्वाहा' इदमाकूत्यै । 'विज्ञातं च स्वाहा'
 इदं विज्ञाताय । 'विज्ञातिश्च स्वाहा' इदं विज्ञात्यै । 'मनश्च स्वाहा' इदं मनसे ।
 'शकरीश्च स्वाहा' इदं शक्वरीभ्यः । 'दर्शश्च स्वाहा' इदं दर्शाय । 'पूर्णमासं
 च स्वाहा' इदं पूर्णमासाय । 'वृहश्च स्वाहा' इदं वृहते । 'रथन्तरं च स्वाहा'
 इदं रथन्तराय । 'प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः घृतनाजयेषु ।
 तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स इहव्यो वभूव स्वाहा' इदं प्रजा-
 पतये जयानिन्द्राय ॥ अथाध्यातानः ॥ 'अग्निर्भूतानामधिपतिः स माव-
 त्वास्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाक्षिप्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देव-
 हूत्या ५ स्वाहा' इदमग्नये भूतानामधिपतये । एवं समामवत्वित्येवमादि-
 स्वाहाकारान्तस्योत्तरत्राप्यनुषङ्गः ॥ 'इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः ० इदं मि-
 न्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये । यमः पृथिव्या अधिपतिः ० इदं यमाय पृथिव्या
 अधिपतये । वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः ० इदं वायवेऽन्तरिक्षस्याधिपतये ।
 सूर्यो दिवोऽधिपतिः ० इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये । चन्द्रमा नक्षत्राणाम-
 धिपतिः ० इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये । वृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः ॥
 इदं वृहस्पतये ब्रह्मणोऽधिपतये । मित्रः सत्यानामधिपतिः ० इदं मित्राय
 सत्यानामधिपतये । वरुणोऽपामधिपतिः ० इदं वरुणायाऽपामधिपतये ।
 समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः ० इदं समुद्राय स्रोत्यानामधिपतये । अन्न ५ सा-
 म्राज्यानामधिपतिः समाक्त्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन् ० इदमन्नाय साम्राज्या-
 नामधिपतये । सोम ओषधीनामधिपतिः ० इदं सोमायौषधीनामधिपतये ।
 सविता प्रसवानामधिपतिः ० इदं सवित्रे प्रसवानामधिपतये । रुद्रः पशूना-
 मधिपतिः ० इदं रुद्राय पशूनामधिपतये । उदकोपस्पर्शनम् । त्वष्टारुद्रा-

णामधिपतिः० इदं त्वष्ट्रे रुद्राणामधिपतये । विष्णुः पर्वतानामधिपतिः०, इदं
 विष्णवे पर्वतानामधिपतये । मरुतो गणानामधिपतिः स मावत्वस्मिन्०,
 इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्यः । 'पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्तता-
 महा इह मान्वत्वस्मिन्० स्वाहा' इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योऽवरेभ्य-
 स्ततेभ्यस्ततामहेभ्यः । उदकस्पर्शनम् ॥ 'अग्निरैतु प्रथमो देवताना ५
 सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेय ५
 स्त्री पौत्रमघं न रोदात्स्वाहा' इदमग्नये । 'इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः
 प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः । अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्द-
 मभिविबुद्धपतामिय ५ स्वाहा' इदमग्नये । 'स्यस्ति नो अग्ने दिव आपृथि-
 न्या विश्वा निवेक्षयथा यजत्र । यदस्यां महि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु
 ब्रविणं धेहि चित्र ५ स्वाहा' इदमग्नये । 'सुगन्तु पन्थां प्रादिशन्न एहि ज्यो-
 तिष्मध्वे ह्यजरन्न आयुः । अपैतु मृत्युरमृतत्र आगाद्वैवस्वतो नो अभयं
 कृणोतु स्वाहा' इदं वैवस्वताय । 'परं मृत्यो अनुपरे हि पन्था यस्ते अन्य
 इतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजा रीरि-
 पोमात वीरान्स्वाहा' इदं मृत्यवे । उदकोपस्पर्शनम् ॥ ततो बधू-
 भ्राता पूर्वोपकल्पितान्शमीपलाशमिश्रान्छाजान्शूर्पे धृतान्छलिनाऽऽ
 दायवध्वञ्छलावापेत् । ततः प्राङ्मुखी बधूस्तिष्ठन्ती 'अर्यमणं
 देवं कन्या अग्निमयच्छत । स नो अर्यमा देवः प्रेतोमुञ्चातुमापतेः
 स्वाहा' इत्यनेन मन्त्रेणाञ्चलिस्थान्छाजान्तृतीयांशं हुत्वा । 'इदम-
 र्यम्णे' इत्युक्त्वा 'इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका आयुष्मानस्तु मे पति-
 रेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा' इत्यनेनाञ्चलिस्थलाजार्धं हुत्वा 'इदमग्नये'
 इत्युक्त्वा 'इमान् लाजानावपान्यग्नौ समृद्धिकरणं तव । मम तुभ्यं च
 संवननं तदग्निरनुमन्यतामिय ५ स्वाहा' इत्यनेन सर्वान्छाजान्हुत्वा 'इदम-
 ग्नये' इति ब्रूयात् ॥ ततो वरः ॥ 'गृणामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया
 पत्या जरदष्टिर्यथा सः । भगो अर्यमा सविता पुरान्विर्मह्यं त्वाऽदुर्गार्ह-
 पत्याय देवाः । अमोऽहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्य मो अहम् ॥ सा माहम-
 स्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ॥ तथे हि विक्वावहै सह रेतो दधावहै
 प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान्विन्दावहै वहंस्ते सन्तु जरदष्टयः । संप्रियौ रोचि-
 णू सुमनस्यमानौ । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं ५ शृणुयाम शरदः
 शतम्' इत्यनेन मन्त्रेण वध्वा साङ्गुष्ठं दक्षिणकरं गृहीयात् ॥ ततो
 वध्वा दक्षिणं पादं धृत्वा 'आरोहेममश्मानमश्मेवत्वं ५ स्थिरा भव । अभि-

निष्ठ पृतन्यतोऽयं बाधस्व पृतनायतः । इति मन्त्रेणामेवत्तरस्थिताश्मोपरि संस्थाप्य ॥ 'सरस्यति प्रेदमव सुभगे वाजिर्नवाति । यां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजयामस्त्याग्रतः ॥ यस्यां भूतः समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत् । ताम्ना गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः' इति प्रगीय 'तुभ्यमग्ने पर्य- वहन्सूर्या वहतु तासह । पुनः पतिभ्यो जायां दामे प्रजया सह' इति मन्त्रं पठित्वा बध्वा सहस्रं परिष्कृत्यैवं पुनर्द्विद्वारं लाजावपनादि परि- क्रमणान्तं कुर्यात् ॥ ततो बधूध्रात्ता शूर्पकोणप्रदेशेन सर्वान्लाजान्वध्वज- लाबावपेत् । अथोत्थाय बध्वा 'भगायस्वाहा' इत्यनेन हुत्वा 'इदं भगाय' इति त्यागे कृते वरस्तयासहाचारात्तूर्णो चतुर्थं परिक्रमणं कृत्वा ब्रह्मणाऽन्वारब्धः 'प्रजापत्येस्वाहा' इति हुत्वा 'इदं प्रजापत्ये' इति त्यागं कुर्यात् । ततो बधूर्धरेण 'एकमिषे विष्णुस्त्वानयतु' इत्युक्ते एकं पदमुदग् दद्यात् । 'द्वे ऊर्जो विष्णुस्त्वानयतु' इत्युक्ते द्वितीयम् । 'त्रीणि रायस्योपाय विष्णुस्त्वानयतु' इत्युक्ते तृतीयम् । 'चत्वारि मायो- भवाय विष्णुस्त्वानयतु' इत्युक्ते चतुर्थम् । 'पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वानयतु' इत्युक्ते पञ्चमम् । 'षड्भ्यो विष्णुस्त्वानयतु' इत्युक्ते षष्ठम् । 'सखे सप्त- पदा भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वानयतु' इत्युक्ते सप्तमं पदं दद्यात् ॥ अथ वरः पूर्वमभिषेकार्थं धृतकुम्भादुदकमादाय 'आपः शिवाः शिवममाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृष्वन्तु मेपजम्' इत्यनेन मन्त्रेण बधून्सूद्वन्द्वमभिषि- च्य पुनरुदकमादाय 'आपोहिष्ठा' इति तृचं पठित्वाऽभिषिच्य 'सूर्यसुवीक्ष- स्य' इति बधूं संप्रेष्य 'तच्छुः०-इत्यादि शृणुयाम शरदः शतम्' इत्यन्तं मन्त्रं पठित्वा सूर्यमुदीक्षते । तस्या दक्षिणांसस्योपरि हस्तं नीत्वा 'मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचिन्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुपस्व प्रजापतिष्टा नियुक्तु मह्यम्' इति मन्त्रेण तद्दृश्यमालम्ब्य 'सुमङ्गलारियं वधूरिमा २ समेत्य पश्यत । सौभाग्यमस्त्यै दत्त्वा याथास्तं विप्रेतन' इत्य- नेन तामभिमन्त्र्याचारात्तद्वाममागे उपविश्य तस्याः सीमान्ते वरः सिन्दूरं दद्यात् । अथाग्नेः प्रागुदस्या पूर्वकल्पिते उत्तरलोमि प्राग्भीषे जानुहे चर्मणि 'इह गावो निषीदन्तिहाधा इह पूरुपाः । इहो सहस्रदक्षिणो यज्ञ इह पूषा निषीदन्तु' इति मन्त्रेण बधूं दृढपुरुषो वरश्चोत्थाप्यो- पवेशयेत् । ततो वरः-पूर्ववद्यथास्थानमुपविश्य ब्रह्मणान्वारब्धः 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इदमग्ने स्विष्टकृते' इति स्विष्टकृद्वेदे कृत्वा संस्त्रवान्प्रा-

इयं प्रक्षणे पूर्णपात्रवरयोरन्यतरं दक्षिणा त्वेन दत्त्वा स्वाचार्याय वरं दत्त्वा
 भूयसीं संकल्प्याऽऽदित्येऽस्तमिते 'ध्रुवमीक्षस्व' इति वधूं प्रेष्य 'ध्रुवमासि
 ध्रुवं त्वां पश्यामि ध्रुवैविषोप्ये मयि मह्यं त्वाऽदाद् वृहस्पतिर्मया पत्या
 प्रजायती संजीव शरदः शतम्' इति मन्त्रं वाचयित्वा ध्रुवमीक्ष्यति ततो
 दम्पती विवाहादारभ्य त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनावयःशायिनौ संवत्सरं
 द्वादशरात्रं पट्परात्रं त्रिरात्रं वा प्रह्वचारिणौ स्यातामिति ॥

इति विवाहप्रयोगः ।

चर्मण्वतीतरणिजाशुभसङ्गमस्य

सान्निध्यभाजि कृतशालिनि मध्यदेशे ।

ख्याताभरेह नगरी किल तत्र राजा

राजीवलोचनरतो भगवन्तदेवः ॥ १ ॥

इति श्रीसैमरवैशाखसमहाराजाधिराजश्रीभगवन्तदेवादिष्टमीमासकभट्टशङ्करात्मज-
 भट्टनीलकण्ठकृते भगवन्तभास्करे प्रथमः संस्कारमयूखः समाप्तः ।

च. पुस्तके दृष्टाः पाठभेदाः ।

श्रु. १० पं. २७ विनित्यस्याये—

बुद्धिआद्वारम्भाच्च पूर्वं वैश्वदेवः कार्यः ।

बृद्धावादौ क्षये चान्ते मध्ये दर्शे तु पार्वणे ।

एकोद्दिष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते ॥

इति शाङ्खायनपरिशिष्टात् । इत्यधिकम् ।

श्रु. ११ पं. २ कुम्भः इत्यस्याये—

एषु सूर्ये विद्यमाने इत्यर्थः । इत्यधिकम् ।

श्रु. १३ पं. ८ ग्रहणम् । इत्यस्याये—

विष्टिर्भक्षः । इत्यधिकम् ।

श्रु. १६ पं. २६ योगपथ इत्यतः प्राक्—

पित्र्यं पितॄणां हितं आह्वादिकर्तारम् । इत्यधिकम् ।

श्रु. १० पं. २१ 'प्रत्यपिषानाह' इत्यथ—

• प्रबृत्त्यविधातात् ।

श्रु. १९ पं. १ संग्रहे इत्यस्यावगतरम्—

अत्र ब्राह्मणभोजनसंख्यामाह कल्पनरी यज्ञपार्श्वः—

गर्भाधानादिसर्वेषु ब्राह्मणान्भोजयेद्दश ।

आवसथ्ये त्रयोविंशदग्न्याधेये शतात्परम् ॥

आप्रयणे प्रायश्चित्तेष्ट्यां ब्राह्मणा दश पञ्च च ।

सहस्रं भोजयेत्सोमे ब्राह्मणानां शतं पशू ॥

चतुर्मास्येषु चत्वारि तथा पञ्च सुराग्रहे ।

अशुतं वाजपये चाश्वमेधे तु चतुर्गुणम् ॥

चत्वारि शतानीति संबन्धः । सुराग्रहे सौत्रामण्याम् । चतुर्गुणं प्रयु-

समिति ।

श्रु. २१ पं. ६ केचिद्बृहदादनादर इत्यस्य स्थाने—

केचिच्छब्दादनादर इति ।

श्रु. २२ पं. ६ इतीत्यस्याये—

पुत्रे इति पुंस्यमविवक्षितमनुवाचविशेषणत्वात् । पृथ्वीचन्द्रोदये का-

र्णाग्निनिः—

प्रादुर्भावे पुत्रपुत्र्योर्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

ज्ञात्यानन्तरमात्मीयान् पितृवद्ग्राहेन तर्पयेत् ॥ इत्यधिकम् ।

पृ. २४ पं. १२ जातकमोक्षार्थं इत्यस्यापे—

नामकरणस्येत्यधिकम् ।

पृ. २५ पं. १ षष्ठेऽतीते । इत्यस्यापे—

यत्तु—दशाहे द्वादशाहे वापि जन्मतोऽपि त्रयोदशे ।

षोडशैकोनविंशे वा द्वात्रिंशे वर्णतः क्रमात् ।

इति मदनरत्नधृतबृहस्पतिवचने चतुर्णां वर्णानां पङ्काला उक्ताः, न तु ते मदनेन व्यवस्थापिताः । व्यवस्था त्वेवम् । दशाहेऽतीते तथा चैकाद-
शाहद्वादशाहौ ब्राह्मणस्य वाशब्दस्वरसात् । त्रयोदशे इति क्षत्रियस्य
सूतकान्तत्वात् । षोडशैकोनविंशौ वैश्यस्य द्वितीयवाशब्दस्वरसात् ।
द्वात्रिंशत्तमः शूद्रस्य सूतकान्ते भा (?) स्पान्तरत्वादाकाङ्क्षासत्त्वाच्च ।
एतत्संवादेन नारदोऽपि—

जन्मतो दशमे वापि द्वादशे वापि तत्पुनः ।

विप्राणां नामकर्म स्यादाशौचान्ते तु शेषयोः ॥ इति ।

शेषयोः क्षत्रियवैश्ययोः । तेन विप्रशूद्रयोराशौचमध्येऽपि भवतीति-
केचिन् । अत एव प्रयोगपारिजाते बृहस्पतिवचनमेवं पठितम् ।

द्वादशे दशमे वापि जन्मतो दिवसे शुभे ।

षोडशे विंशतौ चैव द्वात्रिंशे वर्णतः क्रमात् ।

तेन तन्मते दशमे इति यथाश्रुतमेव । एतेषां च पक्षाणां स्वस्वगृह्या-
नुसारेण व्यवस्थेति हेमाद्रिमाधवमदनादयः । इत्यधिकम् ।

पृ. २५ पं. १८ तत्र मासनामानि वसिष्ठ आहृत्यस्य स्थाने—

तत्र मासनामान्याह गार्ग्यः—

मासनाम गुरोर्नाम दद्याद्बालस्य वै पिता ।

कृष्णोऽनन्तोऽच्युतश्चक्री वैकुण्ठोऽथजनार्दनः ।

उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथाहरिः ।

योगीशः पुण्डरीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात् ॥

अत्र मूर्गशीर्षादिक्रमः ।

१ अयमेव युक्तः पाठः । मूले 'अत्रकेचिद्... उपेक्ष्यम्' इति पाठस्त्वसंगत एव । नहि अत्रेतीदमा वसिष्ठवचनं परामृश्य तत्र मार्गादिक्रमोऽभिधातुं शक्यः । चैत्रादीति अवगात् । नापि गार्ग्यवचनं तस्यानुपादयतात् । छेदकप्रमादात्तद्व्युत्पन्नानामपि मार्गादिक्रमस्यैव तत्र वसि-
ष्ठवचनानुरोधेन कल्पयितुं युक्तत्वात्तदुपेक्षाहेतुतया वसिष्ठवचनोपन्यासस्य विरुद्धत्वात् ।

श्रु. २५ पं. २२-२३ इति । केचिदित्यस्यस्थाने—

‘इति मदनरत्नपूतगार्ग्य (? वसिष्ठ) वचनैकवाक्यत्वात् । पितामह-
चरणास्तु’ इति ।

श्रु. २५ पं. २६ तद्वासिष्ठे—“दुपेक्ष्यमितिपङ्क्तिर्नास्ति ।

श्रु. २८ पं. २० आयुषेऽपि वेत्यत्र—

आयुषे पिता ।

श्रु. ३१ पं. १० इतीत्यस्यापे—

वर्जनीयाभित्यान्दर्शोदीन् । इत्यधिकम् ।

श्रु. ३२ पं. ६ नातिव्याहारवेदित्यस्यस्थाने—

नाभिज्याहारयेत् ।

श्रु. ३२ पं. २२ ‘शरदि वैश्यम्’ इतीत्यस्यापे—

अत्र च माणवककर्तृकं गुरुसमीपगमनं विधीयत इति प्राञ्चः । पिता-
महचरणास्तु गिजर्थ(१धो)विवक्षायां मानाभावात्—आचार्यकर्तृकं माणव-
काधिकारिकमुपनयनमेव विधीयते नोपगमनं ‘क्लृप्तीर्यजमानं वाचयति’ ।
‘पञ्चमिः पावयति’ इत्यत्र यजमानाधिकारिकाध्यर्ककर्तृकवाचनपाव-
नादिवत् । अत एव छान्दोग्योपनिषदि गुरुकर्तृकोपनयनाकूलव्यापाररूपो-
पगमनकर्तृकता ‘जायालिर्मातरमामन्त्र्यात्मानमुपनाययितुं गौतममाज-
गाम’ इति । हेमाद्रौ बुधवचस्यपि ‘गर्भाष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनाययेत्’ इति ।
‘पतयान्नावाकामं याजयेत्’ इत्यत्र तु यज(मा?)नस्य प्रयोज्याध्यर्कवादिकर्तृत्वे
मानाभावाद्यजेः स्वार्थवणिजर्ग्यविशेषणतया परार्थवधारणाविधिश्च(?)
स्यादिति गिजर्थाविवक्षया यजनमेव विधीयत इत्याहुः । अत्र केचित् ।
उपनयनशब्देनोपनायनमेवाभिधीयत इति तदयुक्तम् । उपनयनविषयक-
प्रयोजकव्यापारस्योपनयनशब्दावाच्यत्वाद्धक्षणायां मानाभावादिति हे-
माद्रिः । एतेन आचार्यसमीपनयनाङ्गको गायत्र्युपदेशः प्रधानं ‘गायत्र्या
ब्राह्मणमुपनयीत’ इति कात्यायनस्मृतौ चोपनयनस्य गायत्र्युपदेशाद्भूत्वद-
र्शनात् । एवं चोपनयनपदं योगरूढं समिदर्शोदिपदस्येवाङ्गवाचिनो-
ऽप्युपनयनपदस्य तत्संबन्धेन प्रधानसंज्ञोपपत्तेरित्यपास्तम् । एकत्र
योगरूढस्यै(?)ह्योर) योगरूढपदप्रवृत्तेः यथा पङ्कजपदे । अत्र तु नयने
योगस्य गायत्र्युपदेशे च रूढस्य(?)दे.) सङ्गावेन नैकत्रवियमानत्वमिति ।
स्मृत्यर्थसारे तु—आचार्यसमीपनयनमग्निसमीपनयनं वा गायत्रीवाचनं वा
प्रधानमित्युक्तम् । इत्यधिकम् ।

पृ. ३३ पं. ३ द्रविणशीलाख्य इत्यस्य स्थाने—

द्रविणशीलाख्यः ।

पृ. ३३ पं. ७ प्रागेव तदूर्ध्वमित्यस्य स्थाने

प्रागेव न तदूर्ध्वम् ।

पृ. ३३ पं. १४ गौणकाष्ठ इत्यस्याधे—

उपनयनकालस्य परावधिमाहान्धलायनः । इत्यधिकम् ।

पृ. ३४ पं. ९ निरंशः इत्यस्याधे—

तथाचोक्तम्—

राशेः प्रथमभागस्थो निरंशः सूर्य उच्यते ।

अत्रिः—

पराजितेऽतिनीचस्थे नीचे शुके गुरौ तथा ।

व्रतिनं यदि कुर्वीत स भवेद्वेदवर्जितः ॥

राजमार्तण्डः—

नष्टे शुकेऽथवा जीवे निरंशे चैव भास्करे ।

उपनीतस्य शिष्यस्य जडत्वं मृत्युरेव च ॥

चण्डेश्वरः—

दाहे दिशां चैव धराप्रकम्पे वज्रप्रपातेऽथ विदारणे वा ।

केतौ तथोल्काशुकरप्रकाशे अ्यहं न कुर्याद्व्रतमङ्गलादि ॥

इत्यधिकम् ।

पृ. ३४ पं. १७ अनध्यायत्वं वक्ष्यत इत्यस्याधे—

लङ्गः—व्रतेऽहि पूर्वसंध्यायां वारिदो यदि गर्जति ।

तद्दिने स्यादनध्यायो व्रतं तत्र विवर्जयेत् ॥

इति विशेषण वर्जयेदित्यर्थकं न विवर्जयेदिति पदेन पूर्वसंध्यायां गर्जने
दोषाधिक्यं सूच्यते

तथा—यौपादित्रिषु मासेषु कृष्णं चैवाष्टकात्रयम् ।

एका ज्ञेयाश्विने मासि हेमन्ते चतुरष्टकाः ॥

अष्टकाश्च समुद्दिष्टाः सप्तम्यादिदिनत्रयम् ।

नार्धीयीत च शास्त्राणि व्रतवन्धं विवर्जयेत् ॥

नचोत्पातहते ऋक्षे व्रतोपनयनं शुभम् । इति ।

नान्दीश्राद्धोत्तरं विशेष उक्तो ज्योतिर्निबन्धे—

नान्दीश्राद्धे कृते पश्चादनध्यायस्त्वकालिकः ।

तदोपनयनं कार्यं व्रतारम्भं न कारयेत् ॥

इदं च येषां तद्दिने एव वेदारंभो विहितस्तान्प्रत्येव नान्येषामिति प्रयो-
गरत्ने पितामहचरणाः । इत्यधिकम् ।

श्रु. ३४ पं. २१ द्वितीयायाः—मान्वास्त्वित्यन्तस्य स्थाने—

द्वितीयाया विहितत्वात् । अत्रानध्यायपदं नित्यानध्यायपरं न तु नैमि-
त्तिकानध्यायपरं तेषामनित्यत्वेन नित्यानित्यसंयोगविरोधान् । ननु
सप्तम्यादिविनत्रयमिति नवम्या अपि निषेधात् कोऽस्य विषयः । उच्यते—
निषेधद्वयवशादोपाधिक्यकल्पनेति केचित् । धर्मप्रकाशे पितामहच-
रणास्तु । इति ।

श्रु. ३४ पं. २६ इत्याहुरित्यस्याधे—

कालविशेषोपनीतस्य पुनरुपनयनमाह वसिष्ठः—

पापांशरुगते चन्द्रे अरिनीचस्थितेऽपि च ।

अनध्याये चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥

भगद्वाजः—विनर्तुना वसन्तेन कृष्णपक्षे गलग्रहे ।

अनध्याये चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥ इति ।

नारवाये तु अपराह्णे चोपनीत इति तृतीयपाद उक्तः । अपराह्णखिना-
विभक्तदिनस्यान्तभागः । तथाच ज्योतिर्मनुः—

सर्वदेशेषु पूर्वाह्णे मुख्यं स्यादुपनायनम् ।

मध्याह्णे मध्यमं प्रोक्तमपराह्णे विगर्हितम् । इति ॥

तन्नामा(१)न्माना)नि स्कान्दे—

उर्ध्वं सूर्योदयात्योक्तं मुहूर्तानां तु पञ्चकम् ।

पूर्वाह्णः प्रथमः प्रोक्तो मध्याह्नस्तु ततः परम् ॥

अपराह्णस्त्वतः प्रोक्तो मुहूर्तानां तु पञ्चकम् । इति ।

अत्रानध्यायपदं नित्यनैमित्तिकसाधारणानध्यायपरम् ।

नैमित्तिकमनध्यायं कृष्णे च प्रतिपदिनम् ।

मेघमलान्धने शस्तं चौले वेदव्रतेषु च ।

इति वसिष्ठवचने नैमित्तिकानध्यायकृष्णप्रतिपदादिनित्यानध्या-
यानां च—

स्वाध्यायविद्युजो घृष्टाः कृष्णप्रतिपदादयः ।

प्रायश्चित्तनिमित्ते तु मेघमलान्धने मताः ॥

इति कालदर्शादिधृतवृद्धगार्ग्यवचनाध्यायश्चित्तोपनयनपरतैव नापूर्वो-
पनयनपरता । अनध्यायपदस्य नित्यानध्यायपरत्वे तु नैमित्तिकान-

ध्यायवत्प्रतिपश्यंपूर्वोपनयनापत्तेः । एतेन पुनःसंस्कारविधिगतानध्याय-
पदस्य नित्यानध्यायपरत्वेनोपपन्नस्यानित्यानध्यायग्राहकत्वासंभवात् ।
अग्नीपोमीययागोत्कर्षपरतया प्रतीयमानेन 'यदेवादः पौर्णमासं हविः' इति
वचनेनाग्नीपोमीयपुरोडाशयागस्यैवोत्कर्षो नाग्नीपोमीयोपांशुयाजस्य नि-
त्याग्नीपोमीयग्रहणायोगादिति परास्तम् । किंच दृष्टान्त एवाग्नीपोमी-
यपुरोडाशस्यैवोत्कर्षे नित्याग्नीपोमीयसंबन्धो हेतुत्वेन भाष्यतन्त्ररत्नशा-
स्त्रदीपिकादिग्रन्थेषु उक्तः । प्रत्युत विकल्पसंभवान्नोत्कृष्यते आज्यमित्यादि-
तन्त्ररत्नग्रन्थस्वारस्यादग्नीपोमीयाजस्योत्कर्ष एव प्रतीयत इति । ;

यत्तु 'विशुस्तनयिलुर्वृष्टिश्चापर्तो यत्र संनिपतेयुरुयहमनध्यायो यावद्भू-
मिर्धुदकेत्येके' इति धर्मप्रभोदाहृतवाक्येऽपर्तो वर्षे त्रिरात्रमित्युक्तत्वा-
न्माघादिषु वृष्टेर्नियतत्वान्नासावर्तुरिति तत्र वृष्टौ नानध्यायः । वृष्टिकालो
दक्षिणायन एक उदगत्यनेऽप्यपर इत्यर्थस्य ज्ञापकं महाभारते वैराटपर्वणि
वृहन्नडावस्थपार्थवचनमुत्तरं प्रति 'गाण्डीवमेतत्पार्थस्य लोकेषु विदितं
धनुः' इति प्रकृत्य—

एतद्वर्षसहस्रं तु ब्रह्मा पूर्वमभारयत् ।

ततोऽनन्तरमेवाथ प्रजापतिरभारयत् ॥

त्रीणि पञ्चशतं चैव शक्रोऽशीतिं च पञ्च च ।

सोमः पञ्चशतं राजा तथैव वरुणः शतम् ॥

पार्थः पञ्च च पट्टिं च वर्षाणि श्रेतवाह्वः । इति ।

अत्र खाण्डवदाहानन्तरलब्धधनुषः पार्थकर्तृकधारणे पञ्चपट्टिवत्सरा-
त्मकवर्षाणां वाधितत्वात्सार्धद्वार्षिंशद्वत्सराः पञ्चपट्टिवर्षशब्देन विवक्षिता
इत्यवश्यं वाच्यम् । अन्यथातीतानागतवत्सराभिप्रायव्याख्यानेऽधारयदिति
भूतनिर्देशानुपपत्तेरिति । तदयुक्तम् । पञ्चपट्टिवर्षाणीत्यस्योत्तरावधिमात्र-
समर्थकत्वात् । दृश्यते च लोके पञ्चाशद्वर्षपर्यन्तमध्यापनादि कृतमित्यादयः
प्रयोगा उत्तरावधिसमर्थका नहि तत्रोत्पत्त्यादिरूपः पूर्वावधिर्गपि प्रतीयते
येन बाधः स्यात् । किंच दक्षिणायनोत्तरायनयोर्वृष्टिकालत्वे—

अनूराधर्षमारभ्य षोडशर्षेषु भास्करः ।

यावच्चरति वै तावदकालं मुनयो विदुः ॥

कालवृष्टौ तु तत्कालमकाले तु त्रिरात्रकम् ।

अतिमात्रायवा वृष्टिर्नार्थीयत दिनत्रयम् ॥

वयोस्तु द्विदिनं चैव वृष्टिमात्रे दिनं स्मृतम् ।

इति स्मृतिरत्नावल्यादिधृतगार्ग्यवचने तथा आर्द्रादिज्येष्ठान्तं वर्णु-
रुक्तस्तत्र वृष्टिः कालवृष्टिरिति स्मृत्यर्थसारे अपर्णो वर्षे त्रिरात्रमित्ये-
तस्योपनिषद्भाष्ये त्वार्द्रादिज्येष्ठान्तं वर्णुर्रुक्तस्तत्र वृष्टिकालाकालपरिभाष-
णवैयर्थ्यापत्तेः । एतदभिप्रायेणैव यस्मिन्देशे यो वर्षाकालस्ततोऽन्यत्रापर्णु-
रित्यापस्तम्बीयधर्मप्रभवाक्यस्य व्याख्याने उज्ज्वलायां प्रथमप्रभे तृतीयपटले
हरदत्तीयग्रन्थः संगच्छत इति ।

यस्तु यावद्भूमिर्व्युदकेत्येके (इति) धर्मप्रश्न एव पक्षान्तरसत्त्वात्तत्रिरात्रा-
नध्यायस्य नित्यत्वमिति तदप्ययुक्तम् । ईदृङ्नित्यत्वस्याष्टम्याद्यनध्याये-
ष्वन्यापनं तथा सकलग्रन्थसिद्धनित्यानध्यायत्वं न स्यात् । एतेन 'नापि
मनूक्ताकालिकस्य नित्यत्वं, मनुरत्रवीदित्युक्तिर्विकल्पार्थेत्यन्ये' इति मेधा-
तिथिना व्याख्यानादिति परास्तम् । इत्यधिकं दृश्यते ।

पृ. ३६ पं. १३ केचिरित्यस्याये—

वर्ज्यानीति शेषः । इत्यधिकम् ।

पृ. ३६ पं. ४ अशक्याङ्गहानेनेत्यस्य स्थाने—

अशक्याङ्गहानेनेति ॥

पृ. ३६ पं १४ परः पर इत्यस्याये—

अत्र यद्यपि भ्रातृशब्देन वटोरेव भ्राता प्रतीयते तथापि पितुरेव स
प्राह्यः । तथाच पितामहः—इत्यधिकम् ।

पृ. ३६ पं. १६ इतीत्यस्याये—

ज्ञातयः सपिण्डाः । अग्रजा वटोरेकस्या गौत्रजेषु सपिण्डेषु तन्नि-
जेषु मध्ये ये अग्रजा वृद्धास्तदुपनयनाचार्यत्वाधिकारिणः ।

यस्तु—असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः ।

इति योगीश्वरवचनेभ्यता (भ्रातृणां) अधिकारावगमः स तु पितृव्याभाव-
विषयक इति केचित् । भगिन्यादिविवाहविषय इति तु युक्तम् । उक्ता-
धिकार्यभावे शौनकः—

कुमारस्योपनयनं श्रुताभिजनवृत्तवान् ।

तस्या (?) धूतानिःशेषपाप्मा कुर्याद् द्विजोत्तमः ॥ इति ।

मोऽपि स्वशार्दीय एव । तथा चाचार्यं कुर्यादित्यधिकृत्य व्यासः—

वेदैकनिष्ठं धर्मज्ञं कुलीनं श्रोत्रियं शुचिम् ।

स्वशास्त्रीयमनालस्यं विप्रं कर्तारमीप्सितम् (?) ॥ इति ।

इति कालादिनिर्णयः । इति पाठान्तरम् ।

पृ. ३७ पं. १ कार्पासैरिव इत्यतः प्राक्—

‘वस्तुलगलका अजे’ इत्यमरोक्तेः आजमेव वासः । इत्यधिकम् ।

पृ. ३८ पं. ९ ‘एवंच’...‘न विषः’ इत्यस्य स्थाने—

तदसंभवे मदनरत्ने कात्यायनः—

कार्पासंक्षौमगोवालशणवत्कनृणोद्भवम् ।

तदसंभवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ॥

असंभवतः असंभवात् । तथाच पूर्वोक्तासंभवे कार्पासं धार्यम् । इति ।

पृ. ३९ पं. १८ उपवीतनिर्णय इत्यस्याग्रे—

एवमुपवीतधारणानन्तरमाचमनमुक्तं जयन्तेन । ‘यज्ञोपवीतिनं कृत्वा यथाशास्त्रमाचामयति ? इति । आचमनदेशश्च कारिकायां ‘आचान्तमुत्तरेण’ इति आचमनप्रकार उक्तो जयन्तेन । अन्तर्जानुकरः प्रणवहन् सावित्री(?) यद्धशिखो दक्षिणहस्तं गोकर्णकारं संहताङ्गुलिं कृत्वा ब्रह्मतीर्थेन वीक्षितमभ्युपेनयुद्बुद्धविकृतगन्धरसवर्जितं हृद्रमं त्रिः पिवेत् । ऋग्वेदः प्रीयतामिति प्रथमम् । यजुर्वेदः प्रीयतामिति द्वितीयम् । सामवेदः प्रीयतामिति तृतीयम् । पाणी प्रक्षाल्यालोमकौ संवृतावोष्ठौ संहिताङ्गुलिपाण्यङ्गुलमूलेन द्विः परिमृजति । अथर्ववेदः प्रीयतामिति प्रथमम् । इतिहासपुराणानि प्रीयन्तामिति द्वितीयम् । ततः पाणी प्रक्षाल्य पादौ शिरश्चाभ्युक्षेत् । विष्णुः प्रीयतामिति अपः बाह्वग्रेण(?) इन्द्रः प्रीयतामिति । एवमुपस्थितं घटं गायत्रीमुपदिशेत् । तदाह कात्यायनः—‘सावित्र्या ब्राह्मणमुपनयेत्, त्रिष्टुभा राजन्यं, जगत्या वैश्यं, सर्वेषां वा सावित्रीति । एतदेव स्पष्टमाचष्ट शातातपः तत्सवितुर्वरेण्यमिति सावित्री ब्राह्मणस्य, देवस्य सवितुरिति राजन्यस्य, विश्वारूपाणीति वैश्यस्येति । सा च प्रणवव्याहृतिपूर्वा उपदेष्टव्येत्याह लौगाक्षिः—ॐ भूर्भुवः स्वरित्युक्त्वा तत्सवितुरिति सावित्रीमन्वाह पच्छोर्द्धर्चशः सर्वा सन्ततमिति । सावित्री-ब्राह्मणमितरयोरप्युपलक्षणम् । उपदेशस्थानं वक्ष्यते ।

(अत उत्तरं ३७ पत्रस्य मेखलाप्रकरणं ततः)

तथाचान्धलायनः—

त्रिवृता मेखला कार्या त्रिवारं स्यात्समावृता ।

तद्वन्धयस्त्रयः कार्याः पञ्च वा सप्त वा पुनः ॥

वेदत्रयेण वृतोहमिति मन्येत ॥ द्विजः ।

तद्वन्धयस्तदङ्गानि तद्रहस्यानि संस्मरेत् ॥ इति ।

(अत्र दण्डनिर्णयः सतः)

गायत्र्युपदेशस्थानं त्वमेरुत्तरदेशः तदुक्तं शाङ्खायनगृह्ये—‘ सावित्रीत्वे-
वो(१)त्तरेणाग्निमुपविशतः प्राङ्मुख आचार्यः प्रत्यङ्मुख’.....’ इति । यस्तु
कार्तीयपारस्कराभ्यां विकल्प उक्तः । अथासौ सावित्रीमन्वाहोत्तरतोऽग्नेः
प्रत्यङ्मुखरायोपविष्टायोपसन्नाय दक्षिणतस्तिष्ठत आसीनायेत्येक इति तत्र
कार्तीयानाम् । बह्वचानां तु वेदैक्यादुत्तरस्यामेव । एकेग्रहणं पङ्क्तमेक इति
वदभिमतत्वसूचनाय न विकल्पाय इति केचित् । वस्तुतस्तु बह्वचाना-
मग्नेः पश्चिमायामेव गायत्र्युपदेशः । तत्र गुरोर्दक्षिणस्यामासीनस्य समि-
वाधानमुक्त्वा शीनक आह—गुरुरपि अग्नेः पश्चिमभूतले आसीत्
प्राङ्मुखः शिष्योऽप्याचार्योभिमुखो भवेदिति । तदर्थसंप्रहृता जयन्ते-
नाप्युक्तम् । ‘अथोभयोरप्यग्नेः पश्चाद्यथोपदेष्टुं शक्यं तथोपविशत्याचार्यः’
इति । अत एव वृत्तौ कारिकायां प्रयोगपारिजाते जीर्णे प्रयोगरत्ने च मयि
मेधामित्यादिभिः पण्मन्त्रैरग्न्युपरधानमुक्त्वा दक्षिणं जान्वाच्य विधिवदु-
पसंगृह्याचार्यं ब्रूयात् ‘अर्धाहि भो’ इति प्रैष उक्तः नतूत्तरदेशगमनमुक्तम् ।
यस्त्विदानीतनप्रयोगरत्ने अग्नेरुत्तरतो गत्वा ‘अर्धाहि भो’ इति ब्रूयादि-
त्युक्तं तत्पुनर्दक्षिणस्यां गमनानुक्तेः केनचित्प्रक्षिप्तमित्युज्जीयत इति दिक् ।
इत्युपनयनम् ।

पृ. ४० पं. २० अगमने इत्यस्य स्थाने—

यात्रार्थं गमने

पृ. ४० पं. २१ निमित्तानीत्यस्याधे—

अथ जातकर्मादिपुनरुपनयनान्तानां निमित्तानि पराशरः—

यः प्रत्यवसितो विप्रः प्रव्रज्यातो विनिर्गतः ।

अनाशकनिवृत्तश्च गार्हस्थ्यं च चिकीर्षति ॥

चरेबीणि च कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च ।

जातकर्मादिभिः सर्वैः संस्कृताः शुद्धिमाप्नुयात् ॥

वसिष्ठः—

संन्यस्य दुर्मतिः कश्चित्परावृत्तिं व्रजेयति ।

■ कुर्यात्कृच्छ्रमथ्रान्तः पण्मासान्प्रत्यनन्तरम् ॥

अत्र पाण्मासिकं विप्रस्य, चान्द्रायणत्रयं क्षत्रियस्य, कृच्छ्रत्रयं वैश्यस्येति
विज्ञानेश्वरः । देशान्तरे गतस्याध्वदहिके कृते यद्यसौ पुनरावाति तदा
विशेषमाह मद्वनरत्ने वृद्धमतुः—

जीवन्यादि समागच्छेद् घृतकुम्भे निवेश्य च ।

उद्धृत्य स्नापयित्वास्य जातकर्मादि कारयेत् ॥

द्वादशाहं व्रतं कुर्यान्निरात्रमथवास्य तु ।

स्तात्रोद्बोद्धेततो भार्यामन्यां वा तदभावतः । इति । इत्यधिकम् ।

पृ. ४२ पं. २३ गीतवादेने इत्यस्याये—

श्रूतं च जनवादं च परीवादं तथानृतम् । इति ।

जनवादं बहुजनसंवादः । इत्यधिकम् ।

पृ. ४२ पं. २९

शिखाजटीत्यस्य स्थाने शिखामात्रजटी ।

पृ. ४३ पं. १२ ब्रह्मचारीत्यत्र—

ब्राह्मणो ब्रह्मचारी

पृ. ४४ पं. ९ गुरुस्त्वस्याये—

इत्यभिवादनम् । प्रसङ्गादभिवादनीयगुर्वादित्स्वरूपं निरूप्यते । इत्यधि० ।

पृ. ४४ पं. १९ संज्ञेत्यस्य स्थाने—

संज्ञासंज्ञि ।

पृ. ४४ पं. २० विप्रसन्नेत्यस्य स्थाने—

विप्रसन्नात्र ।

पृ. ४४ पं. २२ सिद्धिरित्यस्याये—

क्षत्रियादिरपि वेदाध्ययनाभावे मनुवचनात्सिद्धिः । एवं च त्रैवर्णिकानां । इति पाठान्तरम् ।

पृ. ४८ पं. १९ इतीत्यस्याये—

पञ्चोक्तानि तेनैव—

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ।

एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥

वित्तादिभिर्युक्तो हीनजातिरप्युत्कृष्टजातेर्मान्य इत्यर्थः ।

पृ. ४९ पं. ११ अवरमीमांसेत्यस्य स्थाने—

अध्वरमीमांसा ।

पृ. ४९ पं. १४ नष्माकाश०—अतोवेत्यन्तस्य स्थाने—

द्वितीयशास्त्राध्ययनमित्यत्रैकत्वं व्यावर्तकं भवति अतो नात्र एक एव स्वाध्यायोऽध्येतव्य इत्यर्थः किंतु स्वाध्यायोऽध्येतव्य एवेत्यत्यन्तायो-
गव्यावृत्त्या साधारणो वाक्यार्थः । अत एव वसिष्ठेनोक्तम्—

पृ. ६० पं. १ प्राग्वानित्यस्यापे-

दर्भानिति शेषः । इत्यधिकम् ।

पृ. ६१ पं. २० वेत्तेत्यस्यापे-

अद्रोहानपराधी । मेधावी धारणावान् । असूयकः परदोषवक्ता । शक्तः
शुश्रूषायाम् । आप्तः अप्रतारकः । ज्ञानदो विशाग्रदः । वित्तदः अर्पणपूर्व-
मर्थदाता । इत्यधिकम् ।

पृ. ६२ पं. ६ वाचरोदित्यस्य स्थाने-

वारमेत् ।

पृ. ६२ प. १२ घोरकिल्बिषमित्यस्य स्थाने-

चौरकिल्बिषम् ।

पृ. ६२ पं. १६ इत्यर्थः इत्यस्यापे-

एतच्चेत्यधिकम् ।

पृ. ६३ पं. २९ इतीत्यस्यापे-

गार्ग्योऽपि-रात्रौ नवसु भार्दीषु चतुर्थी यदि दृश्यते ।

रात्रौ यामद्वयाद्वाक् सप्तमी च त्रयोदशी ॥

प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ।

पृ. ६४ पं. ६ समनन्तरम्-

संग्रहेऽपि-महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहर्द्वयम् ।

मध्ये द्वियामयो रात्रौ नार्धायीत कदाचन ॥ इत्यधिकम् ।

पृ. ६४ पं. २६ सायंवेत्यत्र-

सायं वा द्विमुहूर्ता ।

पृ. ६४ प. २७ यत्नध्यायेत्यस्य स्थाने-

अनध्यायनिमित्ता ।

पृ. ६४ पं. २८ दृश्येतेत्यर्थ इत्यस्यापे-

अत्रापि त्रिमुहूर्ततिथिसत्त्वे सुतरामनध्याय इति सूच्यते ।

तथा च भविष्ये-उदयेऽस्तमये वाऽपि मुहूर्तत्रयगामि यत् ।

तद्दिनं तद्दहोरात्रमनध्यायविधौ विदुः ॥

केचिदाहुः क्वचिद्देशे यावत्तद्दिननाडिकाः ।

तावदेव त्वनध्यायो न तन्मिश्रे दिनान्तरे ॥ इति ।

तन्मुहूर्तत्रयगामिदिनं तिथिर्यस्मिन्नहोरात्रे तद्दहोरात्रमित्यर्थः । दि-
नान्तरे तिथ्यन्तरे ।

प्रतिपद्येऽशमात्रेण कलामात्रेण चाष्टमी ।

दिनं दृश्यते सर्वं सुरा गव्यषटं यथा ॥

इति वचनं तत्प्राच्याचारमूलकं ज्ञेयम् । इत्यधिकम् ।

पृ. ५५ पं. २२ तत्कामयतीत्यस्य स्थाने—

तत्कामयते इति ।

पृ. ५५ पं. २३ परिलिखने इत्यस्य स्थाने परिलिखिते ।

पृ. ५५ पं. २५ सर्वदा.....इत्यस्य स्थाने—

सर्वराष्ट्रेषु ।

पृ. ५६ पं. १ आद्यभागेष्वित्यस्य स्थाने—

- वेदभागेषु ।

पृ. ५७ पं. १२ समनन्तरम्—

अहोरात्रानुवृत्तौ वसिष्ठः—

कलायान्यसितान्भक्षान्यच्चान्यच्छ्राद्धिकं भवेत् ।

प्रतिगृह्याप्यनध्यायः ॥ इति ।

पृ. ५७ पं. १८ स्वप्नान्तं मेहनादि इत्यस्य स्थाने—

स्वप्नान्तमोदयादिति ।

पृ. ५७ पं. २१।२२ प्राधानस्येत्यस्य स्थाने—

प्राधीतस्य ।

पृ. ५८ पं. १३ मृगमारभ्येत्यस्य स्थाने—

आर्द्रामारभ्य ।

पृ. ५८ पं. २५ नवभाद्रीयमति इत्यस्य स्थाने—

नवश्राद्धीयामति ।

पृ. ५९ पं. २ स्थाने—

शक्रमुत्थापयेद्राजा विश्वश्रवणवासवैः ।

विश्वं वैश्वदेवमुत्तरापाठा वासवं धनिष्ठा । शक्रध्वजपातकालोऽपि
पुगणे—

मासि भाद्रपदे राजन् शक्र्यष्टिनिपातनम् । इति ।

पृ. ५९ पं. १९ वसिष्ठेनेत्यस्यापे—

यदि हस्ती संवत्सरं व्याघ्रश्चैव तथैति । अत्र व्याघ्रविषयेऽपि प्रथमा-
रम्भो माह्यः ।

उत्तरमन्थस्य मुद्रणावसर एव च पुस्तकलाभात्तत्रस्थपाठान्तगणां मूल
एव समावेशः कृत इत्युपरम्यते ।

स्थूलाक्षरैर्मुद्रिता । अस्याः सार्धशताभ्यधिकपत्रयुताया अपि सर्वसौलभ्याय मूल्यमतीव न्यूनं स्थापितम् । मूल्यम्, रु. ०-७-०.

कुमारसंभवं महाकाव्यम्—कविवरश्रीकालिदासविरचितमिदं सप्तमस-
र्गपर्यन्तं मल्लिनाथकृतसंजीविन्या चारिष्यवर्धनकृतशिष्टद्वितैषिण्या च संवलितं तत
आसमाप्ति सीतारामकृतसंजीविन्यालंकृतं सुललितैरायसाक्षरैर्मुद्रितमतीव दर्श-
नीयमस्ति । मूल्यम् रु. १-४-०.

स्तोत्रमुक्ताहारः—अस्मिन् २५६ स्तोत्राणि संगृहीतानि । यद्यपि सन्ति
भूर्यणि स्तोत्रपुस्तकानि मुद्रितानि भूरिमिस्तथापि न तेष्वियतां स्तोत्ररत्नानां
संग्रहः । अस्माभिः पूर्वमुद्रितानां स्तोत्राणां पुस्तकानि काश्यादिक्षेत्रेभ्यो भूयसा
प्रयासेन द्रविणव्ययेन च समासाय तेभ्यश्च प्रसादगुणयुक्तानि स्तोत्राणि संकलय्य
संग्रह्य च तानि भाविकजनानां कृतेऽत्र समावेशितानि तदाशास्महे श्रद्धावन्तो
जनाः सफलविष्यन्ति प्रयत्नमस्माकममुमिति । मूल्यम् रु. ०-८-०.

विदुरनीतिः—संस्कृतटीकोपेता नीतिशास्त्राभ्यासिनां विद्यार्थिनामतीवो-
पयोगिनी । मू. रु. ०-४-०.

रघुवंशमहाकाव्यम्—श्रीकालिदासकृतम् । मल्लिनाथकृतसंजीविन्याख्य-
टीकासहितम् । मूल्यम् रु. ०-१०-०.

वेदान्तरहस्यम्—वेदान्तवागीशभट्टाचार्यविरचितम् । अत्राद्वैतमत-
सिद्धान्तो निरूपितः । उपपत्तिश्च प्रदर्शिता । भाषाऽतिसरल प्रौढा च । मूल्यम्,
रु. ०-१-०.

उत्तरगीता—गौडपादीयदीपिकाख्यव्याख्यायुता । भगवत्पादश्रीशंकरा-
चार्याणां परमगुरोभिः श्रीगुडाचार्याणां च शिष्यैः श्रीगौडपादाचार्यैः प्रणीतैर्यं
व्याख्येत्येतावत्कथनमष्टमस्या महिमानमवगमयितुम् । मूल्यम् रु. ०-३-०.

विशिष्टाद्वैतमतविजयवाद्—नरहरिपण्डितकृतः । अत्र विशिष्टाद्वैतमते
परेषामाद्येषाभिराकृत्य विशिष्टाद्वैत एवोपनिषदां तात्पर्यं व्यवस्थापितम् । मूल्यम्
रु. ०-१-०.

प्रारब्धमुद्रणा ग्रन्थाः ।

तैत्तिरीयोपनिषत्—धीमच्छंकरभगवत्पादकृतभाष्येणानन्दगिरिकृतटीका-
युतेन सहिता ।

धैरोपिकदर्शनम्—भीमशंकरमिश्रकृतवैद्येश्वरकृतसोपस्कारप्रभृतिव्याख्यान-
त्रयोपेतम् ।

‘ गुजराती ’ मुद्रणाख्यापिपतिः ।

फोट साफल बिल्डिंग—मुंबई.